प्रातःस्मरणीय महासतियाँ

भाग-2

-: लेखक :-

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

प्रातः स्मरणीय-महासतियाँ

भाग-2

(भरहेसर-सज्झाय)

लेखक

व्याख्यान वाचस्पति, महाराष्ट्र देशोद्धारक पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.** के तेजस्वी शिष्यरत्न,
बीसवीं सदी के महान् योगी, नवकार-विशेषज्ञ, प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद
पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के चरम शिष्यरत्न
मरुधररत्न, गोड़वाड़ के गौरव, प्रवचन-प्रभावक,
जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर परम पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

152

प्रकाशन

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे.व्यु. बिल्डींग,
विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी,
मुंबई-400 002. Cell 8484848451 (only whatsapp)

प्रथम आवृत्ति प्रतियाँ 3250 • **दूसरी आवृत्ति** प्रतियाँ 750 • **मूल्य :** 300/- रु.
दि.16-7-2023 • **विमोचन स्थल :** मुनिसुव्रत स्वामी जैन मंदिर श्वे.मू. जैन संघ, निगडी, (पूना)-411 044. • **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

• आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.*** द्वारा लिखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तके एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोडकर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

लेखक की कलम से....

– प.पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

एक ओर प्रभु की आज्ञा है-**'चित्त भित्तिं न निज्झाए'** दिवाल पर रहे हुए स्त्री के चित्र को भी साधु न देखे ।

वहीं दूसरी ओर आज्ञा है-`प्रातः काल में प्रतिक्रमण दरम्यान साधु भी सज्झाय में सुलसा आदि महासतियों का नामस्मरण करे ।

नाम और व्यक्ति का घनिष्ट संबंध है किसी व्यक्ति का नाम लेने के साथ ही उस व्यक्ति का तादृश चित्र अपनी मन की आंख के सामने खडा हो जाता है ।

क्या थी इन महासतियों की विशेषता ? उनकी विशेषता थी, `उन्होंने मन, वचन और काया से अपने शील धर्म का पालन किया था ।'

सिर्फ काया से शील धर्म का पालन करनेवाली स्त्रियाँ तो आज भी हजारों मिल जाएगी परंतु मन, वचन और काया से पवित्र शील धर्म का पालन करनेवाली महासतियाँ तो विरल ही होती है । **'मन में भी विकार भाव पैदा नहीं होना'** खूब कठिन साधना हैं-परंतु इन महासतियों के जीवन में उस साधना के प्रत्यक्ष दर्शन होते है ।

चाहे जैसे मरणांत कष्ट आए हो चाहे जैसी अग्नि-परीक्षा की छडी आई हो-चाहे देवता भी परीक्षा के लिए उपस्थित क्यों न हुए हो...फिर भी संपूर्णतया निष्कलंक जीवन जीना यह कोई आसान बात नहीं है । परंतु इन महासतियों ने यह कठिनतम कार्य भी करके दिखलाया है । अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्गों में भी वे सदा अजेय रही है । उन्हें कोई परास्त नहीं कर सका है । ऐसी उत्कृष्ट साधना के फल स्वरुप ही युगों के युग बीत जाने पर भी आज भी उनका स्मरण किया जाता है ।

उनके नाम स्मरण में भी अपूर्व शक्ति रही हुई है । उनका नाम स्मरण भी हमारे कर्मों के जटिल बंधनों को शिथिल बनाने में सक्षम है ।

उपदेश और प्रवचनों में इन महासतियों के जीवन-चरित्र खूब उपयोगी सिद्ध हुए है ।

उन महासतियों के रोमांचक प्रेरक प्रसंग हमें भी पवित्र जीवन जीने की सुंदर प्रेरणा देते है ।

भयंकर जंगल और मरणांत कष्टों में भी जब इन महासतियों ने अपने शील धर्म का संरक्षण किया है । तो अनेकविध अनुकूलताओं के बीच अपने शील धर्म का रक्षण क्यों न करे ?

स्त्रियों का सबसे बडा आभूषण शील धर्म का पालन ही है । शील यदि बचा तो सबकुछ बचा और शील ही चला गया तो सब कुछ चला गया ही माना जाएगा ।

मानव शरीर में यदि हृदय ही नहीं बचा है तो दूसरे बचे हुए अवयवों की क्या कींमत है ?

शरीर में जो स्थान हृदय का है, नारी-देह में वही स्थान शील का है । शील के रक्षण के लिए किया गया पुरुषार्थ सफल और सार्थक है ।

अध्यात्मयोगी, निःस्पृह शिरोमणि, नमस्कार महामंत्र के अजोड साधक, सूक्ष्म तत्व चिंतक परमाराध्यपाद अनंतोपकारी **पूज्य गुरुदेव पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** श्री की अदृश्य कृपा-वर्षा से ही भरहेसर की सज्झाय में आनेवाले महापुरुष और महासतियों के चरित्र को हिन्दी भाषा में आलेखित करने का शक्य प्रयत्न किया है, इसमे जो कुछ शुभ है, वह स्व. पूज्य गुरुदेवश्री की कृपा का ही फल है और जो कुछ श्रुटियाँ रह गई है, वह सब मेरी है ।

आभार

प्रस्तुत पुस्तक में स्व. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा आलेखित **'प्रतिक्रमण सूत्र आल्बम' पू.आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा., पू.आ. श्री हर्षशीलसूरीश्वरजी म.सा., डॉ. कुमारपाल देसाई** आलेखित गुजराती सचित्र साहित्य, दिवाकर प्रकाशन-आगरा के सचित्र प्रकाशन में से कुछ प्रकाशन उपयोगी चित्र लिये हैं । हम उन सभी के खूब खूब आभारी है ।

प्रकाशक की कलम से...

परम शासन प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक **पूज्यपाद आचार्य देव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** की **32वीं वार्षिक पुण्य तिथि** पावन प्रसंग पर विद्वद्वर्य **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित **प्रातःस्मरणीया महासतियाँ भाग-2** की दूसरी आवृत्ति का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

पूज्यश्री हिन्दी भाषा में कुशल प्रवचनकार तो हैं ही, इसके साथ ही हिन्दी भाषा में पूज्यश्री की लेखनी भी अत्यंत ही प्रभावशाली है । वे कलम के धनी हैं, सिद्धहस्त लेखक हैं । जैनदर्शन के भिन्न-भिन्न विषयों पर उन्होंने अपनी कलम चलाई है ।

हिन्दी भारत की राष्ट्रीय भाषा है । परंतु श्वे. मूर्तिपूजक जैनसंघ का अधिकांश साहित्य गुजराती भाषा में है । गुजराती एक प्रांतीय भाषा है, जो सिर्फ गुजरात और मुंबई आदि में चलती है ।

भारत के विभिन्न प्रांतों में जैनों की बस्ती रही हुई है । उन सभी के लिए पूज्यश्री द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य खूब-खूब उपयोगी बना है ।

पूज्यश्री के साहित्य द्वारा हिन्दीभाषी वर्ग को खूब-खूब लाभ हुआ है ।

गोडवाड के गौरव एवं मरुभूमि के रत्न परम पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद् विजय **श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** **का**

संक्षिप्त परिचय

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. गोड़वाड़ के गौरव, मरुभूमि के रत्न, बाली संघ की शान, चोपड़ा कुल के भूषण तथा पिता श्रीमान् छगनराजजी एवं माताजी श्रीमती चंपाबाई के

कुल- दीपक हैं । इनका सांसारिक नाम राजमल चोपड़ा था, परन्तु इन्हें `राजू' के लाड़ले नाम से पुकारा जाता था । आज भी वे गोड़वाड़ की जनता के लिए तो **'राजू महाराज'** के नाम से ही प्रख्यात है ।

पूज्यश्री का जन्म भादों सुदी 3 दिनांक 16-9-1958 के शुभ दिन हुआ था । माता का नाम चंपाबाई और पिता का नाम छगनराजजी चोपड़ा था ।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा हायर सैंकडरी तक बाली में तथा 1st Year, B.Com. का शिक्षण S.P.U. College फालना में हुआ था । राजू को धार्मिक शिक्षण व संस्कार मिले थे श्रीमान् आनंदराजजी गेमावत से । बचपन से ही सूक्ष्म व तीक्ष्ण प्रज्ञा के कारण व्यावहारिक शिक्षण में उनका हमेशा प्रथम स्थान रहा था । ई. सन् 1975 में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय-बाली में 600 विद्यार्थियों के बीच राजू को **'सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी'** का पारितोषिक मिला था । जिला-स्तरीय निबंध-वक्तृत्व आदि स्पर्धाओं में भी विशेष स्थान प्राप्त किया था । इसके साथ ही धार्मिक पाठशाला में भी हमेशा प्रथम स्थान रहा था । तत्त्वज्ञान विद्यापीठ-पूना की प्रारंभिक परीक्षा में भारत भर में पहला स्थान प्राप्त किया था ।

बचपन में राजू के दिल में महत्त्वाकांक्षा थी **'आगे चलकर C.A. करना, उद्योगपति या राजनेता बनना ।'** परंतु अपने ही पड़ौसी पूर्ण स्वस्थ भीकमचंदजी बद्दाजी परमार की अकालमृत्यु तथा नदी के पानी में डूबने से हुई दो बाल मित्रों की करुण मौत के दृश्यों को देखकर राजू को आयुष्य की क्षणभंगुरता के प्रत्यक्ष दर्शन हुए और उसके मन में वैराग्य भाव का बीजारोपण हो गया । अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत, सत्संग एवं उनके द्वारा प्रदत्त **'शांतसुधारस'** की अनित्य एवं अशरण भावना के हिन्दी विवेचन के स्वाध्याय तथा **'धर्मदेशना'** पुस्तक में वर्णित चार गतियों के भयंकर दुःखों का वर्णन पढ़ने से राजू की वैराग्य भावना और दृढ़ बनती गई ।

एक वर्ष के कॉलेज शिक्षण दरम्यान भी राजू की वैराग्य भावना लेश भी खंडित नहीं हुई, बल्कि कॉलेज के साथ पूज्य गुरुदेवश्री के समागम से उसकी वैराग्य भावना तीव्र-तीव्रतर होती गई ।

वि.सं. 2030 में बाली में मुमुक्षु कमलाबहन की भागवती दीक्षा का महोत्सव चल रहा था। रात्रि में संघ की ओर से आयोजित मुमुक्षु के बहुमान समारोह में राजू भी उपस्थित था। मुमुक्षु के वैराग्यपूर्ण संवाद आदि को सुनकर राजू के मन में तीव्र वैराग्य भाव पैदा हुआ।

राजू ने अपने दिल की बात **पू.मुनि श्री प्रद्योतनविजयजी म.** को कही। पूज्य मुनिराजश्री ने राजू की भावना को प्रोत्साहित किया और इस संदर्भ में विशेष मार्गदर्शन हेतु राजू को घाणेराव में बिराजमान **अध्यात्मयोगी निःस्पृहशिरोमणि पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** के पास भेजा।

अध्यात्मयोगी महापुरुष के दर्शन-वंदन कर राजू का हृदय खुशी से नाच उठा। मानवजीवन को सफल बनाने एवं संयम की निर्मल साधना हेतु पूज्य पंन्यासजी म.सा. ने राजू को सुंदर मार्गदर्शन दिया।

धार्मिक पाठशाला में राजू ने पंच प्रतिक्रमण आदि का अभ्यास तो किया ही था, इसके साथ **प.पू. विद्वद्वर्य मुनि श्री जितेन्द्रविजयजी म.सा.** एवं **प.पू. विद्वद्वर्य मुनि श्री गुणरत्नविजयजी म.सा.** की तारक निश्रा में आयोजित `ग्रीष्मकालीन आध्यात्मिक ज्ञान शिविर में दो बार भाग लेकर जैनदर्शन के तत्त्वज्ञान, आवश्यक क्रिया के सूत्र रहस्य, जैन इतिहास, जैन भूगोल, कर्मवाद आदि का ज्ञान प्राप्त किया। इसके फलस्वरूप राजू की वैराग्य भावना और दृढ़ बनी।

यद्यपि दीक्षा के लिए घर में अनुकूल वातावरण नहीं था, फिर भी दृढ़ मनोबल से वैराग्यमार्ग में आनेवाले अवरोधों का सामना किया, जिसके फलस्वरूप आखिर में राजू के माता-पिता ने पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में रहने के लिए अपनी सम्मति प्रदान की।

वि.सं. 2031 व 2032 में पूज्य गुरुदेवश्री के बेड़ा एवं लुणावा चातुर्मास में साथ में रहकर ज्ञानाभ्यास किया और संयमजीवन की ट्रेनिंग ली। डेढ़ वर्ष के अपने मुमुक्षु पर्याय में उपधान तप, वर्धमान तप का पाया एवं 12 ओली, 20 दिवसीय एक लाख नवकार जापसाधना, पैदल-विहार के साथ साथ चार

प्रकरण, तीन भाष्य, छह कर्मग्रंथ, तत्त्वार्थ सूत्र, वीतराग स्तोत्र, योगशास्त्र, पंच सूत्र, संस्कृत की दो बुक आदि का भी सुंदर अभ्यास किया ।

राजु के दिल में उत्कट वैराग्य था तो दूसरी ओर माता-पिता के अन्तर्मन में रहे मोह के बंध को तुड़वाना सरल काम नहीं था, इस भगीरथ कार्य में सफलता पाने के लिए राजु ने भी दृढ संकल्प किया था, मोह के बंधन को तोड़ने में राजु के सफल मार्गदर्शक बने थे **अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य ।** उनका मार्गदर्शन और आशीर्वाद न होता तो शायद राजु को सफलता नहीं मिल पाती ।

दि. 6 जनवरी 1977 के शुभ दिन मुमुक्षु राजु अपने पिताजी **शा छगनराजजी चोपड़ा** और पंडितजी हिम्मतभाई (जो बाली में साधु-साध्वीजी को संस्कृत-प्राकृत और न्याय सीखाते थे ।) के साथ बाली से बस द्वारा लुणावा आए । उस समय अध्यात्मयोगी **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** लुणावा में विराजमान थे ।

वंदनविधि और औपचारिक बातचीत के बाद मुमुक्षु राजु के पिताजी का एक ही सुर था-कि राजु की दीक्षा 1-2 वर्ष बाद की जाय ।

उस समय भविष्यदृष्टा पूज्यश्री ने अपना मौन तोड़ते हुए कहा, **'राजु अब तैयार हो चुका है, अब ज्यादा विलंब करने जैसा नहीं है ।'**

महापुरुष के थोड़े से शब्दों में भी अपूर्व शक्ति रही होती है । वे बोलते कम हैं और काम ज्यादा होता है ।

बस, अध्यात्मयोगी युगमहर्षि महापुरुष के अल्प शब्दों ने छगनराजजी के मन पर जादुई असर किया और उन्होंने परिवार के अन्य किसी भी सदस्य से बातचीत किये बिना तत्काल ही पूज्यश्री को अपने सुपुत्र की भागवती-दीक्षा के लिए अपनी सहमति प्रदान कर दी ! यह था पुण्यपुरुष के अल्पशब्दों का गजब का प्रभाव ! और उसी समय पूज्य गुरुदेवश्री ने दीक्षा का मुहूर्त भी प्रदान कर दिया । माघ शुक्ला त्रयोदशी 2033 के शुभ दिन मुमुक्षु राजु की भागवती दीक्षा निश्चित की गई ।

पूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा से जन्मभूमि बाली में **वर्धमान तपोनिधि**

पू. पंन्यासप्रवर श्री हर्षविजयजी म. के वरदहस्तों से मुमुक्षु ने भागवती दीक्षा अंगीकार की। वे अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेवश्री के अंतिम शिष्य बने और वे **मुनिश्री रत्नसेनविजयजी म.** के नाम से पहिचाने जाने लगे।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद परम तपस्वी **पू.पं. श्री हर्षविजयजी म.सा.** के सान्निध्य में लगभग 3 वर्ष तक पाटण में ग्रहण व आसेवन शिक्षा प्राप्त की। संस्कृत-प्राकृत व्याकरण के साथ न्याय, काव्य, प्रकरण ग्रंथ, कर्मग्रंथ, विविध दर्शन, जैन-आगम आदि का गहन अभ्यास किया।

प्रभावक प्रवचन शैली : विक्रम संवत् 2033 में उनकी भागवती दीक्षा हुई। ठीक 13 मास के बाद वर्धमान तपोनिधि **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री हर्षविजयजी म.सा.** की शुभ निश्रा में वि.सं. 2034 फाल्गुण शुक्ला चतुर्दशी के दिन पाटण में उनका सबसे पहला प्रवचन हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के शुभाशिष उनके साथ थे, अतः वह प्रवचन अत्यंत ही प्रभावक रहा। उसके बाद वि.सं. 2036 से उनकी पर्युषण प्रवचनमाला एवं वि.सं. 2038 में बाली में उनके चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ हो गए। वह प्रवचन-गंगा आज भी निरंतर बह रही है।

श्रोताओं की अंतरंग योग्यता को परखकर, शास्त्रीय पदार्थ को खूब सरल व रोचक शैली में समझाने की कला उन्हें हासिल हुई है। इसके द्वारा वे अनेक के जीवन-परिवर्तन में निमित्त बने हैं।

प्रभावक साहित्य–सर्जन : वि.सं. 2038 में पूज्य मुनिश्री ने अपने स्वर्गस्थ गुरुदेवश्री के जीवन-परिचय के रूप में **'वात्सल्य के महासागर'** पुस्तक का आलेखन किया था, तब से उनकी लेखन-यात्रा निरंतर जारी है। उनकी लेखनी में सरलता है, रोचकता है और धाराप्रवाह है। उनके द्वारा आलेखित साहित्य पाठकों के अन्तर्मन को इस प्रकार छू लेता हैं कि एक बार पुस्तक प्रारंभ करने के बाद उसे छोड़ने का मन ही नहीं होता है। साहित्य के विविध विषयों पर उनकी लेखनी चली है, जो आज भी गतिमान है।

परम पूज्य उपकारी गुरुदेवश्री के कालधर्म के बाद पूज्यपाद गच्छाधिपति

आचार्य भगवंत, एवं समतानिधि पू. पंन्यासश्री वज्रसेनविजयजी म.सा. की आज्ञानुसार पाली, रतलाम, अहमदाबाद, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, गिरधरनगर, सुरेन्द्रनगर, थाणा, कल्याण, दादर, सायन, धूलिया, कराड, चिंचवड़ स्टे., भायंदर, पूना, येरवड़ा, कालाचौकी (मुंबई) श्रीपालनगर मुंबई, कर्जत, (जिला रायगढ़ M.S.), भिवंडी, रोहा, भायंदर, पालीताणा, बाली, घाणेराव, नासिक, बेंगलोर, मैसूर, कोयमत्तूर, चैन्नई, बीजापूर (कर्णाटक), भायंदर आदि क्षेत्रों में चातुर्मास कर दैनिक व जाहिर प्रवचनों के माध्यम से अनेकविध आराधनाएँ कराई हैं ।

पूज्य मुनिश्री की प्रेरणा से थाणा में 109 सिद्धितप व 160 सामुदायिक वर्षीतप की आराधनाएँ हुई थीं ।

अपनी प्रवचन-कुशलता के साथ-साथ मात्र 24 वर्ष की उम्र में **'वात्सल्य के महासागर'** से प्रारंभ हुई उनकी लेखनी अबाधगति से आगे बढ़ रही है । पूज्य आचार्यजी म.सा. की अभी तक 237 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और अभी भी वह सर्जन-यात्रा चालू ही है ।

तप-साधना में पूज्य मुनिश्री अपने 47 वर्ष के संयमपर्याय में लगभग नियमित एकाशना करते हैं और प्रत्येक सुद पंचमी को ज्ञान की आराधना निमित्त उपवास करते हैं ।

पिंडवाड़ा, गिरधरनगर, थाणा, कल्याण, दादर, सायन, धूलिया, कराड़, भायंदर, बेंगलोर, चिंचवड़ स्टे. पूना, येरवडा, श्रीपालनगर तथा भिवंडी, बेंगलोर, कोयमत्तूर आदि में वाचना-श्रेणी का आयोजन कर सैकड़ों नवयुवकों के जीवन को संस्कारित किया है ।

'अर्हद् दिव्य संदेश' मासिक के माध्यम से पूज्य मुनिश्री के चिंतनात्मक लेख-प्रवचन-उपदेश पिछले 35 वर्षों से नियमित प्रकाशित हो रहे हैं ।

अनेक को धर्मबोध देने वाले **पूज्य मुनिश्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** को शासनप्रभावक प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद **गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय महोदयसूरीश्वरजी म.सा.** की आज्ञानुसार वैशाख वदी 6, वि.सं.

2055 को चिंचवड़ में गणिपद से अलंकृत किया गया और शासनप्रभावक पूज्य **गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय हेमभूषणसूरीश्वरजी म.सा.** की आज्ञानुसार कार्तिक वदी 5 वि.सं. 2061 के शुभ दिन श्रीपालनगर मुंबई में पंन्यास पद से अलंकृत किया गया था ।

अत्यंत ही सरल, रोचक व प्रभावपूर्ण प्रवचनशैली के द्वारा वे श्रोताओं के अन्तर्मन को छू लेते हैं । उनके उपदेश से अनेक भूले भटके युवानों को सही दिशा प्राप्त हुई है ।

वाचनाश्रेणी आदि के माध्यम से उन्होंने तरुण पीढ़ी के जीवन को सुसंस्कारों से सुवासित किया है ।

वे कुशल विवेचनकार भी हैं : सामायिक सूत्र, चैत्यवंदन सूत्र, आलोचना सूत्र, श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र, आनंदघन चौबीसी, आनंदघनजी के पद, पू. यशोविजयजी म. की चौबीसी, अमृतवेल की सज्झाय, समकित के 67 बोल की सज्झाय आदि पर उन्होंने खूब सुंदर व सरलशैली में विवेचन भी किया है ।

वे कुशल अवतरणकार भी हैं : जैन रामायण और महाभारत पर दिए गए उनके, जाहिर प्रवचनों का उन्होंने स्वयं ने आलेखन भी किया है । तथा अपने गुरुदेव एवं प्रगुरुदेव के प्रवचनों का सुंदर शैली में अवतरण भी किया है ।

वे कुशल भावानुवादक हैं : शांत सुधारस, श्राद्धविधि, गुणस्थानक क्रमारोह, एक से छह कर्मग्रंथ, तीन भाष्य, जीवविचार, नवतत्त्व, दंडक, लघु संग्रहणी आदि प्राचीन ग्रंथों का उन्होंने सरस भावानुवाद एवं विवेचन भी किया है ।

वे प्रभावक कथा-आलेखक भी हैं : कर्मन् की गत न्यारी (महाबल-मलयासुंदरी चरित्र) आग और पानी (समरादित्य चरित्र) कर्म को नहीं शर्म (भीमसेन चरित्र) तब आँसू भी मोती बन जाते हैं (सागरदत्त चरित्र) कर्म

नचाए नाच (तरंगवती चरित्र) जैसे अनेक चरित्रग्रंथों की धारावाहिक कहानी का उपन्यास शैली में आलेखन भी किया है ।

वे प्रसिद्ध चिंतक भी हैं : प्रवचन मोती, प्रवचन रत्न, चिंतन मोती, प्रवचन के बिखरे फूल, अमृत की बूँदें, युवा चेतना जैसे प्रकाशनों में उनके हृदयस्पर्शी चिंतन भी प्रस्तुत हुए हैं ।

वे कुशल प्रवचनकार भी हैं : सफलता की सीढ़ियाँ, श्रावक कर्तव्य, श्रावकाचार प्रवचन, नवपद प्रवचन, प्रवचन वर्षा, प्रवचन-धारा, आनंद की शोध, पांच प्रवचन, जैन पर्व प्रवचन, प्रेरक प्रवचन, गुणानुवाद आदि में उनके प्रवचनों का सुंदर संकलन है ।

वे प्रसिद्ध कहानीकार भी हैं : प्रिय कहानियाँ, मनोहर कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, मधुर-कहानियाँ, प्रेरक कहानियाँ, सरस कहानियाँ, सरल कहानियाँ, आदर्श कहानियाँ आदि में उन्होंने अत्यंत ही सुंदर हृदयस्पर्शी कहानियों का आलेखन किया है ।

जैनशासन के ज्योतिर्धर, महान् ज्योतिर्धर, तेजस्वी सितारें, गौतमस्वामी-जंबुस्वामी, महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा भाग 1 से 4 आदि में उन्होंने जैनशासन के महान् प्रभावक पुरुषों के जीवनचरित्रों का सुंदर आलेखन भी किया है ।

वे कुशल संपादक भी हैं : युवाचेतना विशेषांक, जीवननिर्माण विशेषांक, आहारविज्ञान विशेषांक, श्रावकाचार विशेषांक, श्रमणाचार विशेषांक, सन्नारी विशेषांक, राजस्थान तीर्थ विशेषांक, दीक्षा विशेषांक, तीर्थयात्रा विशेषांक जैसे अनेक विशेषांकों का सफल संपादन भी किया है ।

उनके उपदेश से अनेक संघों में अनेकविध तपश्चर्याएँ, अनेकविध भाव-यात्राएँ, तप-जप आदि अनुष्ठान, उपधान, अंजन शलाका, दीक्षाएं, प्रतिष्ठा, छ'री पालित संघ, उद्यापन, जीवित महोत्सव आदि संपन्न हुए हैं । उनके द्वारा आलेखित साहित्य भारत भर के हिन्दीभाषी क्षेत्रों में खूब चाव से पढ़ा जाता है ।

सन्मार्ग की राह बतानेवाला उनका साहित्य अनेक के लिए सफल मार्गदर्शक बना है । उनका साहित्य नूतन प्रवचनकारों के लिए भी खूब उपयोगी बना है ।

समुदाय के ज्येष्ठ पूज्यों के निर्णयानुसार एवं निःस्पृह शिरोमणि विद्वद्वर्य **पू.पंन्यासप्रवर श्री वज्रसेनविजयजी गणिवर्य श्री** की आज्ञा एवं आशीर्वाद से कोंकण शत्रुंजय थाणा तीर्थ में पौष वद-1, वि.सं. 2067, दि. 20-1-2011, गुरुवार के शुभदिन गुरु पुष्यामृतसिद्धियोग में आठ दिन के ऐतिहासिक महामहोत्सव के साथ शासनप्रभावक **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय कनकशेखरसूरीश्वरजी म.सा.** के वरद हस्तों से **प.पू. मरुधररत्न गोड़वाड़ के गौरव पूज्य पंन्यासप्रवर श्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** को **'गुरु गौतम नगरी** (शिवाजी मैदान) में हजारों की जनमेदिनी के बीच **आचार्य पद** पर प्रतिष्ठित किया गया, तब से वे **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के नाम से जाने-पहिचाने लगे हैं ।

आचार्य पदारूढ़ होने के बाद पूज्यश्री के वरद हस्तों से जैन-शासन की सुंदर आराधना-प्रभावना हो रही है ।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन-सहयोगी धन्यवाद के पात्र हैं ।

अनुक्रमणिका

क्रम	महासती का नाम	महापुरुष का नाम	पृष्ठ संख्या
14.	महासती पद्मावती	करकंडु	महापुरुष भाग-2
15.	महासती अंजना		1
16.	महासती श्रीदेवी		30
17.	महासती ज्येष्ठा		31
18.	महासती सुज्येष्ठा		34
19.	महासती मृगावती		39
20.	महासती प्रभावती	उदायन	महापुरुष भाग-2
21.	महासती चेलना		47
22.	महासती ब्राह्मी-सुंदरी	भरत बाहुबली	महापुरुष भाग-1
23.	महासती रुक्मिणी	वज्रस्वामी	महापुरुष भाग-1
24.	महासती रेवती		64
25-26.	महासती कुंती-द्रौपदी		73
27.	महासती शिवादेवी		253
28.	महासती जयंती		255
29.	महासती देवकी		256
30.	महासती कलावती		259
31.	महासती पुष्पचूला	अर्णिकापुत्र आ.	महापुरुष भाग-1
32-38.	कृष्ण वासुदेव की आठ पटरानियाँ		273
39-45.	यक्षा, यक्षदत्ता, भूत्ता, भूतदत्ता, सेणा, वेणा, रेणा	स्थूलभद्र	महापुरुष भाग-1

15. महासती अंजना

- हनुमान जैसे रामभक्त पुत्र को जन्म देने का सौभाग्य पानेवाली महासती अंजना के जीवन में कई उतार-चढ़ाव आए ।
- **लग्नजीवन के स्वीकार के बाद 22-22 वर्ष तक जिसे पति-वियोग की पीड़ा सहन करनी पड़ी !**
- सास-श्वसुर और माता-पिता के द्वारा भी अपमानित होना पड़ा ।
- **पूर्व भव में ईर्ष्यावश होकर जिन-प्रतिमा की जो आशातना की, उस आशातना के पाप की कड़ी सजा भुगतनी पड़ी ।**
- आखिर उस पाप से शुद्ध होने पर पुनः सम्मानित हुई ।
- **अंत में भागवती-दीक्षा अंगीकार कर सकल कर्मों का क्षय कर शाश्वत अजरामर मोक्ष– पद की भोक्ता बनी !**

15. महासती अंजना

इन्द्र की अलकापुरी के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने वाले महेन्द्रपुर के राजमहल में महेन्द्र राजा अपने बैठकखण्ड में चिन्तातुर अवस्था में बैठे हुए थे । महेन्द्र राजा की छत्रछाया में प्रजा आनन्द-कल्लोल कर रही थी । प्रजा चिन्तामुक्त थी, किन्तु प्रजापति चिन्तामग्न थे ।

अचानक ही महामंत्रीश्वर ने महाराजा के बैठकखण्ड में प्रवेश किया । विषादग्रस्त महाराजा को देखकर मंत्रीश्वर ने सोचा-``आज महाराजा किसी गम्भीर समस्या के चिंतन में डूबे लगते हैं ।''

मंत्रीश्वर ने महाराजा को प्रणाम किया । महाराजा अपने विचारों में खोये हुए थे, किन्तु मंत्रीश्वर के आगमन ने महाराजा की विचारधारा खण्डित कर दी ।

मंत्रीश्वर ने कहा-``स्वामिन् ! आपकी असीम कृपादृष्टि से प्रजाजन आनन्द-कल्लोल कर रहे हैं । समस्त प्रजा सुख के सागर में लीन है...परन्तु ऐसे खुशहाली के प्रसंग पर आपके चेहरे पर उदासीनता क्यों ? क्या आपका स्वास्थ्य बराबर नहीं है ?''

महाराजा ने कहा-``तुम्हारे जैसे सुयोग्य महामंत्रीश्वर के होते हुए मुझे और तो किस बात की चिन्ता हो सकती है । प्रजाजनों की खुशहाली से मैं भी खुश हूँ, किन्तु जब से महारानी हृदयसुन्दरी ने पुत्री के वर के शोध की बात

15. महासती अंजना

पृष्ठ नं. 1

16. महासती श्रीदेवी
पृष्ठ नं. 30

17. महासती ज्येष्ठा
पृष्ठ नं. 31

18. महासती सुज्येष्ठा
पृष्ठ नं. 34

की है, तब से मेरी चिन्ता बढ़ गई है । बेटी अंजना रूपवती है, गुणवती है, कुलवती है, अनेक विद्याओं में पारंगत है, वह तत्त्वदृष्टा है ।''

``मंत्रीश्वर ! मुझे अंजना के सुयोग्य वर की चिन्ता है, मैंने राजकुमारों की शोध की है, किन्तु कोई रूपवान् है तो गुणवान् नहीं है, कोई गुणवान् है तो कुलवान् नहीं है, कोई कुलवान् है तो गुणवान् नहीं है ।''

महाराजा की बात सुनकर मंत्रीश्वर भी विचार में पड़ गये । वे अंजना को अच्छी तरह से पहिचानते थे, अंजना के प्रभावक व्यक्तित्व से वे अच्छी तरह से परिचित थे, उनकी भी इच्छा थी कि अंजना के लिए सुयोग्य वर की शोध होनी चाहिए ।

मंत्रीश्वर ने सोच-विचार कर महाराजा को अपना प्रस्ताव दिया कि दूर-सुदूर के राजकुमारों के चित्र मँगाये जायें । नीतिशास्त्र में भी कहा है- **``आकृतिर्गुणान् कथयति''** मनुष्य की मुखाकृति, उसकी आँख व नासिका, उसके व्यक्तित्व का वास्तविक दर्पण है ।

सुज्ञपुरुष किसी के मुखमण्डल को देखकर ही उसके व्यक्तित्व का कथन कर सकते हैं ।

मंत्रीश्वर की बात महाराजा को जँच गई और उन्होंने तत्काल चारों ओर दूत के साथ चित्रकार भिजवाए ।

कुछ ही दिनों में राजकुमारों के चित्र आने लगे । महाराजा चित्र में रहे चेहरे को देखकर राजकुमार के व्यक्तित्व का अन्दाजा करने लगे, किन्तु अभी तक कोई सन्तोषजनक चेहरा नजर नहीं आ रहा था ।

अचानक संध्या समय एक दूत आया, उसने आते ही एक सुन्दर छवि महाराजा के हाथ में थाम दी । महाराजा ने चित्र पर से पर्दा हटाया । चित्र क्या था-साक्षात् बोलती तस्वीर थी । महाराजा देखते ही रह गये...``यह इस धरती का पुरुष है या साक्षात् देव ? इतनी सुन्दर...भव्य आकृति !''

महाराजा ने हृदयसुन्दरी को वह चित्र बताया । चित्र देखते ही महारानी का मन-मयूर नाच उठा ।

थोड़ी ही देर बाद एक दूसरा मंत्री दूसरा चित्र लेकर उपस्थित हुआ, मंत्री ने वह चित्र महाराजा को सौंप दिया । चित्र को देख महाराजा विचार में पड़ गये । वह चित्र भी अतीव सुन्दर था । महाराजा निर्णय न कर पाये कि पहला चित्र अधिक सुन्दर है या दूसरा ?

दोनों चित्रों ने महाराजा के मन को मोह लिया था । हृदयसुन्दरी भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन गयी थी, वह भी निर्णय न कर सकी ।

महाराजा ने पहला चित्र लाने वाले दूत को बुलाया और पूछा-``यह किसका चित्र है ?''

दूत ने कहा-``यह चित्र विद्याधर राजा हिरण्याभ के पुत्र **विद्युत्प्रभ** का है । राजकुमार की माता का नाम `सुमना' है । राजकुमार अत्यन्त ही रूपवान्, कुलवान्, बलवान् और गुणवान् है ।''

दूत की बात सुनकर महाराजा अत्यन्त ही प्रसन्न हुए ।

फिर महाराजा ने दूसरे मंत्री को पूछा-``मंत्री ! तुम जो यह चित्र लाये हो, वह चित्र किसका है ? उनका परिचय ?''

मंत्री ने कहा-``स्वामिन् ! यह चित्र आदित्यपुर के विद्याधर महाराजा प्रह्लाद के पुत्र **पवनंजय** का है । उनकी माता का नाम केतुमती है । पवनंजय अत्यन्त ही पराक्रमी, कार्यकुशल, सुन्दर और अत्यन्त तेजस्वी है ।

विद्युत्प्रभ और पवनंजय दोनों में से पसन्दगी करना कठिन हो गया । हिरण्याभ और प्रह्लाद दोनों राजाओं के साथ महाराजा महेन्द्र के बहुत ही अच्छे सम्बन्ध थे ।

इसी बीच वह दूत बोला-``विद्युत्प्रभ की अपनी एक विशेषता भी है । वे इसी भव में मोक्ष जाने वाले हैं, वे चरमशरीरी हैं ।''

महाराजा आश्चर्यचकित होकर बोले-``ओहो ! वे चरमशरीरी हैं । तो बताओ, क्या तुमने उनके आयुष्य के बारे में कुछ जाना या सुना है ?''

उसने कहा-``हाँ जी ! मैंने निमित्तज्ञ द्वारा उनके आयुष्य के बारे में भी जानकारी प्राप्त की है । वे 18 वर्ष की उम्र में निर्वाण पाने वाले हैं ।''

महाराजा बोले-``ओहो ! मात्र 18 वर्ष की लघुवय में ।''

फिर महाराजा ने पवनंजय का चित्र लाने वाले मंत्री को पूछा-``क्या तुम पवनंजय के आयुष्य के बारे में जानते हो ?''

मंत्री ने कहा-``हाँ जी ! निमित्तज्ञों ने मुझे बताया है कि वे दीर्घायुषी हैं ।''

दोनों की बातों को सुनकर मंत्रीश्वर की ओर इशारा कर महाराजा बोले-``मंत्रीश्वर ! अब क्या निर्णय लेना है ?''

मंत्रीश्वर ने कहा, ``राजन् ! कन्या के इस लोक और परलोक के हित के लिए पति का गुणवान्, कुलवान्, बलवान्, ऐश्वर्यवान् तथा दीर्घायुषी होना

जरूरी है। विद्युत्प्रभ गुणवान्, कुलवान् होते हुए भी अल्पायुषी है और पवनंजय गुणवान होने के साथ-साथ दीर्घायुषी भी है। अतः मेरी दृष्टि से तो अंजना के लिए पवनंजय ही एक सुयोग्य वर है।''

महाराजा और महारानी ने महामंत्री के सुझाव का हृदय से स्वागत किया और तत्काल निर्णय ले लिया।

❑ अंजना के वर की पसंदगी हो जाने के कारण महाराजा अब निश्चिन्त हो चुके थे और अत्यन्त प्रसन्नमुद्रा में बैठे हुए थे। इसी बीच पड़ोसी विद्याधर राजाओं की ओर से आमंत्रण आया-**''आज सभी विद्याधर राजा सपरिवार नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा के लिए पधार रहे हैं, अतः तीर्थयात्रा के पावन प्रसंग में सम्मिलित होने के लिए आप भी सपरिवार पधारें।''**

महाराजा महेन्द्र ने निमंत्रण स्वीकार किया और उन्होंने हृदयसुन्दरी, अंजना तथा सभी परिवारजनों को यात्रा हेतु प्रयाण की तैयारी के लिए आज्ञा कर दी।

थोड़ी देर में अपने परिवार के साथ महाराजा महेन्द्र विमान में आरूढ़ हो गये और नन्दीश्वर द्वीप की ओर आगे बढ़ने लगे। आकाशमार्ग से वह विमान गुजर रहा था। बीच में अनेक द्वीप और समुद्र आये।

अंजनाकुमारी द्वीप और समुद्रों के प्राकृतिक दृश्यों को निहार रही थी...विमान अत्यन्त तेजी से आगे बढ़ रहा था। विमान कुछ ही समय बाद नन्दीश्वर द्वीप पर पहुँच गया।

आज किसी महोत्सव का प्रसंग होने से चारों ओर से अनेक विद्याधर महाराजा शाश्वत तीर्थ की यात्रा हेतु आ रहे थे, देखते-ही-देखते वहाँ हजारों नर-नारी इकट्ठे हो गये।

महाराजा महेन्द्र ने अपनी महारानी हृदयसुन्दरी और पुत्री अंजना के साथ परमात्मा की भावपूर्वक द्रव्य-पूजा की। अनेक महाराजा प्रभु-भक्ति में तल्लीन बने हुए थे।

द्रव्यपूजा की समाप्ति के बाद भावपूजा प्रारम्भ हुई।

अंजना प्रभु के गुणगान में तल्लीन बन गई। वह मधुर कण्ठ से परमात्मा की स्तवना कर रही थी। सुरीले कण्ठ की उस स्तवना के श्रवण में सभी लोग मस्त बन चुके थे। इस प्रकार अत्यन्त ही भावपूर्वक अंजना ने परमात्मा की भावपूजा की।

परमात्मा की पूजा-समाप्ति के बाद महाराजा महेन्द्र आदि मन्दिर से बाहर निकले और नंदीश्वर द्वीप के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने लगे । अचानक महेन्द्र राजा की दृष्टि प्रह्लाद राजा पर पड़ी । वे बोले-``ओहो ! आप कुशल हो न ! आपका आगमन कैसे हुआ ?''

प्रह्लाद ने कहा-``परमात्मा देवाधिदेव की असीमकृपा से आनन्द है । शाश्वत चैत्यों की यात्रा के लिए ही यहाँ आगमन हुआ है ।''

थोड़ीसी औपचारिक बातचीत के बाद महाराजा प्रह्लाद ने कहा-``मैं तुमसे एक चीज माँगना चाहता हूँ ।''

महेन्द्र ने कहा-``जरूर माँगो ।''

प्रह्लाद ने कहा-``अपने पुत्र पवनंजय के लिए आपकी पुत्री अंजना की माँग करता हूँ । मैं आपकी पुत्री को अपनी कुलवधू बनाना चाहता हूँ ।''

प्रह्लाद के मुख से इस बात को सुनकर महेन्द्र के हर्ष का पार न रहा । महेन्द्र राजा की तो यही तीव्र इच्छा थी, अतः तत्काल पवनंजय और अंजना के सम्बन्ध का निर्णय ले लिया गया ।

अंजना के सम्बन्ध का निर्णय हो जाने के बाद महाराजा महेन्द्र ने सोचा-**``अच्छा हो, सम्बन्ध-निर्णय के साथ पुत्री का विवाह भी हो जाय, अतः उसने तत्काल ज्योतिषी को बुलवाया और लग्न का शुभमुहूर्त निकालने की आज्ञा कर दी ।**

ग्रह-नक्षत्र आदि देख कर ज्योतिषी बोला-``पवनंजय और अंजना के विवाह के लिए आज से तीसरा दिन सर्वश्रेष्ठ दिन है ।''

महेन्द्र राजा ने प्रह्लाद राजा से बात की । प्रह्लाद राजा ने महेन्द्र के प्रस्ताव का स्वागत किया । दोनों परिवार नंदीश्वर द्वीप से मानसरोवर के किनारे आ गये । वहीं पर एक नगरी की रचना कर दी गई ।

सखियों द्वारा अंजना को पता चल गया कि पवनंजय के साथ उसका सम्बन्ध हो चुका है और अब वहाँ विवाह की तैयारियाँ चल रही हैं ।

पवनंजय को भी पता चला कि अंजना के साथ उसका विवाह होने वाला है ।

अंजना ने पवनंजय के रूप-सौन्दर्य आदि के बारे में बहुत कुछ सुना था, अतः अंजना पवनंजय जैसे महान् पति को पाने के लिए अत्यन्त उत्सुक बन चुकी थी ।

कई बार व्यक्ति सोचता कुछ और है और होता कुछ और है। अंजना भावी पतिसुख की कल्पना में खोई हुई थी, परन्तु उसे कहाँ पता था कि वह जो कुछ सोच रही है, वह भवितव्यता को मंजूर नहीं है।

अंजना की कल्पना है ``आज से तीसरे दिन मुझे पवनंजय जैसे सुयोग्य वर की प्राप्ति होगी और मेरा जीवन धन्य बन जाएगा।'' उसे पता नहीं था कि विवाह की वह मंगल घड़ी उसके भावी दुःख का विराट् वृक्ष बन जाएगी।

2. पवनंजय की अधीरता

पवनंजय ने अंजनाकुमारी के रूप-सौन्दर्य आदि के बारे में बहुत कुछ सुना था, किन्तु अभी तक उसने अंजना का चेहरा देखा नहीं था। पवनंजय ने अपने मित्र प्रहसित को पूछा-``क्या तूने अंजना को देखा है ? वह कैसी है ?''

प्रहसित ने कहा-``हाँ। एक बार मैंने अपनी आँखों से अंजना के चेहरे को देखा है। ओहो ! उसके रूप-सौन्दर्य का क्या वर्णन करूँ ? उसे देखने पर प्रश्न खड़ा होता है कि वह देवसुन्दरी देवी है या मानुषी ? उसके रूप का वर्णन करना मेरे लिए अशक्य है।''

प्रहसित के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर पवनंजय अंजना के रूपदर्शन के लिए लालायित हो उठा। वह बोला-``इसी घड़ी मुझे अंजना को देखना है।''

प्रहसित ने कहा-``मित्र ! अधीर मत बनो। आज से तीसरे दिन अंजना तुम्हारी प्रिया बननेवाली है, तो फिर तुम इतने अधीर क्यों बन रहे हो ?''

पवनंजय ने कहा-``मित्र ! तुम्हारी सब बातें ठीक हैं, किन्तु एक बार तो मुझे अंजना को देखना ही होगा। उसके बिना मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।''

पवनंजय अंजना के रूपदर्शन का पिपासु बन गया।

जो व्यक्ति गुणग्राही न होकर केवल रूप के पिपासु होते हैं, वे पतंगे की भाँति अपने जीवन को बर्बाद कर देते हैं। रूप और गुण का कोई अविनाभावी संबंध नहीं है। जहाँ रूप हो वहाँ गुण हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। नमक में सफेदी है, किन्तु खारापन है, इलायची-कस्तूरी श्याम हैं, किन्तु उनमें गुण हैं-सुगन्ध है।

पवनंजय मात्र रूप का पिपासु बना था । वह अंजना के रूपदर्शन के लिए अत्यन्त अधीर बन चुका था ।

पवनंजय की असीमित उत्सुकता को देख, प्रहसित ने कहा, ``आज रात को गुप्त रूप से हम अंजना के महल में चलेंगे ।''

संध्या का समय हुआ और पवनंजय व प्रहसित दोनों गुप्त रूप से विमान में बैठकर मानसरोवर के किनारे आ गये ।

सात मंजिल के ऊपरी खण्ड में अंजनाकुमारी अपनी सखियों के साथ वार्ता-विनोद कर रही थी ।

दोनों मित्र ऊपरी खण्ड के गुप्त भाग में पहुँच गये । खिड़की का एक द्वार खुला था, गुप्त रूप से पवनंजय अंजना के रूप को देखने लगा ।

अंजना के दिव्य, अद्‌भुत और तेजस्वी रूप के दर्शन कर पवनंजय के आश्चर्य का पार न रहा । ``अहो ! यह तो साक्षात् कामदेव की पत्नी रति से भी अधिक सुन्दर लग रही है । मैं पुण्यशाली हूँ कि ऐसी रूपवती कन्या के साथ मेरा पाणिग्रहण होगा ।''

अंजना की सखियाँ परस्पर वार्तालाप कर रही थीं । पवनंजय उस वार्तालाप को सुनने लगा ।

एक सखी ने कहा-``अंजना ! तू वास्तव में भाग्यशालिनी है कि तुझे पवनंजय जैसा सुयोग्य वर मिला ।''

दूसरी सखी-, ``अरे सखी, तू यह क्या बोलती है । चरम शरीरी विद्युत्प्रभ को छोड़कर दूसरा पुरुष प्रशंसनीय कैसे हो सकता है ?''

फिर वसंततिलका बोली-``तू तो बिल्कुल बे-अक्ल है, विद्युत्प्रभ तो अल्प आयुष्यवाला है, अपनी सखी के लिए अल्प आयुष्यवाला पति प्रशंसनीय कैसे हो सकता है ?''

यह सुनकर एक सखी बोली-**``अरे ! तू भी भूल गई, अमृत की तो दो बूँद भी अच्छी होती है और जहर का कटोरा भर दिया जाय तो भी किस काम का ?''**

इस प्रकार के वार्ता-विनोद में स्वयं अंजना मौन बैठी हुई थी-परस्पर सखियाँ ही वार्तालाप कर रही थीं ।

इस वार्तालाप को सुनकर पवनंजय ने सोचा-``अहो ! ये सखियाँ मेरी तुलना जहर के साथ कर रही हैं और फिर भी अंजना मौन है । जरूर

अंजना के हृदय में विद्युत्प्रभ का वास होना चाहिए, अन्यथा वह मौन क्यों रहती ?''

पवनंजय आगबबूला हो उठा । तत्काल वह अंजना व उसकी सखियों की हत्या के लिए तैयार हो गया ।

तभी प्रहसित ने उसे रोक लिया और कहा-, ``मित्र ! यह क्या करने के लिए तैयार हुए हो ? अपराधिनी स्त्री भी अवध्या है तो फिर निर्दोष अंजना की हत्या का प्रयास...?''

संसार के समस्त पदार्थ परिवर्तनशील हैं । वस्तु की पर्यायें (अवस्थाएँ) प्रतिक्षण बदलती जा रही हैं । किसी वस्तुविशेष पर अभी राग होता है, तो कुछ समय बाद उसी वस्तु पर द्वेष भी हो जाता है ।

पवनंजय आया था अंजना के रूप का अमीपान करने के लिए...और कुछ ही क्षणों में भयंकर रोष से उसकी आत्मा भड़क उठी ।

उसके हृदय में अंजना के प्रति द्वेष की भावना पैदा हो गई ।

जिसके रूपदर्शन के लिए वह इतना अधिक अधीर बना था, जिसके दर्शन के लिए उसने नीति-मर्यादा का भी भंग कर दिया था...वही पवनंजय अब क्रोधान्ध बन गया ।

प्रहसित ने पवनंजय को बहुत समझाया । वह उसे उसी समय वहाँ से विमान द्वारा अपने महल में ले आया ।

पवनंजय ने कहा-,**``मित्र प्रहसित ! अब मुझे अंजना से विवाह नहीं करना है । मेरा मन अत्यन्त व्याकुल बन गया है ।''**

प्रहसित ने समझाया-,``मित्र ! इस प्रकार की बात मत करो । रात्रि की घटना का कुछ गम्भीरता से विचार करो । अंजना कुमारी बिल्कुल निर्दोष है, सखियों के वार्ता-विनोद में उसका मौन रहना ही उचित है । मित्र ! अपने महाराजा की इज्जत का सवाल है, तुम्हारे पिता ने अंजना की माँग की है और तुम इस प्रकार विवाह से इन्कार कर दोगे तो तुम्हारे पिता को कितना गहरा दु:ख होगा ?''

प्रहसित के बहुत समझाने पर पवनंजय ने विवाह के लिए अपनी सहमति दे दी ।

तीसरे दिन मंगल मुहूर्त्त में पवनंजय और अंजना का विधिपूर्वक पाणिग्रहण हो गया ।

अंजना को कोई गन्ध भी नहीं थी कि पवनंजय के हृदय में उसके प्रति द्वेष की भावना पैदा हो गई है। वह तो पवनंजय को पाकर अपने आपको धन्य मान रही थी।

अंजना के हृदय में पति-मिलन की अनेक आशाएँ थीं।

पाणिग्रहण की विधि-समाप्ति के बाद महेन्द्र राजा और हृदयसुन्दरी ने अंजना को हृदय से आशीर्वाद प्रदान किये और अनेक प्रकार की हितशिक्षाएँ प्रदान कीं।

अंजना ने पवनंजय के विमान में पैर रखा और देखते ही देखते वह विमान आकाशमार्ग से उड़ता हुआ आदित्यपुर नगर में आ पहुँचा।

चारों ओर से नूतन दम्पती का स्वागत किया गया। महाराजा-महारानी आदि सभी आनन्द में थे।

महाराजा ने नूतन पुत्रवधू के आवास के लिए सात मंजिल का महल प्रदान किया।

सोलह श्रृंगार सजी अंजना अपने स्वामी पवनंजय से मिलने के लिए उत्कण्ठित बनी हुई थी। परन्तु यह क्या ? पवनंजय ने तो उसी क्षण अंजना का त्याग कर दिया था।

पवनंजय ने अंजना के महल में पांव भी नहीं रखा। रात्रि को जब पवनंजय नहीं आये तो अंजना सोच में पड़ गई। सोचा-``किसी कार्य में व्यस्त होंगे, प्रातः आकर मुझे मिलेंगे।'' परन्तु प्रातःकाल भी बीत गया। धीरे-धीरे दिन बीतने लगे, किन्तु पवनंजय अंजना के निकट गया ही नहीं।

सती अंजना को जब पता चला कि उसके पति ने उसका छोड दी है, तो उसे बहुत गहरा दुःख हुआ, किन्तु इस दुःख दर्दभरी अवस्था में भी उसने अपने स्वामी पर दोषारोपण नहीं किया। वह अपने ही कर्म को दोष देने लगी-``गत जन्म में मैंने कोई भयंकर पाप किया होगा, जिसके परिणामस्वरूप मेरे स्वामी ने मेरा त्याग कर दिया है। इस त्याग में मेरे स्वामी का कोई दोष नहीं है।''

दुःख के प्रसंग में जब हम दूसरे पर दोषारोपण करते हैं, तब हमारी पीड़ा अत्यधिक बढ़ जाती है, किन्तु दुःख के प्रसंग में स्व-पापकर्म के उदय का चिन्तन किया जाय तो इससे हमें समाधि की प्राप्ति होती है। स्वकर्म के चिन्तन से एक ओर हमें दुःख को सहन करने की शक्ति मिलती है तो दूसरी ओर अपने दुःख में निमित्त बनी जीवात्मा के प्रति द्वेष की भावना से बच जाते हैं।

अधिकांश आत्माएँ इस तत्त्वज्ञान से अनभिज्ञ और अपरिचित होने के कारण दु:ख के प्रसंग में अत्यन्त दीन बन जाती हैं और वे दूसरे पर दोषारोपण करती हैं, इस दोषारोपण के कारण वे पुन: नये कर्मों का अर्जन करती हैं, इस प्रकार दु:ख की परम्परा चलती रहती है ।

3. युद्ध के लिए प्रयाण

नदी के जलप्रवाह की भाँति समय बीतता जा रहा था ।

पति के वियोग में अंजना ने सभी श्रृंगार छोड़ दिये । सुन्दर वस्त्र और अलंकारों का उसने त्याग कर दिया । पति से त्याज्य होने पर भी अंजना के हृदय में पवनंजय के प्रति लेश भी द्वेष पैदा नहीं हुआ । वह हृदय से पति को चाहती थी । वह अपना अधिकांश समय परमात्म-ध्यान, पूजन और भक्ति में व्यतीत करने लगी । उसे अपने दैहिक सुख की लेश भी चिन्ता नहीं थी ।

इस प्रकार पति-विरह में अंजना सती ने 22 वर्ष व्यतीत कर दिये । पूज्य **वीर विजय जी ने** गाया है-

बावीस वरस वियोगे रहेती,
पवनप्रिया सती अंजना रे,
जिनराजकूँ सदा मोरी वन्दना रे ।

पवनंजय-अंजना के विवाह के 22 वर्ष बीत चुके थे ।

एक दिन महाराजा प्रह्लाद अपनी राजसभा में बैठे हुए थे, उसी समय रावण का एक दूत आया और उसने महाराजा को रावण का सन्देश सुनाते हुए कहा—

``आपको पता होगा-वरुणपुरी में वरुण राजा राज्य करता है । उसको वश में करने के लिए रावण ने अपना दूत भेजा, किन्तु वरुण राजा ने उसका तिरस्कार कर दिया । इतना ही नहीं महाराजा रावण की ओर से युद्ध के लिए गये हुए खर और दूषण को भी उसने परास्त कर कैद कर लिया, अत: अब स्वयं रावण युद्ध में जाने की तैयारी कर रहे हैं । इस युद्ध में जाने के लिए आपको भी आमंत्रण है ।''

महाराजा ने दूत के आमंत्रण को स्वीकार किया । युद्धप्रयाण की तैयारी होने लगी । ज्योंही पवनंजय को इस बात का पता चला, वह पिता के पास आया और बोला-,``पिताजी ! आप यहीं रहो, इस युद्ध में मैं जाऊंगा ।''

पिता ने पवनंजय को बहुत समझाया, किन्तु पवनंजय नहीं माना और वह युद्ध में जाने की तैयारी करने लगा ।

पवनंजय ने युद्ध के लिए प्रयाण किया । सभी ने पवनंजय का अभिवादन किया । मित्र प्रहसित साथ में था ।

सती अंजना को पता चला कि उसके स्वामी युद्ध में जाने की तैयारी कर रहे हैं । ``क्या पता युद्ध से कब लौटेंगे ?'' यह विचार कर उसने भी उनके दर्शन करने चाहे । पति की इस विजययात्रा में मंगल अभिवादन के लिए अंजना सती अपने महल से एकदम नीचे उतर आई और पति के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी ।

इधर पवनंजय ने अंजना को देखा तो उसके हृदय में तिरस्कार की भावना जाग उठी ।

पवनंजय निकट आया, अंजना उसके पैरों में गिर पड़ी और बोली...**``स्वामिन् ! आप मुझे भूल मत जाना...आपका यह मार्ग कल्याणकारी बने । शिवास्ते पन्थानः सन्तु ।''**

किन्तु अत्यन्त समर्पित अंजना का भी पवनंजय ने तिरस्कार कर दिया और वह आगे बढ़ गया ।

जब व्यक्ति के पापकर्म का उदय होता है, तब मित्र भी शत्रु बन जाते हैं और जब पुण्य का उदय होता है, तब शत्रु भी मित्र बन जाते हैं ।

पति के इस तिरस्कार से अंजना को बहुत दुःख हुआ । वह अपने शयनखण्ड में चली गई और जोर से पलंग पर गिर पड़ी । उसकी करुण आँखें रुदन करने लगीं ।

वसन्ततिलका ने कहा-``सखी ! स्वामीनाथ की इतनी निष्ठुरता ? ओहो ! कितना कठोर हृदय है उनका ?''

दोनों की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी ।

अंजना सती ने तत्त्वज्ञान के चिन्तन से समाधि प्राप्त की ।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सुख-दुःख के प्रसंग आते रहते हैं । परन्तु सामान्यतः अधिकांश व्यक्ति सुख में लीन बन जाते हैं और दुःख आने पर अत्यन्त दीन बन जाते हैं । सुख आने पर हर्षित होते हैं और दुःख आने पर रुदन करने लग जाते हैं, परन्तु महान् आत्माएँ सुख की भाँति दुःख को भी सहजता से स्वीकार करती हैं । वे आत्माएँ न तो सुख में अत्यन्त आसक्त बनती हैं और न ही दुःख में अत्यंत दीन बनती हैं ।

सुख में आसक्ति और दुःख में रुदन, शान्ति और समाधि का मार्ग नहीं है । दुःख में दीन बनना कायरता का लक्षण है ।

महान् आत्माएँ दुःख का भी स्वागत करती हैं । दुःख आने पर वे सोचती हैं, ``गत जन्म में मेरे द्वारा किये गये दुष्कर्म का यह फल है, इस दुःख का कर्त्ता मैं स्वयं हूँ, अतः यह दुःख मुझे भोगना ही चाहिए ।''

वास्तव में, देखा जाय तो इस दुनिया में कोई भी व्यक्ति अपना मित्र अथवा शत्रु नहीं है । अपना ही पुण्योदय अथवा पापोदय किसी को मित्र और शत्रु बनने की प्रेरणा देता है । जब किसी व्यक्ति के पुण्य का उदय होता है, तब अन्य व्यक्ति उसके मित्र बन जाते हैं और जब उस व्यक्ति के पाप का उदय आता है, तब उसके वे ही मित्र शत्रु बन जाते हैं ।

युद्ध-भूमि के प्रयाण-समय पवनंजय ने अंजना का भयंकर तिरस्कार किया था । परन्तु जब वह मानसरोवर के किनारे डेरे डाल कर रहा था, तब उसकी नजर में एक ऐसी अद्‌भुत घटना बनी, जो अंजना के पापोदय में भी पुण्य की चिनगारी प्रकट करनेवाली बन गई ।

आदित्यपुर नगर को छोड़कर पवनंजय अपने मित्र प्रहसित के साथ मानसरोवर के किनारे आ पहुँचा था । संध्या का समय था, मानसरोवर के किनारे अनेक पक्षीगण क्रीड़ा कर रहे थे ।

धीरे-धीरे सूर्य अस्ताचल की ओर आगे बढ़ रहा था । अन्धकार की श्यामल छाया ने पृथ्वीमण्डल को घेर लिया था । पवनंजय ने देखा-एक चकवी अत्यन्त क्रन्दन कर रही है । दिन भर वह चकवे के साथ मानसरोवर के शीतल जल में क्रीड़ा करती रही और ज्योंही संध्या समय चकवे का वियोग हुआ, वह फूट-फूटकर रोने लगी ।

चकवी की करुण चीत्कारों ने पवनंजय के कठोर हृदय को भी भेद दिया, वह सोचने लगा-,``ओहो ! दिन भर इन पक्षियों का परस्पर संयोग रहा और रात्रि होते ही उनका वियोग हो गया, परन्तु यह पक्षिणी विरह की उस व्यथा को सहन नहीं कर पा रही है और कितनी व्याकुल है !''

चकवी की इस वियोग-व्यथा ने उसे अंजना की याद दिलाई । पवनंजय विचारों में खो गया, सोचने लगा...``अहो ! उस अंजना का क्या हाल हो रहा होगा ? विवाह के पहले दिन से ही मैंने उसका त्याग और तिरस्कार कर दिया था, इतना ही नहीं युद्ध-प्रयाण के समय, उसके अभिवादन को भी मैंने स्वीकार नहीं किया...उस समय भी मैंने उसका घोर अपमान

किया...ओहो ! उसके सुकोमल हृदय पर कितनी भयंकर चोट लगी होगी ? उसके मृदु हृदय पर मैंने वज्र का भयंकर प्रहार किया, उसका हृदय टूट-टूटकर बिखर गया होगा । नहीं...नहीं । ऐसा अधम कृत्य अब मेरे हाथों से नहीं होगा...उसके टूटते हृदय को मैं थाम लूंगा । वह तो महान् है । वह मेरे अपराध को जरूर क्षमा कर देगी, मैं अपनी भूल का पश्चाताप करूंगा ।''

पवनंजय को विचारों में डूबे देखकर प्रहसित ने कहा-,``पवनंजय ! किन विचारों में खो गये हो ?''

पवनंजय बोला-,``मित्र प्रहसित ! मुझे इसी समय लौटना होगा, अपने पाप का प्रायश्चित्त करना होगा ?''

``कौनसा पाप ?''

``क्या मेरे भयंकर अपराध से तुम अपरिचित हो ? अंजना के साथ मैंने कितना घोर अन्याय किया है ? आज मुझे अपनी भूल ख्याल में आई है, उस भूल का मुझे प्रायश्चित्त करना होगा । मैं अभी अंजना के पास जाऊंगा और उसके सुकोमल हृदय को सान्त्वना दूंगा ।''

प्रहसित ने पवनंजय को प्रोत्साहित किया और तत्काल वे विमान में बैठकर अंजना के महल में उतर आये ।

नीचे उतरने के बाद सर्वप्रथम प्रहसित ने अंजना के खण्ड की ओर गमन किया ।

सती स्त्री अपना जीवन एक ही व्यक्ति को समर्पित करती है । वह अपने स्वामी के चरणों में दासी बनकर रहती है और यदि कोई परपुरुष उसके सामने आँख उठाकर भी देखे तो वह भयंकर रणचण्डी बनकर उसका सामना भी करती है ।

अंजना के महल में एक दीपक टिमटिमा रहा था...मानों अंजना के शोक में वह भी अपनी तेजस्विता को प्रगट करने में संकोच का अनुभव कर रहा था ।

अंजना पलंग पर बैठी हुई रो रही थी ।

युद्ध-प्रयाण के समय स्वामी द्वारा किये गये तिरस्कार को सहन करने में वह असमर्थ बन गई थी...फिर भी रुदन के बहाने वह अपने शोक को बाहर निकाल रही थी ।

तभी अंजना को किसी के आगमन की पदचाप सुनाई दी । वह सोचने लगी-``इस अंधियारी रात्रि में कौन आ रहा है ?''

तत्काल उसने वसन्ततिलका को कहा-,``अरे वसन्ता ! देख तो जरा । अंजना के आवास में आने की कौन धृष्टता कर रहा है । मेरे इस महल में पवनंजय के सिवाय किसी को आने का अधिकार नहीं है । बसन्ता ! उसे तू बाहर निकाल दे ।''

प्रहसित ने ये शब्द सुने । उसने भावपूर्वक अंजना को मनोमन प्रणाम किया और सोचने लगा-``अहो ! इस महासती के हृदय में पवनंजय का कितना अधिक स्थान है !''

प्रहसित ने कहा-``हे स्वामिनि ! मैं पवनंजय का मित्र प्रहसित हूँ और पवनंजय के आगमन की सूचना देने आया हूँ ।''

प्रहसित की बात सुनकर अंजना ने कहा-``प्रहसित ! यह समय हास-परिहास का नहीं है । तुम मेरे घाव पर नमक क्यों छिड़क रहे हो ? खैर ! इसमें तुम्हारा भी कोई दोष नहीं है, मेरे ही दुष्कर्म मुझे परेशान कर रहे हैं ।''

अंजना आगे कुछ बोल ही रही थी कि तत्क्षण पवनंजय अंजना के निकट आ गया ।

इस प्रकार अचानक ही पवनंजय को अपने निकट देखकर अंजना के आश्चर्य का पार नहीं रहा । सोचने लगी-``यह स्वप्न है या सत्य ?''

अपने पतिदेव को सामने देखकर अंजना तत्क्षण खड़ी हो गई । उसने पतिदेव का स्वागत किया ।

प्रहसित उस खण्ड से बाहर निकल गया ।

पवनंजय ने कहा-,``प्रिये ! मैंने तुम्हारे प्रति घोर अन्याय किया है...मैं अपराधी हूँ...तुम मुझे क्षमा कर दो ।''

अंजना ने कहा-``स्वामिन् ! आप ऐसा न कहें । अपराधी मैं स्वयं हूँ, मेरे ही दुष्कर्म उदय में आये हैं-आपकी तो मैं दासी हूँ ।''

रात्रि का समय व्यतीत हो रहा था ।

रात्रि के अन्तिमप्रहर में पवनंजय ने कहा-,``प्रिये ! मैंने युद्ध के लिए प्रयाण किया है, अतः अभी मुझे यहाँ से जाना पड़ेगा । लंका का कार्य पूर्ण कर मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा ।''

पवनंजय ने अपने आगमन की साक्षी रूप एक अँगूठी अंजना को दे दी । अंजना ने कहा-``स्वामिन् ! आप जल्दी पधारें । आपका मार्ग निष्कंटक बने ।''

और थोड़ी ही देर में पवनंजय और प्रहसित मानसरोवर के किनारे आ पहुँचे ।

पवनंजय का यह मिलन, अंजना के पापोदय के बीच एक चिनगारी समान ही था । थोड़े ही क्षणों में वह चिनगारी बुझ गई ।

अंजना गर्भवती हो गई । कुछ मास के बाद अंजना के देह में गर्भ के चिह्न दिखाई देने लगे ।

एक बार अचानक केतुमती ने अंजना को देख लिया । अंजना के देह में गर्भ के चिह्न देखकर वह आग-बबूला हो उठी, ``अरे ! इस दुष्टा ने हमारे कुल को कलंकित कर दिया है ।''

``अरे ! यह सती नहीं, कुलटा है । आज तक मैं पवनंजय को दोषी मानती थी, परन्तु अब मुझे सत्य ख्याल आ गया है कि पवनंजय ने इसका त्याग क्यों किया है ? हाँ ! जरूर यह पापिनी है ।''

अंजना ने पवनंजय के द्वारा दी गई अँगूठी केतुमती को बताई, किन्तु इससे केतुमती पर कोई असर नहीं हुआ, वह बोली-``मेरा पुत्र जब तेरा मुँह भी देखना नहीं चाहता है और 22 वर्षों से जिसने तेरा त्याग कर रखा है, उसके आगमन की बात कैसे मानी जाय ? तू अपने पाप को छिपाना चाहती है ।''

केतुमती के भयंकर क्रोध से अंजना को भयंकर आघात लगा । वह अपने खण्ड में चली गई और करुण रुदन करने लगी ।

केतुमती तत्काल महाराजा के पास गई । वहाँ जाकर उसने अंजना का दुश्चरित्र प्रस्तुत किया ।

महाराजा को अंजना के सतीत्व में तनिक भी सन्देह नहीं था, अतः ज्योंही केतुमती ने अंजना के दुश्चरित्र की बात कही, महाराजा प्रह्लाद ने कहा-``यह बिल्कुल असम्भव है । 22 वर्षों से अंजना अपने महल में वास कर रही है...आज तक उसके दुःशील के सन्दर्भ में एक भी बात नहीं सुनी...यह अचानक कैसे सम्भव है ?''

महाराजा ने अंजना के महल के कर्मचारियों आदि से पूछताछ करवाई । परन्तु अंजना के सतीत्व को कलंकित करे, ऐसी कोई भी बात ज्ञात नहीं हुई । किन्तु केतुमती अत्यन्त दुराग्रही बन चुकी थी । उसने तो अंजना को असती मान ही लिया था, अतः उसने महाराजा को आग्रह किया, ``अंजना उसके पिता के घर भेज दी जाय, अन्यथा अपना कुल कलंकित हो

जाएगा, सभी प्रजाजन जानते हैं कि लग्न के साथ ही पवनंजय ने अंजना का त्याग किया है, अतः यदि वह यहाँ रहेगी तो लोक में हमारी निन्दा होगी ।''

महारानी का अत्यन्त आग्रह देखकर महाराजा ने रथिक को आज्ञा दी, ``अंजना को उसके घर छोड़ आओ ।''

तुरन्त रथिक रथ के साथ तैयार हो गया ।

अंजना को समाचार दिये गये । अंजना के हृदय में भयंकर वेदना थी । दर्द, पीड़ा व रुदन से उसकी आँखों में सूजन आ गई थी ।

...लेकिन आखिर सास व श्वसुर की आज्ञा उसे माननी पड़ी...और वसन्ततिलका दासी के साथ अंजना रथ में आरूढ़ हो गई ।

देखते ही देखते वह रथ जंगल के भीषण मार्गों को पार करते हुए आगे बढ़ने लगा ।

वन के भीषण दृश्य अंजना को भयभीत बना रहे थे ।

वनमार्गों को पार करते हुए वह रथ महेन्द्रपुर आ पहुँचा । अंजना रथ से नीचे उतरी । वसन्ततिलका भी नीचे उतरी ।

रथिक ने कहा-``अब मैं चलता हूँ ।'' अंजना ने अपनी मूक सहमति दे दी ।

अंजना अपनी सखी वसन्ततिलका के साथ अपने पितृ-गृह की ओर आगे बढ़ी ।

थोड़ी देर में अंजना राजमहल के निकट आ गई, परन्तु वहाँ भी भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया ।

प्रतिहारी ने जाकर पिता महेन्द्र राजा को अंजना के आगमन की सूचना दी और वसन्ततिलका दासी द्वारा कही गई सारी घटना सुना दी ।

महाराजा महेन्द्र के मन में अंजना के शील के प्रति सन्देह पैदा हो गया । वे सोचने लगे-``जब पवनंजय ने 22 वर्षों से अंजना का त्याग कर रखा है, तो वह अब गर्भवती कैसे बनी ? जरूर इसने अपना शील-भंग किया होगा । ऐसी कुलटा कन्या को अपने घर में स्थान दूंगा तो लोक में मेरी भी अपकीर्ति होगी । अतः क्यों नहीं, मैं भी इसका बहिष्कार कर दूँ ?''

महाराजा ने महारानी से सलाह-मशविरा किया और वह भी महाराजा के निर्णय से सहमत हो गई । युवराज प्रसन्नकीर्ति भी महाराजा के निर्णय से सहमत हो गया । तत्क्षण महाराजा ने द्वारपाल को आदेश दिया, ``तुम जाकर उस अंजना को बाहर निकाल दो और कह दो कि तुमने पिता के कुल को

कलंकित किया है, अतः महाराजा की आज्ञा है कि तुम राज्य की सीमा छोड़कर चली जाओ ।''

प्रतिहारी ने जाकर अंजना को महाराजा की आज्ञा सुना दी ।

आज्ञा सुनकर अंजना का हृदय दुःख से भर आया ।

बिना कुछ उत्तर दिये अंजना ने वहाँ से प्रयाण कर दिया ।

अंजना के लिए अब वन के निकुंजों के सिवाय अन्य कोई आश्रय स्थान नहीं था ।

अंजना, वसन्ततिलका के साथ वन की ओर आगे बढ़ी । मार्ग अत्यन्त ही विकट था । पैरों में काँटें चुभ रहे थे । भूख और प्यास भी सता रही थी । अंजना दुःख के महासागर में डूब चुकी थी ।

अंजना गर्भवती थी । चारों ओर संकट से घिरी हुई थी । शारीरिक प्रतिकूलताओं के बीच भी उसे अपने शील-रक्षण की अत्यधिक चिन्ता थी । उसने शीलरक्षण के लिए दृढ़ संकल्प किया । **''भयंकर परिस्थितियों के बीच भी मुझे अपने शील का संरक्षण करना है''** यह उसकी आत्मा की आवाज थी ।

भारत के महान् पूर्वजों के चरित्र-स्मरण के साथ ही जब भारतीय समाज की वर्तमान परिस्थिति का विचार करते हैं, तब हृदय में अत्यन्त दुःख का अनुभव होता है ।

कहाँ भारत की वे महासतियाँ !!! जिन्होंने अपने प्राणों की बलि देकर भी अपने शील का संरक्षण किया था । परन्तु अफसोस ! आज इस देश में शील का खुले आम नीलाम हो रहा है । जनसंख्यावृद्धि के नाम पर ऐसे-ऐसे साधनों का दिन-प्रतिदिन प्रचार किया जा रहा है, जिससे व्यभिचार-दुराचार को खुले आम प्रोत्साहन मिल रहा है । इस देश में गर्भपात एक भयंकर पाप गिना जाता था, परन्तु आज सरकार ही इस पाप को प्रोत्साहित कर रही है ।

क्या सिरदर्द के तत्क्षण निवारण के लिए ऐसी दवा ली जाय कि जिससे एकबार सिरदर्द तो मिट जाय, किन्तु बाद में कैन्सर पैदा हो जाय ?

3. मुनिदर्शन

थकी हुई अंजना एक वृक्ष के नीचे बैठ गई । वसन्ततिलका पास ही के वृक्षों से कुछ फल तोड़कर ले आई । अंजना व वसन्ततिलका ने फलाहार किया । उसके बाद वे दोनों निकट स्ही गुफा की ओर आगे बढ़ीं ।

उन दोनों ने गुफा में प्रवेश किया । प्रवेश करते ही उन्हें विद्याधर महामुनि के दर्शन हुए । अमितगति महामुनि उस गुफा में खड़े-खड़े कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे । अंजना व वसन्ततिलका दोनों ने महामुनि को भावपूर्वक प्रणाम किया ।

थोड़ी देर बाद वसंततिलका ने महामुनि को अंजना के जीवन की दुःखभरी कहानी सुना दी ।

महामुनि ने कहा-``हमारे जीवन में जो सुख-दुःख आते हैं, उनके कर्त्ता हम स्वयं ही हैं । आत्मा ही अपने सुख-दुःख की कर्त्ता और भोक्ता है । अन्य जीव तो निमित्त मात्र होते हैं । पूर्वकृत दुष्कर्मों के उदय के कारण ही इस जीवन में दुःख आते हैं, अतः दुःख आने पर दीन नहीं बनना चाहिए ।

``दुःख को समतापूर्वक सहन करने से पुनः नये कर्मों का बन्ध नहीं होता है । दुःख में दीन बनने से आत्मा पुनः नये-नये कर्मों का बन्ध करती है । अतः जीवन में आये हुए दुःखों को समतापूर्वक सहन करना चाहिए...।''

महामुनि की इस मधुर धर्मदेशना को सुनकर अंजना को बल मिला ।

अंजना ने कहा, ``हे महामुने ! मैंने गत जन्म में ऐसा कौनसा पाप किया, जिस कारण मुझे इस जीवन में निरन्तर आपत्तियों का सामना करना पड़ा ?''

अंजना का प्रश्न सुनकर महामुनि बोले-``इस हेतु तेरे गत जन्मों के इतिहास को जानना पड़ेगा ।''

इसी भारत भूमि में कनकपुर नाम का नगर है । उस नगर में कनकरथ नाम का पराक्रमी राजा राज्य करता था । उस राजा के मुख्य दो रानियाँ थीं- कनकोदरी और लक्ष्मीवती ।

लक्ष्मीवती को परमात्म-भक्ति का अद्‌भुत रस था, वह रूपवती होने के साथ-साथ गुणवती भी थी ।

महाराजा के हृदय में लक्ष्मीवती का प्रथम स्थान था ।

लक्ष्मीवती ने अपने राजमहल में परमात्मा का एक भव्य जिनमन्दिर बनवाया था । उस मन्दिर में परमात्मा की भव्य जिनप्रतिमा स्थापित की थी ।

लक्ष्मीवती प्रतिदिन परमात्मा की अद्‌भुत भक्ति करती थी । महाराजा भी महारानी की परमात्म-भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न थे ।

महारानी लक्ष्मीवती प्रतिदिन परमात्मा की भव्य अंगरचना बनाती,

जिसके दर्शन के लिए सैकड़ों नर-नारी आते, सभी लोग लक्ष्मीवती के सद्‌गुणों की प्रशंसा करते ।

लक्ष्मीवती की प्रशंसा चारों ओर फैल रही थी । कनकोदरी उस प्रशंसा को सहन न कर सकी, उसके हृदय में ईर्ष्या की आग पैदा हो गई ।

ईर्ष्या एक अन्तरंग अग्नि है, जो व्यक्ति को भीतर ही जलाती है । ईर्ष्यालु व्यक्ति अन्य के उत्कर्ष को सहन नहीं कर पाता है और इस हेतु वह किसी भी प्रकार से अपने प्रतिपक्षी व्यक्ति को गिराना चाहता है ।

श्यामपट्ट (ब्लेकबोर्ड) पर खींची हुई रेखा को छोटी करने के दो उपाय हैं-

(1) उसके पास में दूसरी लम्बी रेखा खींच दी जाय अथवा (2) उस रेखा को काट दिया जाय ।

ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरे को नीचा करने के लिए दूसरा तरीका अपनाता है । पहले तरीके में उसे आगे बढ़ने के लिए अधिक पुरुषार्थ करना पड़ता है, जबकि दूसरे तरीके में दूसरे को नीचे गिराने का ही प्रयत्न रहता है ।

कनकोदरी लक्ष्मीवती के उत्कर्ष को सहन न कर सकी ।

एक बार कनकोदरी अत्यन्त उदास बैठी हुई थी । उसी समय सुलेखा दासी ने उसके कक्ष में प्रवेश किया ।

दासी ने कहा-``स्वामिनि ! आज आप इतनी उदास क्यों हो ?''

कनकोदरी ने अपने हृदय की बात सुलेखा को कह दी ।

कनकोदरी ने कहा-``लक्ष्मीवती की प्रसिद्धि का एक ही कारण मुझे दिखता है-वह है जिनेश्वर की प्रतिमा । यदि वह प्रतिमा हटा दी जाय तो उसकी प्रसिद्धि कम हो सकती है ।''

सुलेखा ने कहा-``महारानीजी ! आप निश्चिन्त रहिए । यह काम मैं आसानी से युक्तिपूर्वक कर लूंगी ।''

सुलेखा ने कनकोदरी को अपनी योजना बता दी । कनकोदरी प्रसन्न हो गई ।

दूसरे दिन से सुलेखा लक्ष्मीवती के पास आने-जाने लगी और उससे मीठी-मीठी बातें करने लगी । धीरे-धीरे वह लक्ष्मीवती के साथ पूजा-पाठ भी करने लगी ।

एक दिन अवसर पाकर वह मध्याह्न समय में मन्दिर में चली गई ।

मन्दिर में अन्य कोई व्यक्ति नहीं था । उसने वहाँ से मूर्ति उठा ली और उसे फूलों के करंडे में ढक दी और वह कनकोदरी के महल में आ गई ।

कनकोदरी की प्रसन्नता का पार न रहा, उसे अपनी योजना साकार होते दिखाई देने लगी ।

संध्या समय कनकोदरी व सुलेखा उस मूर्ति को लेकर नगर बाहर चली गई ।

इधर संध्या समय ज्योंही लक्ष्मीवती ने मन्दिर में प्रवेश किया तो वहाँ परमात्मा की प्रतिमा दिखाई नहीं दी । वह भूमि पर बेहोश होकर गिर पड़ी ।

चारों ओर हाहाकार मच गया । राजमहल में से लोग दौड़कर आने लगे ।

लक्ष्मीवती पर जल के छींटे डाले गये, थोड़ी देर बाद वह होश में आई और परमात्मा-विरह में करुण रुदन करने लगी । चारों ओर प्रतिमा की छानबीन होने लगी, किन्तु प्रतिमा का कहीं भी पता नहीं चला ।

महारानी ने प्रतिज्ञा की-,``जब तक परमात्मा की प्रतिमा नहीं मिलेगी, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूंगी ।''

महाराजा ने महारानी को प्रतिमा की शोध कराने के लिए आश्वासन दिया ।

इधर कनकोदरी नगर बाहर उद्यान में चली गई । उद्यान से थोड़ी दूर पर कचरे का ढेर पड़ा था, उसने करंडे में से मूर्ति निकाली और वह कचरे के ढेर की ओर आगे बढ़ी । उसने गन्दगी के ढेर में गड्ढा खोदकर परमात्मा की प्रतिमा गाड़ दी ।

प्रतिमा गाड़कर ज्योंही वह कुछ कदम आगे बढ़ी, दूर से उसे साध्वीजी महाराज आते हुए दिखाई दिये । उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई ।

चोरी करनेवाला हमेशा सन्देहशील होता है । उसके मन में यह तीव्र शंका रहती है-``किसी ने मुझे देख तो नहीं लिया है ?''

कनकोदरी के मन में यह शंका पैदा हो गई कि साध्वीजी म. ने मेरे दुष्कृत्य को जान लिया है, अतः वह घबरा गई । इतनी देर में साध्वीजी महाराज निकट आ गई ।

साध्वीजी महाराज ने कहा-``तूने यह क्या किया है ?''

कनकोदरी का हृदय भय के मारे काँप उठा । उसने सारी बात साध्वीजी महाराज को कह दी ।

साध्वीजी ने कहा-``इतना भयंकर कृत्य ! तूने यह कैसा दुःसाहस किया ? ईर्ष्या के वशीभूत होकर आत्महित भी भूल गई ?''

साध्वीजी के वचन सुनकर कनकोदरी को अपनी भूल समझ में आ गई ।

कचरे के ढेर में से उसने वह प्रतिमा पुनः उठाई और सुलेखा के साथ राजमहल की ओर चल पड़ी ।

कनकोदरी शीघ्र मन्दिर में गई, वहाँ प्रतिमा को पुनः स्थापित कर लक्ष्मीवती के कक्ष में जा पहुँची और लक्ष्मीवती के चरणों में गिरकर फूट-फूटकर रोने लगी ।

भूल हो जाना मानव का स्वभाव है । उस भूल को स्वीकार कर लेना-मानव से महामानव बनने का मार्ग है और भूल हो जाने के बाद उस भूल को स्वीकार नहीं करना-मानव से दानव बनने का मार्ग है । अपनी भूल को स्वीकार कर लेने से और उस भूल का पश्चाताप करने से व्यक्ति उस भूल की सजा से बच जाता है और भूल का स्वीकार व पश्चाताप न करने से उस भूल का अनुबंध पड़ जाता है, उस भूल के फल का भी गुणाकार हो जाता है ।

भूल हो जाने के बाद पश्चाताप करना-यह भूल के फल को भागाकार करने का मार्ग है और उस भूल को स्वीकार न करना, यह उस भूल के फल को गुणाकार करने का मार्ग है ।

कनकोदरी ने लक्ष्मीवती से क्षमायाचना की और दूसरे दिन साध्वीजी महाराज के पास जाकर अपनी भूल का निवेदन किया । साध्वीजी म. ने उसे जिनधर्म में दृढ़ बनने के लिए मार्गदर्शन दिया और आचार्य भगवन्त के पास प्रायश्चित्त लेने के लिए कहा ।

उसके बाद कनकोदरी धर्म में स्थिर बनी और धर्ममय जीवन बिताने लगी ।

कनकोदरी के साथ-साथ सुलेखा ने भी अपनी भूल का पश्चाताप किया ।

वे दोनों अपने शेष आयुष्य पूर्ण कर देवलोक में गईं और वहाँ से च्यवकर कनकोदरी की आत्मा अंजना बनी और सुलेखा वसन्ततिलका बनी ।

अपने पूर्वभव के चरित्र को सुनकर अंजना व वसन्ततिलका के आश्चर्य का पार न रहा ।

महामुनि ने कहा-``परमात्मा की प्रतिमा की आशातना से तुम्हारी

आत्मा ने जिस दुष्कर्म का उपार्जन किया, वह अधिकांश कर्म तो प्रायश्चित्त से नष्ट हो गया था, फिर भी जो अवशिष्ट कर्म रहा, उसके फलस्वरूप तुम्हारे जीवन में ये आपत्तियाँ आई हैं ।''

अंजना ने कहा-``भगवन् ! उस दुष्कर्म का उदय अब कब पूर्ण होगा ?''

भगवन् ने कहा-``अब अल्पकाल में ही तेरा वह दुष्कर्म नष्ट हो जाएगा ।''

वसन्ततिलका ने कहा-``अंजना के गर्भ में जीव है, उसके बारे में कुछ...।''

महामुनि ने कहा-``अंजना के गर्भ में जो जीव है, वह महान् आत्मा है-वह विशाल राज्य का स्वामी बनेगा...और अन्त में दीक्षा अंगीकार कर मुक्ति प्राप्त करेगा ।''

पुत्र की श्रेष्ठता को सुनकर अंजना के हर्ष का पार न रहा ।

कुछ ही समय बाद महामुनि वहाँ से विहार कर गये । अंजना व वसन्ततिलका निर्भय बन गईं ।

दोनों उसी गुफा में आनन्द से रहने लगीं । अंजना का गर्भकाल लगभग पूर्ण हो चुका था ।

5. पुत्र-जन्म व हनुपुर गमन

कुछ ही दिनों के बाद एक शुभ दिन अंजना ने एक रूपवान् और सुकुमार पुत्ररत्न को जन्म दिया । दासी वसन्ततिलका अंजना की परिचर्या कर रही थी ।

सुकुमार पुत्ररत्न को प्राप्त कर अंजना अपने शोक को भूल गई ।

एक दिन अंजना अपने शिशु के साथ गुफा के बाहर खेल रही थी, उस समय आकाशमार्ग से एक विमान प्रसारित हुआ । विमान में बैठे विद्याधर ने उन दोनों को देखा । उसके आश्चर्य का पार न रहा, तत्काल ही उसने अपना विमान नीचे उतारा और वह गुफा के पास आया ।

अल्प परिचय के बाद ज्योंही उसे पता चला कि यह स्त्री अन्य कोई नहीं बल्कि उसकी बहन हृदयसुन्दरी की पुत्री है, तो उसके आश्चर्य का पार न रहा । अंजना भी अपने मामा विद्याधर मानसवेग को पहिचान गई ।

मानसवेग ने पूछा-``तेरी यह दशा किसने की ?''

अंजना ने आदि से अंत तक की घटना सुना दी ।

अंजना की दु:ख-दर्द और व्यथापूर्ण जीवन-कहानी सुनकर मानसवेग का हृदय भी द्रवित हो गया । वह मन ही मन बोला-**``एक महासती पर इतनी भयंकर आपत्ति ! सच ही है कसौटी स्वर्ण की ही होती है, कथीर की नहीं ।''**

मानसेवग ने कहा-``अंजना ! तेरे दु:ख की अब सीमा आ गई है...अब तू मेरे साथ घर चल ।''

मानसवेग की बात सुनकर अंजना तैयार हो गई और अपने शिशु व वसन्ततिलका के साथ विमान में बैठ गई ।

अंजना व वसन्ततिलका के आनन्द का पार नहीं था ।

विमान तेजी से आगे बढ़ रहा था । विमान में बैठा शिशु विनोदप्रिय था । विमान की मनमोहक घुंघरियों को देखकर उन्हें पकड़ने के लिए वह उछल पड़ा और तत्क्षण वह विमान से नीचे गिर पड़ा ।

बालक के नीचे गिरने के साथ ही अंजना का कोमल हृदय काँप उठा, तत्क्षण उसने विमान रोकने के लिए आवाज लगाई । मानसवेग ने विमान रोककर उसे धरती पर उतारा । अंजना दौड़ती हुई शिशु के समीप आई, सबने एक आश्चर्य देखा कि बालक को किसी प्रकार की चोट नहीं लगी है, बल्कि उस बालक के गिरने से पत्थर की शिला टूटकर चूर-चूर हो गई है ।

अंजना ने बालक को गले लगाया । फिर सभी विमान में बैठ गये ।

विमान आगे बढ़ने लगा । विमान में बैठी अंजना दूर-सुदूर के प्राकृतिक दृश्यों को निहार रही थी ।

विमान हनुपुर पहुँच गया । स्वजन तथा प्रजाजनों ने मानसवेग राजा का स्वागत किया । महाराजा ने सभी को अंजना का परिचय दिया ।

मानसवेग ने अंजना के आवास आदि की सुन्दर व्यवस्था कर दी ।

मानसवेग ने अंजना के पुत्र का भव्य जन्म-महोत्सव किया और 12 वें दिन अपने नगर के नाम के अनुरूप ही बालक का नाम **'हनुमान'** रख दिया ।

अंजना आनन्द से दिन व्यतीत कर रही थी, फिर भी पवनंजय की याद उसे अत्यन्त सता रही थी ।

6. पवनंजय की युद्ध-यात्रा

अंजना को आश्वासन देकर पवनंजय अपने मित्र प्रहसित के साथ पुनः मानसरोवर के तट पर आ गया । प्रातः काल होते ही विमान मार्ग से वह लंका चला गया ।

वरुणपुर के राजा वरुण के साथ युद्ध करने के लिए रावण ने प्रयाण की तैयारी कर दी थी । आसपास के क्षेत्रों से अनेक राजा-महाराजा अपने-अपने सैन्य के साथ लंका आ रहे थे ।

पवनंजय ने रावण को नमस्कार किया । रावण भी पवनंजय के आगमन से प्रसन्न हो गया ।

कुछ ही दिनों में रावण ने अपने विराट् सैन्य के साथ वरुणपुर की ओर प्रयाण किया ।

रावण ने पवनंजय को अपना सेनापति बनाया ।

पवनंजय युद्धकला में निपुण था । युद्धभूमि में उसने अपने विराट् सैन्य को देखा । वह वरुण की शक्ति को अच्छी तरह से जानता था ।

पवनंजय ने सोचा-**''एक छोटे से राज्य के लिए भयंकर युद्ध खेला जाएगा, जिसमें लाखों लोग मारे जायेंगे, अतः यदि शक्य हो तो बिना युद्ध के ही समाधान करने का प्रयास करना चाहिए ।''** यह सोचकर रात्रि में ही वह आकाशमार्ग से वरुण राजा के राजमहल में जा पहुँचा ।

पवनंजय ने अत्यन्त ही युक्तिपूर्वक वरुण राजा को सन्धि के लिए समझाया । अन्त में वरुण राजा सन्धि के लिए तैयार हो गया ।

सभी इसी कल्पना में थे कि प्रातःकाल होते ही युद्ध की भेरियाँ बज उठेंगी और दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध प्रारम्भ हो जाएगा ।

परन्तु प्रातःकाल जब दोनों सेनाओं के बीच युद्धविराम के श्वेत झण्डे फहराने लगे तो दोनों सेनाओं के आश्चर्य का पार नहीं रहा ।

पवनंजय के चातुर्य के कारण भयंकर युद्ध टल गया । रावण और वरूण के बीच सन्धि हो गई । वरुण ने खर और दूषण को भी मुक्त कर दिया ।

पवनंजय रावण के विराट् सैन्य के साथ पुनः लंका आ गया । रावण ने पवनंजय को धन्यवाद दिया । वह रावण के आग्रह से कुछ दिनों तक लंका में रहा । रावण के आग्रह से पवनंजय लंका में रहा तो सही, किन्तु उसका मन

अंजना-मिलन के लिए उत्कण्ठित बना हुआ था, अतः किसी भी प्रकार से वह अपने नगर पहुँचना चाहता था ।

एक शुभ दिन लंका से विदाई लेकर पवनंजय ने अपने नगर की ओर प्रयाण किया । महाराजा प्रह्लाद और केतुमती को अपने पुत्र के आगमन का पता चला तो उन दोनों के हर्ष का पार नहीं रहा । राजा ने नगर में पवनंजय के आगमन की घोषणा करा दी ।

सभी प्रजाजन पवनंजय के स्वागत के लिए इकट्ठे हो गए ।

पवनंजय विमान से नीचे उतरा । अपने उपकारी माता-पिता को उसने प्रणाम किया । नागरिकों ने पवनंजय का जय-जयकर किया । उसकी स्वागत-यात्रा राजमहल की ओर आगे बढ़ने लगी । अन्त में स्वागत-यात्रा राजसभा में बदल गई । पवनंजय ने अपने अनुभव प्रजा को सुनाये । पवनंजय के बुद्धि-कौशल को जानकर प्रजा गद्‌गद हो गई ।

राजसभा के विसर्जन के बाद पवनंजय अंजना के महल की ओर आगे बढ़ा । महल के द्वार पर द्वारपाल पहरा दे रहा था । पवनंजय ने महल में प्रवेश किया...किन्तु महल तो श्मशान की भाँति सूना था । वहाँ न अंजना थी और न ही उसकी प्रिय सखी वसन्ततिलका ।

यह देखकर पवनंजय चौंक उठा । उसके मन में अनेक प्रकार की आशंकाएँ पैदा हो गईं ।

पवनंजय ने द्वारपाल से पूछा-``अंजना कहाँ है ? महल सूना क्यों है ?''

पवनंजय के पूछने पर द्वारपाल बोला-``युवराज ! महारानी ने युवराज्ञी का बहिष्कार कर दिया है ।''

``क्या कह रहे हो ? अंजना...का बहिष्कार...ओहो, यह तो घोर अन्याय हो गया है ?''

``अरे द्वारपाल ! बता तो सही, महारानी ने अंजना का बहिष्कार क्यों किया ?''

द्वारपाल ने कहा-``युवराज्ञी को गर्भवती जानकर महारानीजी के मन में, उनके शील के प्रति सन्देह पैदा हो गया और उन्होंने एक दिन उनको उनके पिता के घर भेज दिया ।''

द्वारपाल की बात सुनते ही पवनंजय का हृदय काँप उठा । ``ओहो ! निर्दोष अंजना के साथ घोर अन्याय हो गया ।''

पवनंजय सीधा महारानी केतुमती के खंड में जा पहुँचा और अत्यन्त कर्कश ध्वनि में बोला-``माँ ! माँ ! अंजना कहाँ है ? उस सती के साथ इतना भयंकर अन्याय ?''

माँ ने कहा-``बेटा ! धैर्य रख ! उस कुलटा का तू नाम क्यों लेता है ? उसने तो अपने कुल को कलंकित कर दिया है ।''

``माँ ! माँ ! आपकी यह बात बिल्कुल झूठ है । अंजना तो एक महासती है । युद्ध में जाने के पूर्व मैं पुनः लौट आया था, क्या उसने मेरी अंगूठी नहीं बताई ?''

``बताई तो थी, किन्तु मैंने उस पर विश्वास नहीं किया ।''

``तो अब वह कहाँ होगी ?''

माँ ने कहा-``उसे यहाँ से उसके पिता के घर भिजवाया था ।''

पवनंजय ने कहा-``मैं तत्काल उसकी खोज के लिए जाता हूँ ।''

जब पिता प्रह्लाद को इस बात का पता चला तो वे भी दुःखी हुए ।

पिता की आज्ञा लेकर पवनंजय अपने मित्र प्रहसित के साथ महेन्द्रपुर आया ।

परन्तु अफसोस ! वहाँ पर भी उसे अंजना नहीं मिली । मिले भी कैसे ? महेन्द्र राजा ने उसका बहिष्कार करा दिया था ।

पवनंजय को यह जानकर अत्यन्त आघात लगा कि उसके माता-पिता ने भी उसका त्याग कर दिया है ।

आखिर पवनंजय मित्र प्रहसित के साथ वन की ओर चल पड़ा ।

वन की गुफाओं में वह अंजना की शोध करने लगा, किन्तु कहीं भी उसे अंजना के पद-चिह्न दिखाई नहीं दिये ।

7. अग्नि-प्रवेश का निर्णय

खूब छानबीन के बाद भी जब अंजना का पता नहीं चला, तो पवनंजय ने मित्र प्रहसित से कहा-``तुम आदित्यपुर जाओ और मेरे माता-पिता से कहो कि चारों ओर अंजना की खोज प्रारम्भ की जाय । इसके बाद भी अंजना नहीं मिलेगी तो पवनंजय अग्नि-प्रवेश कर आत्मविलोपन कर लेगा ।''

मित्र प्रहसित ने पवनंजय को बहुत समझाया, किन्तु वह पवनंजय के संकल्प को नहीं तोड़ सका ।

प्रहसित ने आकर प्रह्लाद व केतुमती को पवनंजय का सन्देश सुना दिया ।

महाराजा प्रह्लाद अत्यन्त विह्वल हो गए । चारों ओर सैनिकों व सामन्तों को भेजकर अंजना की खोज की जाने लगी ।

पवनंजय वन के प्रत्येक खंड में अंजना की खोज कर रहा था, किन्तु कहीं भी उसे अंजना नहीं मिली । वह भूख और प्यास को भूल गया था ।

पवनंजय अत्यन्त अधीर हो गया । अन्त में, उसने एक चिता तैयार की और उसमें कूदने की तैयारी करने लगा ।

पवनंजय कूदने की तैयारी कर ही रहा था कि तभी उसे प्रहसित की आवाज सुनाई दी-``रुको ! रुको पवनंजय ! जल्दबाजी मत करो ! अंजना मिल गई है ।'' अंजना के नामश्रवण के साथ ही पवनंजय चौंक उठा । वह क्षण भर के लिए रुक गया ।

इसी बीच प्रहसित निकट आ चुका था । उसने बताया-

``अंजना मिल गई है ।'' तत्क्षण अंजना विमान से बाहर आई और पतिदेव के चरणों में गिर पड़ी । मानसवेग भी साथ में था ।

पवनंजय ने पूछा-``मित्र प्रहसित ! अंजना कहाँ मिली ?''

प्रहसित ने कहा-``तुम्हारे पिता ने अंजना की खोज के लिए चारों ओर सैनिक भेजे थे, मैंने सबको सूचना दी थी कि अंजना मिल जाय तो उसे लेकर वन में आ जाना ।''

मैं भी चारों ओर अंजना की खोज कर रहा था, अन्त में मैं हनुपुर भी पहुँचा । अंजना का नाम वहाँ लोकजिह्वा पर चढ़ा हआ था । मैंने मन ही मन सोचा-``अंजना यहाँ अवश्य मिल जाएगी ।''

``मैं राजमहल में गया, मैंने दूर से ही अंजना को एक बालक के साथ क्रीड़ा करते हुए देखा । मेरे आनन्द का पार न रहा । मैं जाकर उससे मिला और तेरे सम्बन्ध में सब कुछ बताया ।''

तत्क्षण मानसवेग ने दो विमान तैयार किये और सपरिवार बैठकर शीघ्रतापूर्वक यहाँ आए । अंजना के मिलने के समाचार पवनंजय और अंजना के माता-पिता को भी पहुँचा दिये गये ।

महेन्द्रराजा, हृदयसुन्दरी, महाराजा प्रह्लाद व केतुमती आदि सभी वहाँ आ गए। केतुमती ने अंजना को कहा-``तेरे दुःख का कारण मैं ही हूँ...मैं पापिनी हूँ।''

अंजना ने कहा-``नहीं माताजी ! आप ऐसा न कहो। आप तो पूर्णतया निर्दोष हो। मेरे दुःख में आपका कोई दोष नहीं है। दोष मेरे ही दुष्कर्मों का है।''

अंजना ने सबको गुरुदेव की अमृतवाणी सुनाई...अंजना के महान् सतीत्व को सभी ने भाव से नमस्कार किया। सभी के चेहरों पर प्रसन्नता छा गई।

बालक हनुमान को पाकर सभी का आनन्द बढ़ गया।

इस प्रकार महासती अंजना के जीवन की आपत्ति दूर हो गई।

अंजना अपने पति के साथ आदित्यपुर आ गई और सुखपूर्वक काल प्रसार करने लगी।

एक शुभ दिन सद्गुरू के समागम को प्राप्तकर अपने पुत्र हनुमान को राजगद्दी सौंपकर पवनंजय और अंजना ने भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली।

निर्मल चारित्रधर्म की आराधना-साधना के प्रभाव से घाती कर्मों का क्षयकर पवनंजय मुनि और अंजना साध्वी ने केवलज्ञान प्राप्त किया। केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध कर दोनों ने शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त किया।

16. महासती श्रीदेवी

श्रीपुरनगर में श्रीधर नाम का राजा राज्य करता था। श्रीधर के श्रीदेवी नाम की महारानी थी। एक बार वह राजा उद्यान में क्रीड़ा करने के लिए गया। उस समय कमलकेतु नाम के विद्याधर ने श्रीदेवी का अपहरण कर लिया। वह विद्याधर श्रीदेवी को अपने स्थान पर ले गया और भोग के लिए प्रार्थना करने लगा।

उसी समय श्रीदेवी ने अपने दोनों कान बंद कर लिये और बोली- ***''परस्त्रीगमन तो नरक का मार्ग है, अतः यह मार्ग तुम्हारे लिए उचित नहीं है।''***

''जिसने परस्त्री की ओर बुरी नजर की, उसने अपनी आत्मा को मलिन ही किया है, उसने अपनी इज्जत मिट्टी में मिला दी है।''

''शीलधर्म का पालन मोक्ष का मार्ग है। शीलधर्म का पालन करनेवाला परलोक में भी सद्गति प्राप्त करता है।'' इस प्रकार की वाणी सुनने से कमलकेतु विद्याधर की कामवासना शांत हो गई। अपने परलोक को नहीं बिगाड़ने की भावना से उसने श्रीदेवी को पुनः श्रीपुरनगर में लाकर छोड़ दिया।

एक बार कोई देव उसके सामने उपस्थित होकर बोला, ''मैं तुम्हें दिल से चाहता हूँ, तू मेरे साथ चल।''

श्रीदेवी ने कहा, ''तुम देव हो, मैं मानवी हूँ। अपना संबंध कैसे हो सकता है। मुझे प्राणों से अधिक प्रिय मेरा शील है। प्राण चले जायें तो मुझे परवाह नहीं है, परंतु मैं अपने पति को छोड़ अन्य की इच्छा नहीं करती हूँ।''

श्रीदेवी की इस दृढ़ता को देख वह देव खुश हो गया।

उसने कहा, ''तू महासती है।''

शीलधर्म के प्रभाव से श्रीदेवी मरकर पाँचवें देवलोक में देव के रूप में पैदा हुई। वह देव वहाँ से च्यवकर वीरपुरनगर में वीरभद्र श्रेष्ठी के मदन नाम के पुत्र के रूप में पैदा हुआ। सद्गुरु के पास धर्म का श्रवण कर भागवती-दीक्षा अंगीकार कर समस्त कर्मों का क्षय कर मोक्ष गया।

17. महासती ज्येष्ठा

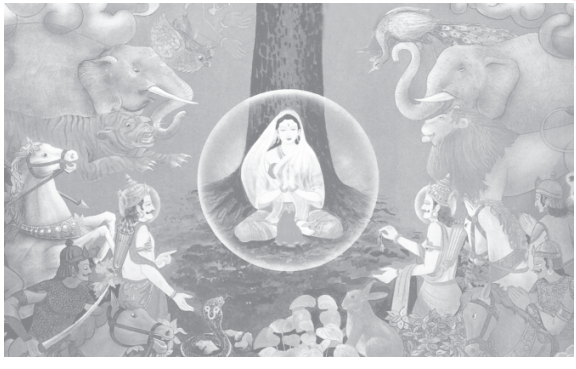

मन, वचन और काया से जो शीलधर्म का पालन करता है, वह प्राणी शीघ्र ही ज्येष्ठा महासती की तरह मोक्षसुख प्राप्त करता है ।

यद्यपि काया से शील का पालन करना भी कठिन कार्य है, फिर भी काया से शील पालन करनेवाली तो बहुत मिल जाएंगी परंतु जो मन से भी शील का भंग नहीं करती हैं, ऐसी महासतियाँ तो विरल ही देखने को मिलती हैं ।

क्षत्रियकुंडनगर में सिद्धार्थ महाराजा का शासन चल रहा था । उनकी महारानी का नाम त्रिशला देवी था, एक शुभ दिन त्रिशला महारानी ने शुभ स्वप्न से सूचित एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम नंदिवर्धन रखा गया ।

धीरे-धीरे नंदिवर्धन बड़ा होने लगा । वह पुरुषों की 72 कलाओं में निपुण हुआ ।

एक शुभ दिन चेटक महाराजा की पुत्री ज्येष्ठा के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ ।

एक बार महावीर प्रभु पृथ्वीतल को पावन करते हुए क्षत्रियकुंडनगर के बाहर पधारे । देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की । नंदिवर्धन की पत्नी ज्येष्ठा ने भी एकाग्र चित्त हो महावीर प्रभु की धर्मदेशना का श्रवण किया ।

प्रभु की देशना सुनकर उसने भी श्रावकजीवन के अलंकार-स्वरूप बारह व्रत स्वीकार किये । वह उन व्रतों का दृढ़तापूर्वक पालन करने लगी ।

एक बार इन्द्र महाराजा ने अपनी इंद्रसभा में ज्येष्ठा के शीलधर्म की प्रशंसा करते हुए कहा- ``जंबुद्वीप भरतक्षेत्र में क्षत्रियकुंडनगर में रहनेवाली नंदिवर्धन महाराजा की धर्मपत्नी ज्येष्ठा महासती है, जो मन से भी पर-पुरुष की इच्छा नहीं करती है, मनुष्य तो क्या कोई देव भी उसे शील से विचलित नहीं कर सकता है ।''

इंद्र महाराजा के मुख से ज्येष्ठा के शीलधर्म की महिमा को सुनकर एक मिथ्यादृष्टि देव को ज्येष्ठा की परीक्षा करने का मन हो गया ।

उस देव ने राजमहल में रही ज्येष्ठा का अपहरण कर लिया और उसे एक भयंकर जंगल में छोड़ दिया ।

उस देव ने ज्येष्ठा को विचलित करने के लिए भरसक प्रयत्न किये । चतुरंगिनी सेना की रचना के साथ एक राजा का रूप कर वह देव ज्येष्ठा के सामने उपस्थित हुआ और बोला, ``इस जंगल में तू अकेली कैसे ? तू भयभीत मत बन ! तेरे रूप-लावण्य को देख मेरा मन तुझ पर मोहित हुआ है । मैं तुझे अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ । यदि तू मेरी बात स्वीकार करेगी तो मेरी यह सारी संपत्ति तुझे प्राप्त होगी ।''

राजा के रूप में रहे उस देव की इन बातों को सुनकर भी ज्येष्ठा का मन लेश भी विचलित नहीं हुआ । वह अपने दोनों कानों में अंगुली डालकर बोली, **``परस्त्री की इच्छा करनेवाले तुम्हें मैं मन से भी नहीं चाहती हूँ ।''**

उस राजा ने पुनः कहा, **``इस जंगल में तू अकेली है । यहाँ तुझे पहिचानने वाला कोई नहीं है । तेरे संग से मुझे भी आनंद आएगा । तू मेरी बात स्वीकार कर ले । यदि तू मेरी बात नहीं मानेगी तो भी तू मेरे जाल में से अब छूटनेवाली नहीं है तो क्यों नहीं प्रेम से ही मुझे स्वीकार कर ले, इसी में तेरा हित है ।''**

राजा की इन बातों को सुनकर ज्येष्ठा महासती ने कहा, ``यदि तुम मुझ पर बलात्कार करने की कोशिश करोगे तो आत्महत्या कर अपने जीवन का अंत ला दूंगी, परंतु जब तक इस शरीर में श्वास है, तब तक मैं तुम्हें अपने शरीर का स्पर्श भी नहीं करने दूंगी ।

प्राणों से भी मुझे मेरा शील अधिक प्रिय है ।

इस प्रकार अनेक-अनेक युक्तियों के द्वारा समझाने पर भी जब ज्येष्ठा लेश भी विचलित नहीं हुई तो उस देव ने अपना मूल स्वरूप प्रगट कर दिया और वह ज्येष्ठा के चरणों में गिरकर बोला, ``तू धन्य है, कृतपुण्य है, महासती है ।''

इतना कहकर उस देव ने ज्येष्ठा को दो कीमती कुंडल भेंट स्वरूप दिये और ज्येष्ठा को पुनः राजमहल में ले जाकर छोड़ दिया ।

आगे चलकर उस ज्येष्ठा महासती ने वीर प्रभु के पास भागवती-दीक्षा अंगीकार की । निर्मल संयमधर्म का पालनकर, निरतिचार चारित्र के फलस्वरूप समस्त घाति-अघाति कर्मों का क्षयकर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त किया ।

18. महासती सुज्येष्ठा

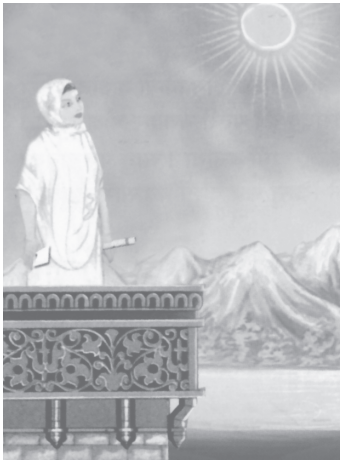

विशालानगर में चेटक राजा राज्य करता था । उसकी दो पुत्रियाँ सुज्येष्ठा और चेलना दोनों परस्पर खूब प्रीतिवाली थीं । कपट द्वारा श्रेणिक ने चेलना के साथ विवाह किया ।

चेलना के विरह में सुज्येष्ठा को संसार के प्रति वैराग्य भाव पैदा हो गया और उसने चंदनबाला के पास जाकर भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

अपने कर्मों को खपाने के लिए सुज्येष्ठा कठोर तप करने लगी ।

इधर पेढ़ाल नाम का एक विद्याधर जिसने बहुतसी विद्याएँ सिद्ध की थीं वह अपनी विद्याएँ किसी योग्य व्यक्ति को देना चाहता था ।

जो वासनामुक्त स्त्री का पुत्र होगा, वो ही इन विद्याओं के लिए उत्तम पात्र होगा ।

इस प्रकार निर्णयकर वह निष्काम पवित्र महासती स्त्री की शोध करने लगा ।

विमान में आरूढ़ होकर जाते समय उसने कठोर तप करती हुई

पवित्र साध्वी सुज्येष्ठा को देखा । वह उस पर मोहित हो गया । उस विद्याधर ने भ्रमर का रूप करके आतापना लेती हुई सुज्येष्ठा साध्वी की योनि में अपना वीर्य डाल दिया । क्रमशः सुज्येष्ठा गर्भवती बनी ।

सुज्येष्ठा को गर्भवती देख अन्य साध्वियों ने उसका तिरस्कार करते हुए कहा, ``अरे पापिनी ! तूने यह क्या किया ? अपने शील को खंडित करते हुए तुझे शर्म नहीं आई ?''

सुज्येष्ठा ने कहा, ``काया से तो दूर रहो, मैंने मन से भी अपने शील का भंग नहीं किया है ।''

उन साध्वियों ने किसी विशिष्ट ज्ञानी को पूछा, ``प्रभो ! यह सुज्येष्ठा साध्वी सती है या असती है ?''

ज्ञानी ने कहा, ``यह तो सभी सतियों में महासती है । किसी विद्याधर ने माया-कपट करके उसकी योनि में वीर्य डाला है, इस कारण वह गर्भवती बनी है ।''

गर्भवती काल व्यतीत होने पर सुज्येष्ठा ने पुत्र को जन्म दिया । किसी श्रद्धासंपन्न श्रावक के घर वह बालक धीरे-धीरे बड़ा होने लगा । उसका नाम सत्यकी रखा गया ।

एक बार साध्वियों के साथ वह सत्यकी भी प्रभु को वंदन करने के लिए गया । उसने भी महावीर प्रभु को नमस्कार किया ।

उसी समय कालसंदीप नाम का विद्याधर वहाँ आया, उसने पूछा, ``मेरी मृत्यु किससे होगी ?'' प्रभु ने कहा, ``इस सत्यकी से तुम्हारी मृत्यु होगी ।''

कालसंदीप ने मन में सोचा, ``क्या यह बालक मेरा हत्यारा बनेगा ?''

साध्वीजी के उपाश्रय में आकर श्राविकाएँ उस बाल सत्यकी का पालन-पोषण करने लगीं । उस समय पालने में झूलते-झूलते साध्वीजी म. के मुख से सुनते-सुनते ही वह सत्यकी ग्यारह अंगों का ज्ञाता बन गया ।

पूर्वजन्म के तीव्र संस्कारों के कारण उस बालक ने अनेक विद्याओं को याद किया । उन विद्याओं को याद करते ही उनकी अधिष्ठायिका देवियाँ आकर बोलीं, ``हम तो तुम पर प्रसन्न ही हैं, तुम केवल रोहिणी विद्या को साध लो । रोहिणी विद्या के सिद्ध होने पर हम तो सिद्ध ही हैं । उस रोहिणी विद्या को

साधते हुए यह तुम्हारा सातवाँ भव है । तुम पापी हो-``यह मानकर उस विद्या ने तुझे पाँच भवों में मारा है । छठे भव में, मात्र छह मास का आयुष्य बाकी था, तब वह रोहिणी विद्या तुम पर प्रसन्न हुई थी, तब तुमने ``अब मात्र छह मास का ही अल्प आयुष्य बाकी है'' ऐसा मानकर उस विद्या को स्वीकार नहीं किया था । अतः इस भव में तुम उस विद्या को साधो, वह तुम पर अवश्य प्रसन्न होगी ।''

देवियों की बात सुनकर ऊर्ध्वमुख करके वह सत्यकी कठोर तप करने लगा ।

रोहिणी विद्या को सिद्ध करने के लिए उसने चिता की रचना की । उस जलती चिता में प्रवेश कर मंत्रों का जाप करने लगा । उसी समय वह काल संदीप विद्याधर वहाँ आ गया । सत्यकी को आग में भस्मसात् करने के लिए वह उस आग में ईंधन डालने लगा । इस प्रकार सात दिन तक साधना करते हुए सातवें दिन वह देवी प्रत्यक्ष हुई । उस देवी ने विघ्नकारक कालसंदीप को रोका । रोहिणी देवी ने कहा–``तुम मुझे एक प्रतीक दो, जिससे मैं तुम्हारे शरीर में प्रवेश करूँ !'' उसके बाद उस सत्यकी ने अपना भाल दिया । रोहिणी विद्या ने उस भाल द्वारा सत्यकी के देह में प्रवेश किया । इस प्रकार उसका तीसरा नेत्र हो गया । वह सत्यकी लोक में त्रिनेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

``इस पेढ़ाल विद्याधर ने ब्रह्मचारी ऐसी मेरी माता को चरित्रभ्रष्ट कर कलंकित किया है'' ऐसा जानकर उस सत्यकी ने उस पेढ़ाल को मार डाला ।

विद्या से बलवान बना सत्यकी कालसंदीप को मारने के लिए घूमने लगा ।

भय के मारे कालसंदीप अपने किले को मजबूत कर उसके भीतर रहा । सत्यकी ने उस किले को भी भस्मसात् कर दिया ।

भागते हुए कालसंदीप ने मौत से बचने के लिए समुद्र में प्रवेश किया, परंतु सत्यकी ने उसे मार डाला, वह मरकर नरक में गया ।

विद्या के बल से बलवान बना सत्यकी अनेक तपस्वी स्त्रियों के साथ काम भोग कर उनका शीलभंग करने लगा । यदि कोई उसका विरोध करता तो वह उसे भस्मसात् कर देता था ।

स्त्रीलंपट बना सत्यकी जिस-जिस सुंदर स्त्री को देखता, उसके साथ संबंध कर लेता ।

एक भिक्षु का वेष धारण कर वह चारों ओर घूमने लगा ।

अपनी विद्या के बल से उसने पुष्पकेतन विमान की रचना की और आकाश में उड़ने लगा । इस बीच नंदी और नंदीकेश नाम के उसके दो मित्र हो गए ।

उस सत्यकी ने उज्जयिनी के अधिपति चंडप्रद्योत राजा की शिवा-देवी को छोड़ अन्य सभी रानियों के शील का भंग किया । इस बात को जानने पर चंडप्रद्योत राजा आग बबूला हो उठा । वह राजा किसी उपाय से सत्यकी का वध करना चाहता था । उसने अनेक को सत्यकी के वध का उपाय पूछा ।

आखिर उमा नाम की एक वेश्या ने यह बीड़ा उठाया ।

वह उमा एक दिन महल के गवाक्ष में बैठकर नगर का दृश्य निहार रही थी । अचानक सत्यकी की नजर उस पर पड़ी । उसके अद्‌भुत रूप और लावण्य को देख वह उसके प्रति मोहित हो गया । सत्यकी ने उमा वेश्या उठा ली और वह उसके साथ भोग करने लगा ।

एक बार विश्वस्त बनी उस वेश्या ने सत्यकी को पूछा, ``आपके द्वारा सिद्ध की गई विद्याएँ आपके पास सदैव रहती हैं या कभी कभी ?'' उसने कहा, ``काम-क्रीड़ा के सिवाय वे विद्याएँ हमेशा मेरे साथ रहती हैं ।''

वह उमा वेश्या चंडप्रद्योत राजा के पास आई और बोली, ``यह सत्यकी जब मेरे साथ संबंध करता है, तब अपनी विद्या तलवार में छोड़ देता है, उस समय आकर कोई उसकी हत्या करे तो उसकी मृत्यु हो सकती है, अन्य किसी उपाय से उसे मारना संभव नहीं है ।

राजा ने अपने विश्वासु होशियार नौकर को इसके लिए तैयार किया और कहा, ``तू सत्यकी को मारना, उमा की हत्या न हो जाय, उसका पूरा ख्याल रखना ।''

नौकर ने कहा, ``मैं वैसा ही करूंगा, जिससे सत्यकी की ही मौत होगी ।''

ये सब बातें बताकर वह उमा वापिस सत्यकी के पास आ गई ।

मैथुन-सेवन के पूर्व उस सत्यकी ने अपनी रोहिणी विद्या खड्‌ग में

छोड़ दी ! उसी समय उस राजसेवक ने तलवार के प्रहार से प्रिया सहित सत्यकी को मार दिया ।

अपने स्वामी की मृत्यु को जानकर संपूर्ण नगर पर शिला कर नंदीश ने कहा, ``मेरे स्वामी को तूने मारा है, अतः मैं नगर सहित तुझे मार दूंगा ।''

उस समय चंडप्रद्योत ने कहा, ``तुम जैसा कहोगे, वैसा मैं करने के लिए तैयार हूँ, तुम इस शिला को वापस ले लो ।''

नंदीश ने कहा, ``मेरे स्वामी को जिस अवस्था में मारा है, उसी अवस्था में मंदिर में उसकी पूजा करोगे तो मैं तुझे छोडूंगा ।'' राजा ने अपनी स्वीकृति दी ।

उसके बाद नंदीश ने गाँव-गाँव में उस रूप में पूजा कराई ।

सुज्येष्ठा महासती महावीर प्रभु के उपदेश से विविध तप करके समस्त कर्मों का क्षयकर मोक्ष गई ।

19. महासती मृगावती

साकेतपुर नगर में सुरप्रिय नाम के यक्ष का मंदिर था । प्रतिवर्ष उस यक्ष की प्रतिमा को कोई चित्रकार चित्रित करता था, परंतु चित्रकर्म के बाद वह यक्ष उस चित्रकार को खत्म कर देता था । यदि किसी वर्ष उस यक्ष की प्रतिमा को चित्रित नहीं किया जाता तो वह यक्ष प्रतिदिन गाँव के निवासियों को मारने लगता ।

प्रजाजन की अकालमृत्यु के भय से भयभीत बने राजा ने सभी चित्रकारों को अपने पास बुलाया और कहा, ``तुम सभी के नाम एक घड़े में डाले जाएंगे, प्रतिवर्ष जिसका नाम निकलेगा, उसे यात्रा के दिन यक्ष का चित्र बनाना होगा । चित्र बनाने के बाद यक्ष उस चित्रकार को मार देगा, इस प्रकार करने से एक चित्रकार की मृत्यु होगी, परंतु अन्य प्रजाजनों का तो रक्षण हो सकेगा ।''

सभी चित्रकारों ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य की । अब प्रतिवर्ष यक्ष की यात्रा के दिन उस घड़े में से एक नाम निकाला जाता, जिसके नाम की चिट्ठी निकलती, वह यक्ष का चित्र बनाता, उसके बाद यक्ष उसे खत्म कर देता ।

एक बार कौशांबी से चित्रकला सीखने के लिए एक युवक साकेतपुर में आया और वह किसी बुढ़िया माजी को माँ मानकर उसके घर पर रहा । वहाँ रहकर वह चित्रकला सीखने लगा । धीरे-धीरे वह चित्रकला में निपुण हो गया ।

एक बार यक्षयात्रा के दिन उसी बुढ़िया माजी के इकलौते बेटे के नाम की चिट्ठी निकली । वह बुढ़िया माजी अपने पुत्र के मरण को जानकर कल्पांत रुदन करने लगी ।

बुढ़िया माजी के कल्पांत रुदन को देख कोशांबी से आए उस चित्र-कार ने कहा, ``माजी ! आप रुदन न करें । आप चिंता छोड़ दें । आपके बेटे के बदले मैं स्वयं यक्ष का चित्र बना दूंगा । आपका बेटा सुरक्षित रहेगा, आप निश्चिंत हो जाएँ ।''

उस चित्रकार की इस उदार भावना को देख उस बुढ़िया माजी को खूब आश्चर्य हुआ ।

''अहो ! आज भी इस धरती पर ऐसे पुरुष हैं, जो अपने सुख को गौण करके भी दूसरों को सुखी करते हैं ।''

परोपकार उत्तम पुरुषों का लक्षण है । वे उत्तम पुरुष ही इस धरती के अलंकार हैं ।

धीरे-धीरे यक्ष-यात्रा का दिन नजदीक आया । उस चित्रकार ने यात्रा के दिन छठ का तप किया । उसके बाद विधिपूर्वक स्नान कर नवीन वस्त्र धारण कर, अपने मुख को आठ पट से बाँधकर कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों से नवीन कूँची से अत्यंत भक्तिपूर्वक उसने यक्ष का चित्र बनाया ।

मन, वचन और काया की एकाग्रतापूर्वक अत्यंत भक्तिपूर्वक यक्ष का चित्र बनाकर अंत में क्षमायाचना करते हुए बोला, ``आपका चित्र बनाते समय मेरी कहीं भूल हो गई हो तो आप मुझे कृपा करके क्षमा करें ।''

आप तो तीन जगत् के प्राणियों के हितैषी हो, आप सभी पर वात्सल्य भाव रखनेवाले हो ! आप खुश हो जायें तो प्राणी को क्या-क्या नहीं मिलता है ?''

उस चित्रकार के भक्तिभाव और चित्रकला से वह यक्ष प्रसन्न हो गया और बोला, ``मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ ! तुझे जो चाहिए वह वरदान माँग ले ।''

चित्रकार ने कहा, ``यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो तो आज से ही नरक प्रदान करनेवाली इस हिंसा का त्याग कर दो ।''

कहा भी है-

''जो जीवों की हिंसा करता है, उसे नरक गति की प्राप्ति होती है और जो जीवों को अभयदान देता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।''

चित्रकार की इन बातों को सुनकर वह यक्ष प्रसन्न हो गया । उसने कहा, ``मैं आज से इस हिंसा का त्याग करता हूँ ।''

``यह वरदान तो तूने मेरे हित के लिए और परोपकार के लिए माँगा है । तुम अपने लिए भी कुछ माँगो ।''

यक्ष के आग्रह करने पर उस चित्रकार ने कहा, ``मैं किसी व्यक्ति के शरीर के एक अंग को देखकर उसका पूरा चित्र बना दूँ, ऐसा वरदान दो ।''

यक्ष ने कहा, ``तथाऽस्तु ।''

यक्ष को नमस्कार कर वह चित्रकार नगर में गया और उसने नगर-जनों के समक्ष यक्ष के वरदान की बात कही ।

चित्रकार की यह बात सुनकर सभी खुश हो गए । राजा तक समाचार पहुँचाए गए । राजा भी खुश हो गया । राजा ने नगर में भी महोत्सव कराया ।

एक दिन वह चित्रकार कौशांबी नगरी में आया । वहाँ के शतानीक राजा से मिला । उसने राजा से बातचीत की । राजा ने अपनी चित्रशाला बनाने के लिए आदेश दिया । यक्ष के वरदान के फलस्वरूप उसने बहुत ही सुंदर चित्रशाला बनाई । उसमें उसने अनेक प्राणियों के बहुत ही सुंदर चित्र बनाए ।

एक बार उसने राजा के महल के गवाक्ष में बैठी हुई महारानी के पाँव के अँगूठे को देख लिया । बस, यक्ष के उस वरदान के फलस्वरूप उसने चेटक महाराजा की पुत्री और शतानीक महाराजा की महारानी मृगावती देवी का बहुत ही सुंदर चित्र बना दिया ।

मृगावती की जंघा के ऊपर मसे का चिह्न था, अतः मृगावती के चित्र में जंघा के ऊपर काली स्याही का बिंदु गिर गया ।

चित्रकार ने मृगावती के चित्र पर से उस काले बिंदु को हटाने की कोशिश की परंतु उसके साफ करने पर भी वापस वह स्याही का बिंदु वहाँ गिर पड़ा ।

महारानी की जंघा पर पुनःपुनः काली स्याही को गिरते देख चित्रकार ने सोचा, ``महारानी की जंघा पर अवश्य ही कोई चिह्न होना चाहिए ।''

चित्र में महारानी के अद्‌भुत रूप और लावण्य को देखकर राजा बहुत खुश हो गया, परंतु राजा ने ज्योंही महारानी की जंघा पर रहे उस चिह्न को चित्र में देखा, राजा के गुस्से का पार न रहा ।

राजा ने सोचा, ``लगता है इस चित्रकार ने इस रानी का शीलभंग किया है, अन्यथा जंघा पर रहे चिह्न का उसे कैसे पता चलता ?''

राजा ने उस चित्रकार को मार डालने का आदेश दिया, परंतु दूसरे चित्रकारों ने राजा से विनती करते हुए कहा, ``राजन् ! इसे तो यक्षराज का वरदान प्राप्त है, अतः इसका कोई अपराध नहीं है । आप इसे माफ कर दें यह तो निर्दोष है ।''

राजा ने चित्रकार की परीक्षा करने के लिए उसे एक कुबड़ी दासी का मुख बताया । उस चित्रकार ने उसी समय उस कुबड़ी दासी का चित्र बना दिया । राजा को विश्वास आ गया, फिर भी कुपित हुए राजा ने चित्रकार की एक अँगुली कटवा दी ।

अपनी अँगुली कटने से उस चित्रकार को भी राजा के ऊपर गुस्सा आ गया । किसी भी उपाय से उसने राजा को हैरान करने का निश्चय किया ।

उसने सोचा, `राजा को इस रानी के प्रति खूब प्रेम है, अतः क्यों न इन दोनों का परस्पर वियोग हो, ऐसा कुछ करूँ !' इस प्रकार विचार कर उसने एक पट्ट पर मृगावती महारानी का चित्र बनाया । उस चित्रपट को लेकर वह उज्जयिनी नगरी के राजा चंडप्रद्योत के पास पहुँच गया ।

चंडप्रद्योत राजा अत्यंत ही कामी था, सुंदर स्त्री के रूप को देखकर वह मोहित हो जाता था । उसने चित्रकार से पूछा, ``यह किसका रूप है ?''

उसने कहा, ``यह कौशांबी के राजा शतानीक की पत्नी मृगावती है ।''

चित्रपट में रहे मृगावती के अद्‌भुत रूप को देख-देखकर चंडप्रद्योत कामविह्वल हो गया ! किसी भी उपाय से मृगावती को पाने के लिए वह लालायित हो उठा । अपना बल बताकर भी मृगावती को मुझे प्राप्त करना होगा ।'' इस प्रकार विचार कर चंडप्रद्योत राजा ने अपना वज्रजंघ नाम का दूत शतानीक के पास भेजा !

दूत ने जाकर शतानीक राजा को कहा, **``ताँबे के आभूषण में मणि शोभा नहीं देता है, इसी प्रकार मृगावती तुझे शोभा नहीं देती है, अतः वह मृगावती मुझे सौंप दो । मुकुट मस्तक को ही शोभा देता है, पाँवों को नहीं, उसी प्रकार यह मृगावती भी मेरे लिए योग्य है ।''**

``उस मृगावती को मुझे सौंपने में ही तुम्हारे जीवन और राज्य का रक्षण है ! बुद्धिशाली वो ही कहलाता है जो थोड़ा नुकसान सहन करके भी सर्वनाश को रोक लेता है ।''

दूत की इन बातों को सुनकर शतानीक राजा को गुस्सा आ गया । राजा ने तिरस्कार करके उस दूत को रवाना कर दिया ।

दूत ने जाकर चंडप्रद्योत राजा को सारी बात कह दी । दूत के अपमान की बात सुनकर चंडप्रद्योत राजा के क्रोध का पार न रहा । उसने दृढ़ संकल्प किया कि वह किसी भी उपाय से मृगावती को प्राप्त करेगा ही ।

शतानीक राजा पर आक्रमण करने के लिए एक दिन अन्य चौदह राजाओं के साथ चंडप्रद्योत राजा ने विशाल सैन्य के साथ कौशांबी नगरी की ओर प्रयाण किया ।

चंडप्रद्योत को आए हुए देखकर शतानीक राजा भी युद्ध के लिए तैयार हो गया...परंतु चंडप्रद्योत राजा की विशाल सेना को देख शतानीक एकदम घबरा गया और उसी आघात में उसकी मृत्यु भी हो गई ।

अपने पति शतानीक राजा की अकालमृत्यु को देख महासती मृगावती ने सोचा, **``अब मेरे शील पर संकट है, किसी भी उपाय से मुझे मेरे शील का रक्षण करना होगा । मेरा पुत्र तो अभी छोटा है, अतः माया-कपट करके भी मुझे अपना शील बचाना होगा ।''**

अपने पति की उत्तरक्रिया करके उसने एक दूत को तैयार कर चंडप्रद्योत के पास भेजा । दूत ने जाकर महारानी का संदेश सुनाते हुए कहा, ``मृगावती महारानीजी ने कहलाया है कि अभी मेरे पति की मृत्यु हुई है और अभी पुत्र भी छोटा है, वह राज्य-संचालन के योग्य हो जाय तो आपकी मनोकामना पूर्ण हो सकती है, अभी तो मुझे भी पति-शोक रहा हुआ है, अतः पहले आप मेरे पुत्र के रक्षण के लिए मजबूत किला तैयार करवा दो और धन-धान्य से राज्य को भरपूर कर दो ! मेरा पुत्र राज्य भार को वहन करने में समर्थ बन जाएगा, तब मैं उसे यहाँ छोड़कर तुम्हारे पास आ जाऊंगी । यदि आप मुझ पर अभी बलात्कार करने की कोशिश करोगे तो मैं आत्महत्या कर अपने जीवन का अंत ला दूंगी ! मेरी बात स्वीकार करोगे तो आपको और मुझे भी समाधि रहेगी । अभी तो आप ऐसे ही वापस लौट जाएँ ।''

कामांध बने चंडप्रद्योत को मृगावती की बात पसंद पड़ गई । उसने

सोचा, `आज नहीं तो कल ही सही, महारानी मेरी हुए बिना नहीं रहेगी । अभी तो कालक्षेप करना ही उचित है ।'

चंडप्रद्योत राजा ने अपने राजपुरुषों को गुप्त रूप से आज्ञाकर कौशांबी नगरी के चारों ओर अत्यंत ही मजबूत किला तैयार करवा दिया ।

किला तैयार होने के बाद महासती मृगावती, जो अपने शील को सर्वस्व मानती थी, उसने चंडप्रद्योत राजा को कहलाया कि वह तो उसे मन से भी नहीं चाहती है । मैंने तो मात्र अपने शील की रक्षा के लिए ही तुम्हारे पास यह मजबूत किला तैयार करवाया है ।

महारानी की इन बातों को जानकर चंडप्रद्योत के गुस्से का पार न रहा । ``अहो ! एक नादान स्त्री ने मुझे ठग लिया ! अभी मैं चलता हूँ और उसे उठा ले आता हूँ !'' इस प्रकार विचार कर अपने विराट् सैन्य के साथ चंडप्रद्योत राजा ने कौशांबी नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया ।

कौशांबी के नजदीक आने पर चंडप्रद्योत ने कहलाया, ``हे मृगावती ! यदि तू अपना और अपने पुत्र का हित चाहती है तो तुरंत ही मेरे पास आ जा, अन्यथा तेरा समस्त राज्य नष्ट हो जाएगा ।''

इधर महासती मृगावती ने अपने महल में रहकर वीरप्रभु से प्रार्थना की, ``हे प्रभो ! आप दयालु हो ! आप कृपालु हो ! मेरे शील पर भयंकर संकट आया हुआ है । आप कृपाकर मेरे नगर में पधारें ।''

वीर प्रभु ने अपने ज्ञान के बल से मृगावती की भावना को प्रत्यक्ष देखा ! मृगावती के शीलरक्षण के लिए वीरप्रभु ने कौशांबी की ओर विहार किया और एक शुभ-दिन वीर प्रभु कौशांबी द्वार तक आ गए । महासती मृगावती भी प्रभु के स्वागत के लिए नगर के द्वार खोलकर नगर के बाहर आई । प्रभु ने स्वागत सह नगर में प्रवेश किया । देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की । अनेक देवता व प्रजाजन प्रभु की देशना सुनने के लिए समवसरण में पधारे ।

प्रभु के प्रभाव से चंडप्रद्योत राजा भी अपने वैरभाव को भूलकर प्रभु के समवसरण में आकर बैठ गया ।

प्रभु ने वैराग्यमय धर्मदेशना दी । अपने उपदेश में प्रभु ने परस्त्री-गमन के भयंकर अनर्थ बतलाए । काम-भोग से प्राप्त सुख तो क्षणिक है । खुजली का रोगी जब खुजलाता है, तब उसे क्षणिक आनंद आता है, परंतु परिणाम-

स्वरूप तो उसकी पीड़ा ही बढ़ती है । उसी प्रकार विषय भोग से क्षणभर तृप्ति होती है, परंतु उसके परिणामस्वरूप आत्मा को दीर्घकाल तक नरक आदि के भयंकर दुःख सहन करने पड़ते हैं ।

प्रभु की इस धर्मदेशना को सुन संसार के भौतिक सुखों से विरक्त बनी मृगावती ने खड़े होकर प्रभु से विनती करते हुए कहा, ``हे प्रभो ! चंडप्रद्योत की अनुज्ञा से मैं चारित्रधर्म स्वीकार करना चाहती हूँ ।''

प्रभु के प्रभाव से वैर मुक्त बने चंडप्रद्योत ने भी मृगावती को कह दिया, ``जो तुझे ठीक लगे, वैसा कर ! तुम्हारा पुत्र भले ही राज्य सँभाले !''

वैरभाव से मुक्त बने चंडप्रद्योत ने उसी समय मृगावती को भी दीक्षा के लिए अनुमति दे दी । चंडप्रद्योत की आठ रानियों के साथ मृगावती ने प्रभु के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की । प्रभु ने मृगावती साध्वी चंदनबाला साध्वी को सौंप दी । साध्वीजीवन स्वीकार करने के बाद मृगावती साध्वी विशुद्ध भाव से चारित्रधर्म का पालन करने लगी ।

एक बार चरम तीर्थपति भगवान महावीर परमात्मा का कौशाम्बी नगरी में आगमन हुआ । उस समय अंतिम प्रहर में सूर्य-चन्द्र का विमान सहित आगमन हुआ ।

संध्या काल जानकर चंदनबाला उठकर नगर-मध्य उपाश्रय में चली गई...परन्तु मृगावती साध्वी को समय का ख्याल नहीं आया और वह समवसरण में ही बैठी रही । काफी समय बाद सूर्य-चन्द्र के चले जाने से चारों ओर अंधेरा छा गया ।

अंधकार में मृगावती साध्वी ने उपाश्रय में प्रवेश किया ।

अँधेरे में आने पर चंदनबाला ने मृगावती साध्वी को ठपका देते हुए कहा, **``तेरे जैसी कुलीन बाला के लिए इतनी देर अँधेरे में आना उचित नहीं है । समय का ख्याल रखना चाहिए ।''**

मृगावती ने कहा, ``भविष्य में ऐसी भूल नहीं होगी ।'' नाराज हुई चंदनबाला ने कुछ भी जवाब नहीं दिया । चंदनबाला गुरुणी तो संथारे में सो गई । परन्तु गुरुणी द्वारा दिए गए ठपके को सुनकर मृगावती साध्वी को अपनी भूल का तीव्र पश्चात्ताप होने लगा । वह चंदनबाला साध्वी के संथारे के पास ही बैठी रही और शुभ भाव से आत्म-निंदा करने लगी ।

शुद्ध-भाव से की गई आत्म-निंदा के प्रभाव से मृगावती साध्वी को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ।

उसी समय अँधेरे में एक काला सर्प चंदनबाला साध्वी के संथारे के पास आया । सर्प से बचाने के लिए मृगावती साध्वी ने सोई हुई चंदनबाला का एक हाथ उठाकर अन्यत्र रख दिया ।

इस प्रकार हाथ का स्पर्श होने से चंदनबाला साध्वी जाग गई और नाराजगी दिखाते हुए बोली, ``चल, खड़ी हो जा ! मेरा हाथ क्यों उठाया ?''

मृगावती साध्वी ने कहा, ``अभी-अभी यहाँ साँप आया था, उससे बचाने के लिए ही मैंने आपका हाथ उठाया था ।''

चंदनबाला ने पूछा, ``यह तुझे कैसे पता लगा ?''

मृगावती ने कहा, ``ज्ञान से ।''

``कौनसा ज्ञान प्रतिपाति या अप्रतिपाति ?''

मृगावती ने कहा, ``अप्रतिपाति ।''

बस, इस बात को सुनते ही चंदनबाला ने सोचा, ``अहो ! मृगावती साध्वी को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है । मैंने इन्हें ठपका देकर इनकी घोर आशातना की है ।''

चंदनबाला ने मृगावती साध्वी के पास सच्चे दिल से क्षमायाचना की ।

इस क्षमायाचना के प्रभाव से चंदनबाला साध्वी को भी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ।

21. महासती चेलना

वैशाली नगरी में महाराजा चेटक का साम्राज्य था । वे महावीर प्रभु के परम भक्त श्रावक थे । श्रावकजीवन के अलंकारस्वरूप अनेक व्रतों को उन्होंने स्वीकार किया था । उनके 'प्रथा' नाम की महारानी थी ।

महाराजा के कुल 7 पुत्रियाँ थीं ।

पहली पुत्री प्रभावती का विवाह वीतभयनगर के महाराजा उदयन के साथ हुआ था ।

दूसरी पुत्री पद्मावती का विवाह चंपानगरी के अधिपति दधिवाहन राजा के साथ हुआ था ।

तीसरी पुत्री मृगावती का विवाह कौशांबी के राजा शतानीक के साथ हुआ था ।

चौथी पुत्री शिवा का विवाह उज्जैनीनगरी के राजा चंडप्रद्योत के साथ हुआ था ।

पाँचवीं पुत्री ज्येष्ठा का विवाह कुंडपुरनगर के युवराज नंदिवर्धन के साथ हुआ था ।

महाराजा की दो पुत्रियों का विवाह बाकी था...सुज्येष्ठा और चेलना ।

दोनों राजकुमारियों का अद्‌भुत रूप व लावण्य था । दोनों सरस्वती की साक्षात् अवतार तुल्य थीं । उन दोनों के बीच गाढ़ प्रेम था । वे सर्व कलाओं में कुशल थीं ।

एक बार वे दोनों अपने बैठक खंड में वार्ता-विनोद कर रही थी तभी भगवा वस्त्रधारी एक तापसी का आगमन हुआ ।

दोनों राजकुमारियाँ अपने आसन पर से खड़ी हो गईं । उन्होंने तापसी को पूछा, ``आपका आगमन कैसे हुआ ?''

तापसी ने कहा, ``मैं आपको सच्चा धर्म समझाने आई हूँ ।''

उन्होंने कहा, ``कहो, कौनसा धर्म है ?''

तापसी ने कहा, ``शौच मूलक धर्म ही सच्चा धर्म है, उसी से सभी पापों का नाश होता है ।''

सुज्येष्ठा ने कहा, ``शौच तो स्वयं अशुभ आस्त्रव रूप है, वह धर्म कैसे हो सकता है ?''

``जिनेश्वरकथित अहिंसा-मूलक दयामय धर्म ही सच्चा धर्म है । दया ही धर्मरूपी वृक्ष का मूल है । दया के अभाव में धर्म कैसे ?''

``कड़वी तुंबड़ी को तीर्थों के पवित्र जल में स्नान कराने से क्या वह कभी मीठी हो सकती है ? बस, इसी प्रकार सिर्फ देह की शुद्धि करने से कभी आत्मकल्याण संभव नहीं है ।''

इस प्रकार सुज्येष्ठा ने अनेक तर्क देकर तापसी के शौच धर्म का खंडन किया । उसने अपनी दासियों को आदेश देकर उस तापसी को अपने खंड से बाहर निकाल दिया ।

सुज्येष्ठा के द्वारा हुए इस अपमान को वह तापसी सहन नहीं कर पाई, वह अत्यंत ही कोपायमान हो गई । अपने अपमान का बदला लेने के लिए वह सोचने लगी । सोचते-सोचते आखिर उसे एक उपाय मिल गया ।

सुज्येष्ठा को आपत्ति में डालने के लिए उसने एक काष्ठ-फलक पर सुज्येष्ठा का चित्र तैयार किया । वह तापसी चित्रकला में अत्यंत ही होशियार थी ।

वह उस चित्र को लेकर राजगृही नगरी में श्रेणिक महाराजा के महल में गई । राजा ने उसका अभिवादन किया । औपचारिक बातचीत के बाद तापसी ने वह चित्र राजा के सामने रख दिया ।

सुज्येष्ठा के अत्यंत ही मनमोहक चित्र को देख, श्रेणिक महाराजा का मन अत्यंत ही आवर्जित हो गया । उन्होंने तापसी को पूछा, ``यह रूप सुंदरी

कौन है ?'' यह नागकन्या है ? कामदेव की पत्नी रति है ? कुछ भी हो यह मानवकन्या तो नहीं हो सकती है । सच कहो, यह किसका चित्र है ?''

तापसी ने कहा, ``यह किसी देवी का चित्र नहीं है । यह तो एक राजकन्या का ही चित्र है, यह तो उस कन्या का अंश मात्र भी नहीं है । उस कन्या का मूल स्वरूप तो इससे खूब अद्‌भुत है । यह कन्या और कोई नहीं है, यह तो चेटक महाराजा की पुत्री सुज्येष्ठा है और वह आपके लिए ही योग्य है । गुण और रूप का उसमें सुभग समन्वय हुआ है ।'' इतना कहकर वह तापसी अन्यत्र चली गई ।

श्रेणिक महाराजा ने सुज्येष्ठा का वह चित्र देखा और वे अत्यंत ही मुग्ध हो गए । वे सुज्येष्ठा के विचारों में खो गए । किसी भी उपाय से सुज्येष्ठा को पाने के लिए समुत्सुक बन गए ।

सुज्येष्ठा के साथ पाणि-ग्रहण करने के लिए श्रेणिक ने अपने दूत को तैयार किया और वैशाली के लिए रवाना कर दिया ।

कुछ ही दिनों में वह दूत वैशाली पहुँच गया । वह दूत राजसभा में उपस्थित हुआ । उसने राजा को निवेदन करते हुए कहा, ``हे राजन् ! मैं राजगृही नगरी से श्रेणिक महाराजा का संदेश लेकर आया हूँ ।''

``कहो, क्या संदेश है ?'' राजा ने उत्सुकता से पूछा ।

``श्रेणिक महाराजा आपकी सुपुत्री सुज्येष्ठा के साथ पाणि-ग्रहण करना चाहते हैं ।''

``ओहो ! यह बात संभव नहीं है । तुम्हारे स्वामी वाहीक कुल में पैदा हुए हैं । अतः हीनकुल में उत्पन्न हुए तुम्हारे स्वामी को हैस्तयवंश में उत्पन्न हुई यह कन्या कैसे दे सकता हूँ ? तुम यहाँ से चले जाओ ।''

इस प्रकार चेटक राजा से तिरस्कृत हुआ वह दूत राजगृही नगरी में आ गया । उसने श्रेणिक महाराजा को सारी बात कही ।

दूत की बात सुनकर श्रेणिक को अत्यंत आघात लगा । राहु से ग्रस्त चंद्र की तरह उसका मुँह निस्तेज हो गया ।

सुज्येष्ठा के चित्र ने श्रेणिक का मन हर लिया था । अन्य किसी कार्य में श्रेणिक का मन नहीं लगता था ।

आखिर, अभयकुमार को इस बात का पता चला ।

अभयकुमार ने कहा, ``पिताजी ! कुछ काम बल से सिद्ध होते हैं और कुछ काम बुद्धि से । चेटक बलवान राजा है, उसे अपने कुल का अभिमान भी है, अतः वह सीधे तरीके से तो अपनी पुत्री नहीं देगा इसके लिए अन्य उपाय ही करना पड़ेगा । आप निश्चिंत रहें । मैं उपाय करके भी उस कन्या को प्राप्त करा दूंगा ।''

अभयकुमार के आश्वासन भरे शब्दों को सुनकर श्रेणिक महाराजा निश्चिंत हो गए ।

सुज्येष्ठा को पाने के लिए अभयकुमार ने गहराई से सोचा । सोचते-सोचते आखिर उसे एक उपाय मिल गया ।

उसने राजगृही के श्रेष्ठ चित्रकार को बुलाकर एक काष्ठफलक पर श्रेणिक महाराजा का अत्यंत सुंदर चित्र तैयार कराया ।

उसके बाद गुटिका के प्रभाव से अपने रूप-रंग और स्वर को बदल लिया । अभयकुमार ने व्यापारी का वेष धारण किया । क्रमशः आगे बढ़ता हुआ वह वैशाली नगरी में आया । राजमहल के पास में ही उसने अपनी दुकान चालू कर दी । अभयकुमार अपनी दुकान में देह-शणगार के लिए उपयोगी सुगंधित पदार्थ बेचने लगा ।

उसके मृदु व्यवहार से आकर्षित होकर राजमहल में से अनेक दासियाँ उसके पास सामान खरीदने के लिए आने लगीं ।

एक बार सुज्येष्ठा की दासी कुछ सामान खरीदने के लिए अभयकुमार की दुकान पर आ रही थी, तभी अभयकुमार, श्रेणिक के फोटो की देव की तरह पूजा करने लगा ।

दासी ने श्रेणिक का वह चित्र देख लिया । उस चित्र को देख वह खूब प्रभावित हुई । उसने पूछा, ``यह चित्र किसका है ?''

अभय ने कहा, ``यह तो राजगृही के सम्राट् श्रेणिक महाराजा का चित्र है । मैं उन्हें अपना आराध्यदेव मानता हूँ ।''

दासी ने जाकर सुज्येष्ठा को बात कही । सुज्येष्ठा के मन में श्रेणिक के चित्र को देखने का कौतूहल पैदा हुआ ।

दासी ने आकर अभयकुमार को बात कही । अभयकुमार ने कहा, ``मैं यह चित्रपट देने के लिए तैयार हूँ, परंतु महाराजा को इस बात का पता नहीं लगना चाहिए ।''

19. महासती मृगावती पृष्ठ नं. 39

21. महासती चेलना पृष्ठ नं. 47

दासी ने कहा, ``आप निश्चिंत रहें । यह बात बिल्कुल गुप्त रहेगी ।''

अभयकुमार ने कपड़े में लपेटकर श्रेणिक का चित्र दासी को दे दिया ।

दासी ने जाकर वह चित्र सुज्येष्ठा को दिया । श्रेणिक के अद्‌भुत रूप व लावण्य युक्त चित्र को देखकर तत्क्षण सुज्येष्ठा ने मनोमन संकल्प कर लिया कि इस जीवन में मेरा विवाह होगा तो श्रेणिक के साथ ही । अन्य किसी को मैं अपना वर नहीं बनाऊंगी ।

सुज्येष्ठा ने दासी से अपने मन की बात कही । दासी ने जाकर अभयकुमार को कहा, ``आप कुछ भी उपाय कर राजकन्या की मनोकामना को पूर्ण करने का प्रयत्न करें । श्रेणिक के चित्र ने उसके मन को हर लिया है । वह मन से तो श्रेणिक को वर चुकी है । अतः आप कुछ भी उपाय कर श्रेणिक और सुज्येष्ठा के पाणिग्रहण का उपाय शोध लें ।''

अभय ने कहा, ``राजकुमारी अपने संकल्प पर दृढ़ रहेगी न ? महाराजा चेटक अपनी पुत्री को सीधी रीति से सौंपने के लिए तैयार नहीं होंगे अतः श्रेणिक के साथ पाणिग्रहण का एक मात्र उपाय रहेगा **'अपहरण'** । इसके लिए सुज्येष्ठा को पूरी तैयारी रखनी होगी और यह सारी योजना पूर्णतया गुप्त रहे, यह खूब जरूरी होगा ।''

दासी ने जाकर सुज्येष्ठा को सब बातें कह दीं । अभयकुमार की हर बात में सुज्येष्ठा ने अपनी सहमति दे दी । वह किसी भी उपाय से इस जीवन में श्रेणिक को ही वरना चाहती थी ।

दासी ने जाकर, अभयकुमार को सारी बात कह दी । अभयकुमार ने कहा, ``मैं राजमहल के निकट भू-भाग तक सुरंग खुदवा दूंगा । उस सुरंग के मार्ग से श्रेणिक महाराजा यहाँ आएंगे और सुज्येष्ठा को रथ में बिठाकर ले जाएंगे ।''

दासी ने जाकर सुज्येष्ठा को सारी जानकारी दे दी ।

अपनी योजना को साकार होते देख अभयकुमार ने अपनी दुकान बंद कर दी...और तुरंत ही घोड़े पर सवार होकर राजगृही नगरी में आ गया ।

राजगृही नगरी में आकर अपने पिता के चरणों में नमस्कार करके बोला, ``हे पिताजी ! आपके शुभाशीर्वाद से आपके कार्य को करने में मैं सक्षम बना हूँ ।'' इतना कहकर अभयकुमार ने श्रेणिक महाराजा को सारी बातें बतला दीं ।

इधर सुज्येष्ठा के अपहरण की अपनी योजना को सफल बनाने के लिए मगध की सीमा के अंत भाग से लेकर वैशाली तक के गुप्त मार्ग को खोदने का काम प्रारंभ कर दिया । कुछ ही दिनों में वह सुरंग तैयार हो गई ।

अभयकुमार ने सुलसा के 32 पुत्रों को श्रेणिक महाराजा के अंगरक्षक के रूप में नियुक्त किया । सुलसा के सभी पुत्र अत्यंत ही बलवान, साहसिक और युद्धकुशल थे ।

श्रेणिक महाराजा तथा 32 अंगरक्षकों के कुल 33 रथ तैयार कर दिए गए । सुज्येष्ठा को गुप्त रूप से सब समाचार भेज दिए गए ।

एक शुभ दिन श्रेणिक ने राजगृही से प्रयाण प्रारंभ किया । सबसे आगे सुलसा के 32 पुत्रों के रथ थें और अंत में श्रेणिक महाराजा का रथ था ।

सुरंग में से निकलकर श्रेणिक बाहर आ गए । अंगरक्षकों के भी सभी रथ सुरंग में से बाहर आ चुके थें ।

सुज्येष्ठा ने चेलना को सब बातें कहीं, तो वह भी श्रेणिक के साथ पाणिग्रहण के लिए तैयार हो गई ।

सुज्येष्ठा और चेलना भी रथ में बैठने के लिए तैयार होकर आई थीं ।

सभी रथ तैयार थें । सबसे पहले चेलना रथ में आरूढ़ हो गई । उसी समय ज्येष्ठा भी रथ में चढ़ने के लिए तैयार ही थी...परंतु अचानक उसे रत्नों के आभूषणों की पेटी याद आ गई ।

उसने श्रेणिक को कहा, ``मैं अपने रत्नों की पेटी लेकर अभी आती हूँ, तब तक आप ठहरना ।''

थोड़ा समय बीतने पर सुलसापुत्र अंगरक्षकों को चिंता सताने लगी ।

उन्होंने श्रेणिक को कहा, ``राजन् ! शत्रु के घर में लंबे समय तक रहना हितावह नहीं है, अतः यहाँ से शीघ्र प्रयाण करना चाहिए ।''

अंगरक्षकों की ओर से सूचना मिलने पर श्रेणिक ने सोचा, ``सुज्येष्ठा तो रथ में बैठ गई है और चेलना रत्नों के आभूषणों की पेटी लेने के लिए राजमहल में गई है...परंतु यहाँ ज्यादा समय तक रुकना ठीक नहीं है ।'' इस प्रकार विचारकर श्रेणिक ने सारथी को रथ हाँकने के लिए आज्ञा कर दी ।

श्रेणिक की आज्ञा होते ही सारथी ने अपने रथ को सुरंग में प्रवेश करा दिया और इसके साथ ही तेजी से अपना रथ हाँक दिया । चंद क्षणों में ही वह रथ सुरंग में तेजी से आगे बढ़ने लगा ।

श्रेणिक के रथ के सुरंग में प्रवेश हो जाने के बाद सुलसापुत्र 32 अंग रक्षकों के रथों ने भी सुरंग में प्रवेश कर लिया ।

इधर थोड़ी देर बाद सुज्येष्ठा रत्नों की पेटी लेकर वहाँ आई...परंतु उसने वहाँ न तो श्रेणिक का रथ देखा और न ही श्रेणिक के अंगरक्षकों के रथ देखें ।

वह एकदम घबरा गई । अरे ! यह क्या ? मैं रह गई और चेलना चली गई ?

वह करुण-कल्पांत रुदन करने लगी ।

कुछ समय बाद वह शांत हुई और पुनः राजमहल की ओर भागने लगी । उसने जाकर चेटक महाराजा से बात की, ``पिताजी ! पिताजी ! चेलना का अपहरण हो गया है ।''

चेलना के अपहरण को सुनते ही चेटक महाराजा आवेश में आ गए । तुरंत ही धनुष-बाण हाथ में लेकर रथ में आरूढ़ होकर सुरंग की दिशा में आगे बढ़े ।

उसी समय सेनापति वीरांगक ने कहा, ``राजन् ! आपको वहाँ जाने की जरूरत नहीं है । मैं शत्रु को परास्त कर चेलना को लेकर वापस शीघ्र ही लौट आता हूँ ।''

महाराजा को वीरांगक के पराक्रम पर पूर्ण विश्वास था, अतः वे स्वयं वहीं रुक गए । वीरांगक ने सुरंग में अपने रथ का प्रवेश कराया । परंतु श्रेणिक का रथ तो सबसे आगे था, अतः वह श्रेणिक के रथ पर कुछ भी प्रहार नहीं कर पाया परंतु उसने श्रेणिक के एक अंगरक्षक पर बाण का प्रहार किया । बाण से सुलसा का एक पुत्र मारा गया । परंतु यह क्या ? सुलसा के एक पुत्र के मरण के साथ शेष 31 पुत्रों की भी मौत हो गई । वे सब वहीं ढेर हो गए ।

इधर वीरांगक सुरंग में से लौट आया । उसने चेटक महाराजा को समाचार दिए, ``श्रेणिक का रथ राजगृही की सीमा में पहुँच चुका था और वहाँ पर उसका विराट् पैदल सैन्य तैयार खड़ा था, अतः मैं चेलना को छुड़ाए बिना ऐसे ही वापस लौट आया हूँ ।''

इधर सुज्येष्ठा को ज्योंही समाचार मिले कि ``वीरांगक वापस लौट आया है और चेलना नहीं आई है'' तो उसके आघात का पार न रहा ।

सुज्येष्ठा सोचने लगी, ``अहो ! मेरे दुर्भाग्य की कोई सीमा नहीं है । जिस श्रेणिक को पाने के लिए मैंने इतना अधिक जोखिम उठाया; अभयकुमार

ने यहाँ तक गुप्त सुरंग तैयार की और मैं इतनी अभागिन नारी कि श्रेणिक के हाथ को पकड़ न सकी । इस जीवन में श्रेणिक को छोड़ अन्य किसी का हाथ मुझे पकड़ना नहीं है...अतः अब मैं महावीर प्रभु के वरदहस्तों से भागवती दीक्षा अंगीकार कर साध्वी जीवन स्वीकार करूंगी ।''

अवसर देखकर सुज्येष्ठा ने अपने दिल की भावना अपने पिता को व्यक्त की ।

सुज्येष्ठा की इस भावना को देख चेटक राजा को आश्चर्य हुआ । आखिर उसकी दृढ़ भावना को देख माता-पिता ने उसे सहर्ष अनुमति प्रदान की...और एक शुभ दिन मोह-माया के बंधनों का त्याग कर सुज्येष्ठा आर्या साध्वी बन गई ।

निर्मल संयमजीवन की आराधना-साधना कर सुज्येष्ठा ने अपना आत्मकल्याण किया ।

सुरंग के मार्ग को पारकर जब श्रेणिक का रथ राजगृही नगरी में पहुँच गया, तब श्रेणिक ने कहा, ``देवी सुज्येष्ठा ! राजगृही नगरी आ गई है, तुम रथ में से नीचे उतरो ।''

श्रेणिक के इस संबोधन को सुनकर चेलना ने कहा, ``स्वामीनाथ ! मैं सुज्येष्ठा नहीं हूँ, मेरा नाम चेलना है । मैं सुज्येष्ठा की छोटी बहिन हूँ ।''

``सुज्येष्ठा कहाँ है ?''

``नाथ ! मैं और सुज्येष्ठा आपको हृदय से वर चुकी थीं, हम दोनों रथ में बैठने के लिए तैयार थीं, परंतु सुज्येष्ठा अपने रत्नों के आभूषणों की पेटी भूल गई थी, वह उन्हें लेने के लिए गई...और इधर यह रथ रवाना हो गया । सुज्येष्ठा पीछे रह गई ।''

``ओहो ! सुज्येष्ठा पीछे रह गई ! आखिर भाग्य को मंजूर होता है, वही होता है ।''

श्रेणिक ने चेलना को अपने अंतःपुर में भिजवा दिया ।

श्रेणिक ने अभयकुमार को बुलाकर पूछा, ``अभी तक सुरंग में से सुलसा-पुत्र अंगरक्षक आए नहीं ?''

``पिताजी ! मैं अभी जाता हूँ और छानबीन करके आता हूँ ।''

अभयकुमार घोड़े पर बैठकर सुरंग के द्वार के पास आया, तब उसे ज्ञात हुआ कि सभी अंगरक्षकों की मृत्यु हो गई है ।

अंगरक्षकों की मृत्यु को जानकर अभयकुमार को अत्यंत ही आघात लगा ।

अभयकुमार ने जब ये समाचार श्रेणिक महाराजा को दिए तो उनके भी दुःख का पार न रहा ।

श्रेणिक सोचने लगे, ``अहो ! मेरी मोहांधता को धिक्कार हो । मेरे कारण ही सुलसा के 32 पुत्रों की एक साथ मृत्यु हुई है । अपने वैर का बदला लेने के लिए मैं वैशाली पर आक्रमण करूँ तो भी इससे मुझे क्या फायदा ? सुलसा के 32 पुत्रों का पुनःसंयोग तो अब प्राप्त होने वाला नहीं है ।''

श्रेणिक स्वयं जोर से रुदन करने लगे । आखिर अभयकुमार ने आश्वासन देकर उन्हें शांत किया ।

अभयकुमार ने कहा, ``पिताजी ! हमें मुख्य दो कार्य करने हैं 1) नागसारथी के पुत्रों के मृत देहों को सुलसा की हवेली में पहुँचाना और 2) सुलसा-नाग आदि को पुत्र-मृत्यु के समाचार देना ।''

श्रेणिक ने कहा, ``ये दोनों कार्य हम दोनों को ही करने होंगे । सुलसा तो धर्मात्मा है, शायद वह पुत्र-मृत्यु के आघात को सहन कर लेगी । परंतु नागसारथी और उसकी पुत्र-वधुओं की क्या हालत होगी ? वे उस आघात को कैसे सहन कर पाएंगे ?''

श्रेणिक व अभयकुमार रथ में आरूढ़ होकर सुलसा के महल की ओर आगे बढ़े ।

अचानक ही महाराजा व महामंत्री को अपने महल के द्वार पर आए देख नागसारथी के आश्चर्य का पार न रहा ।

वह हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोला, ``राजन् ! पधारो ! पधारो !! आपके आगमन से मेरा आँगन पावन हो गया है । राजन् ! मेरे योग्य सेवाकार्य फरमाइए ।''

थोड़ी इधर-उधर की बातें करके अवसर देखकर धीरे से अभयकुमार ने कहा, ``वैशाली से वापस लौटते समय दुश्मनों ने तुम्हारे एक पुत्र पर प्रहार कर उसे मौत के घाट उतार दिया था-परंतु दुर्भाग्य से उस एक की मृत्यु के साथ शेष सभी पुत्रों की भी मृत्यु हो गई है ।''

अभयकुमार के मुख से अपने 32 पुत्रों के अकाल अवसान के समाचार सुनकर नाग वज्राघात की तरह मूर्च्छित होकर भूमि पर ढल पड़ा...और कुछ

क्षणों के बाद होश में आने पर करुण कल्पांत रुदन करने लगा । वह अपने दोनों हाथों से सिर पछाड़ने लगा । अपने पुत्रों के गुणों को याद कर वह पुनः पुनः जोर से विलाप करने लगा । उसकी आँखों में से सावन-भादों बरसने लगे ।

``हाय ! अहो दुर्दैव ! मेरी 32 पुत्रवधुओं के सौभाग्य को तूने एक साथ में छीन लिया ? अब मैं ``वत्स ! बेटा ! कहकर किसे बुलाऊंगा ? तूने मुझे ही क्यों न उठा लिया ?''

इधर सुलसा को भी जैसे ही 32 पुत्रों की अकाल-मृत्यु के समाचार मिले-वह भी मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी ।

ठंडी हवा और चंदन के विलेपन से होश में आने पर सुलसा करुण कल्पांत रुदन करने लगी ।

``ओहो ! मैं कितनी अभागिनी हूँ ? हे पुत्रो ! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चले गए ?''

``माँ ! माँ !'' कहकर अब मुझे कौन पुकारेगा ?

``हे दुर्दैव ! तूने मेरी 32 पुत्रवधुओं को एक साथ विधवा कर दिया ?

``हाय ! सच तो मेरे पुत्रों के मरण में मैं ही निमित्त बनी हूँ ! देव ने मुझे क्रमशः खाने के लिए 32 गुटिकाएँ दी थीं परंतु मैंने वे सब गुटिकाएँ एक साथ खा ली थीं...इसी कारण एक की मौत में उन सब की मौत हुई है ।''

सुलसा की पुत्रवधुओं को जब अपने पतिदेवों के अकाल अवसान के समाचार मिले तो वे तुरंत ही मूर्च्छित होकर धरती पर ढल पड़ीं और होश में आने पर करुण-कल्पांत विलाप करने लगीं ।

सभी को आश्वासन देते हुए अभयकुमार ने कहा, ``आप सभी तो विवेकी हो ! जैनधर्म के परमार्थ को अच्छी तरह से जानने-समझनेवाले हो । संसार के सभी पदार्थ क्षणभंगुर व अस्थिर हैं । अतः तुम्हें इस प्रकार शोक करना उचित नहीं है ।

``ज्ञानी महापुरूषों ने इस संसार में रहे पदार्थों को ``इन्द्रजाल'' ``मेघधनुष'' ``हाथी के कान'' ``संध्या के रंग'' आदि की विविध उपमाएँ दी हैं । समुद्र के जलतरंग के समान मनुष्य का आयुष्य अत्यंत ही चपल है ।

``संसार में मरण स्वाभाविक है, जीवन विकृति रूप है । जिसका जन्म है, उसका मरण तो अवश्यंभावी है । हे बहिन सुलसा !

``आप तो तत्त्वज्ञ हो । भगवान महावीर की उपासिका हो । संसार में जन्म लेनेवाले को एक बार तो अवश्य मरना ही पड़ता है ।''

``इस संसार में माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्रवधू के जो भी संबंध हैं, वे वास्तविक नहीं हैं । ये सारे संबंध तो कर्मकृत हैं । जिस प्रकार धर्मशाला में सभी मुसाफिर इकट्ठे होते हैं, परंतु कुछ समय बाद सभी अलग-अलग दिशाओं में प्रयाण कर लेते है, बस, इसी प्रकार मौत के साथ ही सभी जीव अपने-अपने कर्म के अनुसार अलग-अलग गति में चले जाते हैं ।''

आँसू बहाते हुए सुलसा बोली, ``मंत्रीश्वर ! आपकी बातें सत्य हैं । भवस्वरूप को मैं भी अच्छी तरह से जानती हूँ, परंतु पुत्रों के अकाल अवसान से जो आघात लगा है, वह मेरे लिए भी असह्य बन गया है ।'' इतना कहकर सुलसा और उसकी पुत्र-वधुएँ आक्रंदन करने लगीं ।

पुनः महामंत्री ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा, ``आप तो सूर्य समान तेजस्वी महावीर प्रभु की परम उपासिका हो । आपको उपदेश देना मुझे लज्जास्पद लगता है ।''

``हे बहिन ! यह सारा जगत् ही स्वप्न तुल्य है तो इन सांसारिक संबंधों को याद कर कल्पांत रुदन करना कहाँ तक उचित है ?''

अभयकुमार के प्रेरणादायी वचनों को सुनकर सुलसा को खूब आश्वासन मिला । उसका शोक धीरे-धीरे कम हुआ ।

आश्वासन देकर श्रेणिक व अभयकुमार स्थारूढ़ होकर अपने महल में आ गए ।

इधर उन 32 पुत्रों की उत्तरक्रिया की गई । धीरे-धीरे समय बीतने लगा और नाग सारथी व पुत्रवधुओं का शोक भी कम होने लगा ।

कुलांगार-संतान

मगध के सम्राट् श्रेणिक की मुख्य महारानी चेलना गर्भवती हुई ।

धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने लगा ! गर्भ के प्रभाव से चेलना को अजीब प्रकार के दोहद पैदा होने लगे । उसके आश्चर्य का पार न रहा । ``अहो ! यह क्या ? पति के प्रति मेरे दिल में अपूर्व भक्ति है, श्रद्धा है, समर्पण है...तो फिर ऐसा विचित्र दोहद क्यों पैदा हो रहा है ?''

`मैं अपने पति के कलेजे का मांस खाऊँ, अहो ! यह तो कैसी विचित्र बात है !'

कई दिनों तक चेलना महारानी ने अपने दोहद की बात पति को नहीं कही ।

दोहद की पूर्ति के अभाव के कारण चेलना का शरीर सूखने लगा ।

आखिर बुद्धिनिधान अभयकुमार ने चेलना के दोहद का पता लगाया और युक्तिपूर्वक उस दोहद को पूर्ण कराया ।

दोहद की पूर्ति के बाद चेलना रानी को खूब आघात लगा ।

अहो ! मैंने अपने पति के कलेजे का मांस खाया ! मैंने अच्छा नहीं किया । दोहद के प्रभाव से अनुमान होता है कि गर्भ में आनेवाली संतान उसके पिता के लिए मौत का ही कारण बनेगी, अन्यथा ऐसा दोहद क्यों पैदा होता ?

धीरे-धीरे गर्भकाल व्यतीत होने लगा ।

...और एक दिन चेलना ने अत्यंत तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

भावी अनर्थ की कल्पना से चेलना के दिल में पुत्र के प्रति कुछ भी अनुराग भाव पैदा नहीं हुआ...और पुत्रजन्म के बाद तुरंत ही उसे दासी के हाथों नगर के बाहर कचरा-पट्टी में फिंकवा दिया ।

आदमी सोचता कुछ है और कुदरत को कुछ और ही मंजूर होता है ।

सब कुछ मानव की इच्छा के अनुसार ही होता हो, तब तो इस दुनिया में धरती पर स्वर्ग उतर आता !

परंतु मानव कुदरत के आगे कमजोर है । लाख-लाख कोशिश करने के बाद भी आखिर होता वही है जो कुदरत को मंजूर होता है ।

भावी झंझट से मुक्ति पाने के लिए चेलना ने वह बालक कचरा पट्टी में फिंकवा दिया...परंतु योगानुयोग थोड़ी देर में श्रेणिक का रथ उस मार्ग से आगे बढ़ा ।

इधर किसी मुर्गे ने नवजात शिशु की अंगुली काट डाली थी, अतः वह बालक जोर से करुण रुदन कर रहा था ।

श्रेणिक के कानों में बालक के रुदन के शब्द आए...और उनका करुणार्द्र हृदय पुकार उठा ।

सारथी के पास से उन्होंने उस बालक को उठवा लिया । राजमहल

में आने के बाद उन्हें सत्य घटना का पता चला कि चेलना महारानी ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया है और उसी रानी ने भावी अनर्थ को जान उस पुत्र को फिंकवा दिया है ।

नवजात शिशु की अंगुली किसी मुर्गे ने काट ली थी, अतः उसी वेदना से उस बालक का रुदन चालू था ।

श्रेणिक का पितृहृदय पुकार उठा और उन्होंने उस बालक की अंगुली अपने मुँह में रख ली ।

किसी भी प्रकार से सांत्वना देते हुए उन्होंने उस बालक को शांत किया ।

आगे चलकर श्रेणिक ने उस पुत्र का नाम `कोणिक' रखा ।

समय का प्रवाह द्रुतगति से आगे बढ़ने लगा ।

वह नवजात शिशु अब शक्तिशाली युवा बन चुका था ।

राज्य पाने की तीव्र लालसा से उस कोणिक ने अपने पिता को सत्ता-भ्रष्ट कर दिया था ।

मगध की सत्ता अब श्रेणिक के हाथों से निकल चुकी थी । अब कोणिक मगध का सम्राट् बन चुका था । कोणिक ने अपने उपकारी पिता को जेल के सिकंजों में बंद कर दिया था ।

कोणिक अपने पिता को रोज सौ-सौ हंटर लगवाता था ।

हंटर की भयंकर मार में भी श्रेणिक के मुँह से कभी दीनता के करुण स्वर नहीं निकले थे ।

हंटर मारनेवाला थक जाता था, परंतु हंटर की मार को सहनेवाले श्रेणिक नहीं थकते थे ।

एक दिन उसने पूछ लिया, ``मैं हंटर मारते-मारते थक जाता हूँ परंतु मार खाते हुए भी आप थकते नहीं हो ।''

प्रतिहारी की बात सुनकर श्रेणिक ने हँसते हुए कहा, ``तू कौन ?'' ``मगधसम्राट् कोणिक का दास'' ``और मैं कौन ?'' ``त्रिभुवनपति भगवान महावीर का दास ।''

``तू भी दास है और मैं भी दास हूँ । परंतु दोनों में अंतर है ।

``तेरे पीछे मगध सम्राट् कोणिक का पीठबल है तो मेरे पीछे त्रिभुवन-पति भगवान महावीर का पीठबल है ।

``तेरे पीछे कोणिक की शक्ति काम कर रही है तो मेरे पीछे त्रिभुवनपति महावीर की शक्ति काम कर रही है ।''

श्रेणिक के इस जवाब को सुनकर प्रतिहारी के आश्चर्य का पार न रहा ।

श्रेणिक महाराज के दो पुत्र-अभय और कोणिक । एक कुलदीपक था तो एक कुलांगार ।

श्रेणिक अभय को राजगद्दी सौंपना चाहते थे, परंतु अभय को राजगद्दी मंजूर नहीं थी । जबकि कोणिक ने श्रेणिक को बंदी बनाकर राजगद्दी अपने कब्जे में कर ली थी ।

एक दिन की बात है ।

माँ चेलना के सामने कोणिक राजा भोजन कर रहा था, उस समय बाल शिशु उदायी कोणिक की गोद में बैठा हुआ था । उस समय अचानक उसने पेशाब कर दिया ।

पेशाब के कुछ छींटे भोजन की थाली में गिरे परंतु पुत्र-मोह के कारण कोणिक के दिल में लेश भी घृणा पैदा नहीं हुई । उसने उस भाग को दूर कर भोजन करना चालू किया ।

उसी समय कोणिक ने अपनी माँ को कहा, ``मेरे जैसा पुत्र-प्रेमी पिता कभी देखा है ? पुत्र की अशुचि की भी मुझे परवाह नहीं है ।''

अपने पुत्र के पुत्र-प्रेम की इस बात को सुनकर सत्य का घटस्फोट करते हुए माँ चेलना ने कहा, ``तेरे दिल में जो पुत्र-प्रेम है, उससे लाख-गुणा पुत्र-प्रेम तेरे पिता के दिल में है ।''

``जब तेरा जन्म हुआ था, तब मैंने तुझे नगर बाहर कचरा-पट्टी में फिंकवा दिया था, उस समय किसी मुर्गे ने तेरी अँगुली काट ली थी । थोड़ी देर बाद तेरे पिता को इस बात का पता चला, तो वे तुझे महल में ले आए । तू जोर-जोर से चिल्ला रहा था, तब तेरे पिता ने तेरी अँगुली मुँह में रखकर तुझे चुप किया था । इससे बढ़कर पुत्र-प्रेम और क्या हो सकता है ?''

अपनी माँ के मुख से इन बातों को सुनकर कोणिक तो स्तब्ध रह गया । अहो ! जिस पिता को मैंने सत्ताभ्रष्ट कर जेल के सिकंजों में बंद किया है, उनके दिल में मेरे प्रति इतना अधिक प्रेम !

``अहो ! उस प्रेम का मैंने यही बदला चुकाया ! अहो ! मैं कितना कृतघ्न रहा ! उपकारी के उपकार की मेरे मन में कुछ भी कीमत नहीं रही । उस अहसान का बदला चुकाने की बात तो दूर रही, उस अहसान के प्रति मैं आभार भी व्यक्त नहीं कर पाया ! अहो ! मेरे जैसा दुर्भागी और कौन होगा ?

``जेल के सिकंजों में बंदकर ही मैंने अपने उपकार का बदला चुकाया !''

``माँ ! ओ माँ ! मैं अभी चलता हूँ और पिता को बंधनमुक्त करता हूँ'' इतना कहकर जेल की उन बेड़ियों को तोड़ने के लिए हाथ में मोटा हथौड़ा लेकर कोणिक कारागृह Jail की ओर आगे बढ़ा !

उसी समय जेल के सिकंजों में आजीवन कैदी की जिंदगी जी रहे श्रेणिक ने हथौड़े सहित कोणिक को आते हुए देखा । कोणिक के दिल में पिता को शीघ्र बंधनमुक्त कराने की तीव्र तमन्ना थी ।

परंतु कोणिक के हाथ में हथौड़े को देखकर श्रेणिक अलग ही कल्पना के जाल में फँस गए ।

वे सोचने लगे, ``जेल के सिकंजों में बंद कर...रोज हंटरों की मार लगवाकर भी लगता है...कोणिक को संतोष नहीं है...और इसीलिए मुझे मौत के घाट उतारने के लिए हाथ में हथौड़ा लेकर कोणिक आ रहा है ।''

मन:पर्यवज्ञानी सिवाय मानव के मन के भीतर रही भावनाओं को कौन जान-पहिचान सकता है ।

कोणिक के दिल में कुछ अलग ही भावना थी तो श्रेणिक अपने मन में अलग ही सोच रहे थे ।

न श्रेणिक कोणिक की भावना को पहिचान पाए...और न ही कोणिक, श्रेणिक के विचारों को समझ पाए ।

कल्पना की पाँखों से उड़ान भरते हुए श्रेणिक सोचने लगे, **``अहो ! आज यह कोणिक मेरे खून का प्यासा बना है । परंतु यदि इसने मेरी हत्या की तो इतिहास के पन्नों पर उसका नाम काले अक्षरों में लिखा जाएगा-लोग उसके नाम को धिक्कारेंगे, पितृघातक के रूप में एक कलंक कथा लोकजीभ पर प्रसिद्ध बनेगी...ऐसा न हो इसके लिए क्यों न मैं ही अपने हाथों से आत्म-हत्या कर लूँ ।''**

इतना सोचकर अपने पास में रही हीरे की अँगूठी को चूसकर श्रेणिक ने आत्महत्या कर ली ।

क्षण भर में उसके प्राण पखेरू उड़ गए । उसका मृत देह वहीं पर पड़ा हुआ था ।

चंद क्षणों में ही कोणिक जेल के द्वार पर आ गया । उसने उसी समय हथौड़ों के प्रहार से जेल की बेड़ियों को तोड़ डाला और भागते हुए वह श्रेणिक के पास पहुँच गया ।

परंतु यह क्या !

वहाँ तो श्रेणिक का मृतदेह पड़ा हुआ था । श्रेणिक की आत्मा तो परलोक के लिए प्रयाण कर चुकी थी ।

पिता के निश्चेष्ट देह को देखकर कोणिक के मुँह से लंबी चीख निकल पड़ी । वह कल्पांत रुदन करने लगा ।

परंतु अब क्या हो सकता था !

''अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत'' जैसी स्थिति में से कोणिक प्रसार हो रहा था ।

भागवती दीक्षा

भयंकर ठंडी के दिन थे । चरम तीर्थपति भगवान महावीर प्रभु की देशना श्रवण कर श्रेणिक महाराजा अपनी मुख्य रानी चेलना के साथ रथ में बैठकर अपने राजमहल की ओर लौट रहे थे । उस समय बीच मार्ग में चेलना रानी ने खुले बदन कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े महात्मा को देखा । भयंकर शीत परिषह को अत्यंत ही समतापूर्वक सहन करने हुए महात्मा को देखकर चेलना का मस्तक आदरभाव से झुक गया ।

धीरे-धीरे रथ आगे बढ़ा । श्रेणिक और चेलना रानी राजमहल में पहुँच गए ।

रात्रि के समय अपने शयनखंड में जाने पर भी चेलना रानी के दिमाग में एक मात्र शीत परिषह सहन कर रहे महात्मा का ही विचार घूम रहा था ।

भयंकर ठंडी के कारण चेलनारानी गर्म वस्त्र ओढ़कर सोई हुई थी । अचानक निद्रा में उसका एक हाथ कंबल से बाहर हो गया । थोड़ी देर बाद

ठंडी के कारण चेलना रानी की निद्रा भंग हो गई और उसके मुँह से शब्द निकल पड़े, **``अहो ! उनकी क्या दशा होती होगी ?''** ये शब्द श्रेणिक महाराजा ने सुन लिये ।

श्रेणिक महाराजा को लगा, ``चेलना के हृदय में और कोई बसा है'' उसके दिल में चेलना के पवित्र चरित्र के सम्बन्ध में संदेह पैदा हो गया ।

चेलना के प्रति उसके दिल में धिक्कार की भावना पैदा हो गई । परंतु कुछ भी गलत कदम उठाने के पूर्व उसने थोड़ा धैर्य रखा ।

दूसरे दिन श्रेणिक भगवान महावीर प्रभु के पास पहुँचे । अवसर देखकर श्रेणिक ने प्रभु से प्रश्न किया-

``हे प्रभो ! मेरी महारानी चेलना सती है या असती ?''

भगवान ने कहा, ``हे श्रेणिक ! तेरी महारानी चेलना सती ही नहीं महासती है । रात्रि के समय में उसके मुँह से जो शब्द निकले थे, वे किसी पर पुरुष के राग के कारण नहीं, बल्कि कल बीच मार्ग में भयंकर शीत परिषह को सहन कर रहे जिनकल्पी मुनि के विचार से निकले थे ।

चेलना ने सोचा, ``अहो ! इस ठंडी में मेरा हाथ कुछ क्षणों के लिए कंबल से बाहर रह गया तो उस ठंडी को सहन करना भी मेरे लिए असह्य हो गया तो वे महात्मा खुले बदन इस भयंकर सर्दी को कैसे सहन करते होंगे ? उन महात्मा को धन्य है ।''

शंका का समाधान पाकर श्रेणिक खुश हो गया ।

एक बार महावीर प्रभु की धर्मदेशना से विरक्त बनी चेलना महासती ने प्रभु के पास दीक्षा अंगीकार की ।

निर्मल चारित्र का पालन कर सभी कर्मों का क्षय कर एक दिन चेलना महासती ने शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त किया !

24. महासती रेवती

चरम तीर्थपति भगवान महावीर परमात्मा पृथ्वीतल को पावन करते हुए श्रावस्ती नगरी में पधारे । उस समय श्रावस्ती नगरी में गोशाला भी रहा हुआ था । भगवान महावीर के पास से ही जिसने तेजोलेश्या सीखी थी । अष्टांगनिमित्त के ज्ञान के कारण वह लोगों के मनोगत भावों को जान सकता था । वह स्वयं `जिन' नहीं होते हुए भी अपने आपको `जिन' के रूप में प्रसिद्ध कर रहा था । लोगों में इस प्रकार की ख्याति हो जाने से कुछ अज्ञानी लोग गोशाला को अरिहंत की तरह पूजने लग गए थे ।

एक बार गौतमस्वामी भगवंत अपने छट्ठ तप के पारणे के लिए भिक्षा हेतु श्रावस्ती नगरी में पधारे । लोगों के मुख से जब गौतम स्वामी ने यह सुना कि इसी नगरी में `गोशाला' भी अपने आपको `तीर्थंकर भगवान' के रूप में प्रख्यात कर रहा है तो यह जानकर उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हुआ ।

गोचरी बहोरकर गौतमस्वामी भगवंत भगवान महावीर प्रभु के पास पधारे । पारणा करने के बाद जब प्रभु का समवसरण रचा गया और भगवान महावीर प्रभु देशना देने लगे तब देशना की समाप्ति के बाद नगरजनों के प्रतिबोध के लिए गौतम स्वामी ने भगवान महावीर प्रभु को पूछा, ``हे स्वामिन् !

श्रावस्ती नगरी में 'गोशाला' अपने आप को तीर्थंकर के रूप में प्रसिद्ध कर रहा है, क्या यह बात सत्य है ?''

गौतम स्वामी की इस शंका को निर्मूल करते हुए भगवान महावीर ने कहा, ``हे गौतम ! यह तो मंखली का पुत्र गोशाला है । 'गो-बहुल' ब्राह्मण की गौशाला में पैदा होने के कारण इसका नाम गोशाला रखा गया है । यह वीतराग-सर्वज्ञ नहीं है, परंतु माया और कपट का मंदिर है । इसने पहले मेरे पास दीक्षा ली थी, भवितव्यता के योग से मेरे पास से ही इसने तेजो लेश्या आदि विद्याएँ प्राप्त की थीं । अष्टांगनिमित्त आदि को जानकर अब अपने आपको सर्वज्ञ के रूप में प्रख्यात कर रहा है ।''

भगवान महावीर प्रभु के इन वचनों को सुनकर श्रोताजनों की शंकाएँ निर्मूल हो गयीं । उनका यह भ्रम दूर हो गया कि श्रावस्ती में दो तीर्थंकर विद्यमान हैं ।

लोगों में चारों ओर चर्चाएँ होने लगीं कि श्रावस्ती में जो गोशाला है, वह सर्वज्ञ, तीर्थंकर नहीं है ।

कर्णोपकर्ण यह बात गोशाला तक पहुँची तो वह अत्यंत ही कोपायमान हो गया ।

दूसरे दिन जब आनंद मुनि भिक्षा के लिए श्रावस्ती नगरी में पधारे तो गोशाला ने उन्हें बुलाकर तिरस्कार पूर्ण शब्दों में कहा, ``अरे आनंद ! लोगों से अधिक मान-सम्मान पाने की लालसा से तेरा आचार्य महावीर अपनी सभा में मेरी निंदा करता है । वह मुझे मंखली-पुत्र असर्वज्ञ कहता है । अरे ! उसे यह पता नहीं है कि मेरे पास तेजो लेश्या है । उस तेजो लेश्या से मैं दुश्मन को जला डालने में समर्थ हूँ । याद रखना, मैं उसे उसके परिवार सहित भस्म कर दूंगा ।''

गोशाला के इन वचनों से आनंद मुनि को अत्यंत ही आघात लगा । भिक्षा लिये बिना ही वे मुनि प्रभु के पास आ गए और भगवान को सब बता दिया ।

आनंद मुनि ने प्रभु से पूछा, ``प्रभो ! गोशाला ने जो कहा है कि ``मैं भस्मसात् कर दूंगा'' क्या उसकी यह बात सही है ? क्या उसमें उतनी ताकत है कि वह आपको भी भस्मसात् कर दे ?''

प्रभु ने कहा, ``वह मुझे समाप्त करने में तो समर्थ नहीं है किंतु अनार्य बुद्धिवाला वह अरिहंतों को भी संताप मात्र दे सकता है ।''

``हे आनंद ! तुम गौतम आदि मुनियों को जाकर कह दो कि गोशाला यहाँ आ रहा है...अतः उसके साथ किसी भी प्रकार की चर्चा आदि मत करना ।''

इसी बीच कोपायमान बना हुआ वह गोशाला वहाँ आ गया । क्रोधावेश में प्रभु का भी तिरस्कार करते हुए बोला, ``हे काश्यप ! तुम मुझे मंखली पुत्र बतलाकर झूठ बोल रहे हो, गोशाला नाम का तुम्हारा जो शिष्य था, वह तो मरकर देवलोक में पैदा हो गया है । परिषह और उपसर्गों को सहन करने में समर्थ होने के कारण मैंने उसके शरीर में प्रवेश किया है । मैं उदय नाम का ऋषि हूँ और मैंने अपना देह छोड़ दिया है । तुम मुझे पहिचाने बिना ही मंखली पुत्र गोशाला क्यों कहते हो ? न तो मैं तुम्हारा शिष्य हूँ और न ही तुम मेरे गुरु हो ।''

गोशाला के इन मिथ्या वचनों को सुनकर भगवान महावीर प्रभु ने उसे कहा, **``आरक्षकों से बचने के लिए कोई चोर हाथ में तृण लेकर अपने आपको छिपाना चाहे तो क्या यह संभव है ? कदापि नहीं ! तुम स्वयं ही गोशाला हो । अपने आपको छिपाने के लिए झूठ क्यों बोलते हो ?''**

प्रभु के इन वचनों को सुनकर गोशाला का क्रोध आसमान पर चढ़ गया । वह जैसे-तैसे बकवास करने लगा । उसी समय प्रभु के प्रति तीव्र अनुराग के कारण सर्वानुभूति मुनि बीच में आए और बोले, ``अहो ! जिस गुरु से तुमने दीक्षा और शिक्षा ग्रहण की...उसी को अब छिपाने के लिए तैयार हो गए ? तुम तो वो ही गोशाला हो ।''

...उसी समय क्रोध से रोषायमान हुए गोशाला ने सर्वानुभूति मुनि के ऊपर तेजोलेश्या छोड़ी । उस तेजोलेश्या से सर्वानुभूति मुनि जलने लगे...देह जल रहा था परंतु हृदय में परमात्म-भक्ति की शुभ भावना थी, परिणाम-स्वरूप सर्वानुभूति मुनि कालधर्म प्राप्तकर सहस्त्रार नामक आठवें देवलोक में देव बने ।

अपनी तेजोलेश्या की शक्ति से गर्विष्ठ बने गोशाला ने पुनः बकवास करना प्रारंभ कर दिया ।

उसी समय प्रभु के शिष्य सुनक्षत्र मुनि प्रभु की निंदा को सहन नहीं कर सकने के कारण गोशाला को समझाने लगे परंतु उसने उनके ऊपर भी तेजोलेश्या छोड़ दी ।

तेजोलेश्या से जलते हुए शरीरवाले सुनक्षत्र मुनि ने प्रभु को तीन प्रदक्षिणा दी । तत्पश्चात् पुनः व्रतों को स्वीकार कर पापों की आलोचना और समस्त जीवों के साथ क्षमापना कर अत्यंत ही समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए और अच्युत कल्प में देव बने ।

पुनः वह गोशाला प्रभु के सामने जैसे-तैसे बकवास करने लगा ।

प्रभु ने उसे समझाने की कोशिश की । प्रभु ने कहा, ``तुम्हारी बुद्धि का यह कैसा विपर्यास है ?''

साँप को दूध पिलाने की भाँति अयोग्य आत्मा को दिया गया हितोपदेश भी लाभ के बदले नुकसान का ही कारण बनता है । बस, उसी समय उस अपात्र गोशाला ने प्रभु के ऊपर तेजो लेश्या छोड़ी ।

आँधी और तूफान जिस प्रकार पर्वत को उखाड़ने में असमर्थ होते हैं, उसी प्रकार वह तेजो लेश्या भी प्रभु को समाप्त करने में समर्थ नहीं बन पाई । प्रभु को तीन प्रदक्षिणा देकर वह तेजो लेश्या गोशाला के मुख में प्रवेश कर गई ।

भीतर से जल रहे उस गोशाला ने प्रभु को कहा, ``हे काश्यप ! मेरी इस तेजोलेश्या के प्रभाव से पित्त व ज्वर से परेशान होकर छह मास में ही छद्मस्थ अवस्था में ही मर जाओगे ।''

उसी समय प्रभु ने कहा, ``हे गोशाला ! तुम्हारी वाणी मिथ्या है...अभी मैं 16 वर्ष तक इस पृथ्वी पर केवली अवस्था में विचरण करूंगा । और तुम तो अपनी ही इस तेजोलेश्या से पित्त व ज्वर से पीड़ित होकर सातवें दिन मर जाओगे, इसमें कोई संदेह नहीं है ।''

तत्पश्चात् अत्यंत दुःखी बना गोशाला वहाँ से निकल गया । तेजोलेश्या के प्रभाव से उसके देह में भयंकर पीड़ा होने लगी । बीच मार्ग में उसकी अनुयायी हालाहला नामक कुँभारिन का घर आया । तीन-चार दिन वहीं पर रहा । उसके दाह की पीड़ा बढ़ती ही गई ।

गोशाला के हाथ में मद्य का पात्र आ गया तो उसने मद्य भी पी लिया वह उन्मत्त की तरह प्रलाप करने लगा । नशा उतरने पर बोला, ``हे शिष्यो ! मेरी मृत्यु के बाद मुझे स्नान कराना, मेरे शरीर पर विलेपन करना, मेरे शरीर को उत्कृष्ट वस्त्रों तथा अलंकारों से अलंकृत करना । उसके बाद हजार पुरुषों के द्वारा वहन की जानेवाली शिविका में मेरे देह को स्थापित करना और

बड़े महोत्सव पूर्वक मुझे नगर में घुमाना । उसके बाद ``इस अवसर्पिणी के 24वें तीर्थंकर गोशाला मोक्ष गए हैं ।'' इस प्रकार की उद्घोषणा करना ।''

शिष्यों ने उसकी बात स्वीकार की । इस प्रकार छह दिन बीत गए । ``जैसी गति वैसी मति'' के नियमानुसार 7वें दिन स्वतः उसका हृदय परिवर्तित हो गया । उसे अपने पाप का घोर पश्चात्ताप होने लगा ।

वह सोचने लगा, **``अहो ! मैं कितना पापी हूँ ! अपने धर्मगुरु की ही मैंने घोर आशातना की । अपने आपको सर्वज्ञ बतलाकर मैंने अनेक लोगों को ठगा । अहो ! मैंने अपनी तेजोलेश्या द्वारा दो निर्दोष महात्माओं को जला दिया और प्रभु पर भी तेजोलेश्या छोड़ दी । थोड़े दिनों में मैंने यह कैसा अकार्य कर दिया ? नरकगति के योग्य मैंने पाप बाँध लिये । अहो ! मैंने मात्र अपनी आत्मा को ही नरक में नहीं धकेला...अनेक लोगों को भी उन्मार्गगामी बनाकर, उनका भी पतन करा दिया ।**

पश्चात्ताप से भरे हृदयवाले गोशाला ने उसी समय अपने शिष्यों को बुलाकर कहा, ``हे शिष्यो ! सुनो ! मैं अरिहंत नहीं हूँ...मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूँ । मैं तो मंखली पुत्र गोशाला हूँ । जिस प्रकार अग्नि, आश्रय देनेवाले को ही जलाती है, उसी प्रकार मैं भी गुरुद्रोही हुआ हूँ । इतने काल तक मैंने लोगों को ठगा है । अपनी तेजोलेश्या से छद्मस्थ अवस्था में ही मर जाऊंगा । अतः जब मेरी मृत्यु हो जाय तो मेरे बाएँ पैर को डोरी से बाँधकर मुझे नगर में घुमाना । मेरे मुख पर थूकना और आम मार्गों पर यह घोषणा करना कि यह ही मंखली-पुत्र गोशाला है, इसने प्रजाजनों को ठगा है । मुनिहत्यारा है, सर्वज्ञ नहीं है, दोषों का भंडार है...सर्वज्ञ तो वीर भगवान ही हैं, वे तो करुणा के महासागर हैं ।''

गोशाला ने अपने शिष्यों को शपथपूर्वक उपर्युक्त बातें करने की आज्ञा दी और शिष्यों ने यह बात स्वीकार भी की ।

तत्पश्चात् गोशाला की मृत्यु हो गई । उसके शिष्यों ने गोशाला को दिये वचन के पालन के लिए कुँभार के घर के दरवाजे को बंद कर दिया और उसी भूमि पर श्रावस्ती की रचना कर सब कुछ कर दिया और फिर बड़े ही आडंबर के साथ उसकी अंतिम विधि की ।

महावीर प्रभु ने भी वहाँ से विहार कर दिया । गौतम स्वामी ने पूछा, ``प्रभो ! गोशाला मरकर कहाँ गया !''

प्रभु ने कहा- 12 वें देवलोक में ।

``कैसे !''

``अंतिम समय में हुए तीव्र पश्चात्ताप के कारण ।''

तीर्थंकर व गुरुद्रोह के पाप के कारण वह गोशाला अनंत काल तक इस संसार में भटकेगा, उसके बाद वह मोक्ष में जाएगा ।

चरम तीर्थपति भगवान महावीर प्रभु के एक शिष्य थे सिंह अणगार ! वे आत्मा-साधना व कर्मनिर्जरा के लिए एकांत वन में साधना कर रहे थे । उस जंगल में से प्रसार होते हुए लोग परस्पर बातचीत करने लगे ।

``गोशाला ने भगवान महावीर के ऊपर भयंकर तेजोलेश्या फेंकी है, उस तेजोलेश्या के प्रभाव से प्रभु का देह निस्तेज हो रहा है । हाँ ! उस तेजोलेश्या के प्रभाव से महावीर प्रभु जलकर समाप्त तो नहीं हुए किंतु उन्हें भी खून की दस्तें चालू हो गई हैं...अब प्रभु छह मास से अधिक नहीं जी पाएंगे ।''

वार्तालाप के ये शब्द सिंह अणगार के कानों में पड़े...और वे भी माँ के वियोग में तड़पते बालक की भाँति करुण क्रंदन करने लगे । उनकी आँखों से श्रावण-भादों की वृष्टि होने लगी । प्रभु के वियोग की कल्पना ही उनके लिए असह्य थी...उनके शोक का पार न रहा ।

भगवान महावीर प्रभु ने अपने केवलज्ञान के प्रकाश में सिंह अणगार की इस करुण स्थिति को देखा । तत्काल प्रभु ने दो मुनियों को भेजकर सिंह अणगार को अपने पास बुला लिया ।

प्रभु के निस्तेज देह को प्रत्यक्ष देखकर सिंह अणगार की पीड़ा अत्यधिक बढ़ गई ।

उसी समय अत्यंत मधुरवाणी में प्रभु ने कहा, ``सिंह ! तू इतना संताप क्यों करता है ?''

``प्रभो ! आपको इतनी अधिक पीड़ा ? आपकी पीड़ा मुझ से देखी नहीं जा रही है ।''

प्रभु ने कहा, ``सिंह ! तू ने लोकमुख से सुना है कि छ मास में मेरी मृत्यु हो जाएगी । वह गलत बात है । अभी मेरा 16 वर्ष का आयुष्य बाकी है । तीर्थंकर हमेशा अपने पूर्ण आयुष्य को भोगकर निर्वाण पाते हैं । भयंकर उपसर्ग भी उनके आयुष्य में हानि नहीं कर सकते हैं ।''

``प्रभो ! आपकी बात यथार्थ है, किंतु आपकी पीड़ा मुझ से देखी नहीं जा रही है, अतः आप मेरी शांति के लिए भी औषध का सेवन करें ।''

सिंह अणगार की इस प्रार्थना को सुनकर प्रभु ने कहा, **''सिंह ! इस नगर में रेवती नाम की श्राविका है । उसने मेरे लिए कुष्मांड़ (कोला) का कटाह बनाया है, वह मत लेना, किंतु उसने अपने स्वयं के लिए बीजोरा का पाक बनाया है, वह तुम ले आना, उसे मैं औषध के रूप में ग्रहण करूंगा, जिससे तुझे धैर्य होगा ।''**

प्रभु के इन वचनों को सुनकर सिंह अणगार के आनंद का पार न रहा । उनका हृदय खुशी से नाच उठा । वे तत्काल रेवती श्राविका के वहाँ पहुँचे और बोले, ``धर्मलाभ !''

श्राविका ने कहा, ``पधारो ! पधारो !''

आगमन का कारण पूछने पर सिंह अणगार ने कहा, ``रेवती ! तू ने प्रभु के लिए जो पाक बनाया है उसे छोड़, स्वयं तेरे लिए जो पाक बनाया है, उसका खप है ।''

रेवती श्राविका ने उस समय अत्यंत बहुमानपूर्वक चढ़ते परिणाम से सिंह अणगार को वह पाक बहोराया, तीव्र भावोल्लास के कारण दान देते-देते रेवती श्राविका ने तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जित किया ।

उसी समय देवताओं ने पंच दिव्य प्रगट किये । आकाश से स्वर्ण व पुष्पों की वृष्टि हुई । आकाश में देवदुंदुभि का नाद हुआ और **''अहो दानं अहो दानं''** की घोषणा हुई ।

सिंह अणगार औषध लेकर प्रभु के पास आए । प्रभु ने वह औषध स्वीकार किया । उस औषध के प्रभाव से प्रभु नीरोग हो गए । प्रभु को पुनः पूर्ण स्वस्थ देख सिंह अणगार के आनंद का पार न रहा ।

औषध दान के प्रभाव से रेवती आगामी चौबीसी में **'समाधि'** नाम के 17वें तीर्थंकर बनेगी ।

25. महासती कुंती

- पाँच पांडवों की माता बनने का
  परम सौभाग्य जिसे प्राप्त हुआ
  ऐसी महासती कुंती का जीवन भी
  अनेकविध उतार-चढ़ावों से
  भरा हुआ है ।
- ***पापकर्म के उदय से आए***
  भयंकर कष्टों को भी उसने
  समता-समाधि पूर्वक सहन किया ।
- सारी दुनिया
  दुःख और कष्टों से दूर भागती है,
  जबकि
  महासती कुंती प्रभु के पास
  'विपदः सन्तु मे सदा',
  मेरे ऊपर आपत्ति सदा बनी रहो,
  इस प्रकार की प्रार्थना करती है ।
- **सचमुच,**
  आपत्ति तो हमें प्रभु के समीप ले जाती है,
  जबकि
  संपत्ति तो हमें प्रभु से दूर करती है ।
  आपत्ति और संपत्ति के मर्म को समझे बिना
  हम आपत्ति से घबराते हैं और
  संपत्ति की प्राप्ति में खुश होते हैं ।

26. महासती द्रौपदी

卐 पूर्व भव में किए गए
नियाणे के फलस्वरूप
द्रौपदी के पाँच पति हुए-फिर भी
महासतियों में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

卐 ***पूर्व भव में बँधे हुए***
शुभ-अशुभ कर्मों के फलस्वरूप
उसके जीवन में
अनेक उतार-चढ़ाव आए,
परंतु
भयंकर कष्टों में भी वह
अपने शीलधर्म से च्युत नहीं हुई ।

卐 राजमहलों के सुख भी देखे तो
जंगल के भयंकर कष्ट भी देखे ।
अंत में
मोह-माया के बंधनों को तोड़कर
साध्वी जीवन को स्वीकार किया ।
देवगति को प्राप्त द्रौपदी
भविष्य में
मानवभव प्राप्त कर
शाश्वत अजरामर
मोक्ष-पद प्राप्त करेगी ।

25-26. महासती कुंती और द्रौपदी

अतिकामासक्त पुरुष अपनी संतान को भी निर्बल बनाता है । विचित्रवीर्य की तीनों पत्नियाँ गर्भवती हुईं ।

सर्वप्रथम अम्बिका ने पुत्र को जन्म दिया, जो जन्म से ही अन्धा था, जिसका नाम **धृतराष्ट्र** रखा गया ।

उसके बाद अम्बालिका ने पुत्र को जन्म दिया, जो पांडुरोग से ग्रस्त था, उसका नाम **पांडु** रखा गया ।

फिर अम्बा ने भी पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम **विदुर** रखा गया ।

कामावेग के कारण विचित्रवीर्य की मृत्यु हो गई ।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आने वाले सुख-दुःख के मुख्य कारण तो व्यक्ति के कर्म ही होते हैं, परन्तु उन कर्मों पर निमित्तों का भी असर होता है । विचित्रवीर्य की अतिकामासक्ति के कारण उसकी एक सन्तान अन्धी हुई और एक सन्तान पांडुरोग से ग्रस्त बनी । जो स्त्री अथवा पुरुष अत्यन्त कामी होता है, उसकी संतानें भी प्रायः अत्यन्त कामी व निर्बल होती हैं ।

पांडु राजा बना

विचित्रवीर्य की अकालमृत्यु से सभी को अत्यन्त दुःख हुआ । गांगेय भीष्म की तो अब शांतिमय जीवन व्यतीत करने की भावना थी, परन्तु विचित्रवीर्य की अकालमृत्यु से उस पर राज्य की भी जवाबदारी आ पड़ी ।

गांगेय ने धृतराष्ट्र आदि तीनों पुत्रों को अच्छा शिक्षण दिया । धृतराष्ट्र आदि भी कुछ बड़े हो गए थे ।

गांगेय ने धृतराष्ट्र को राज्य ग्रहण करने के लिए कहा । परन्तु धृतराष्ट्र ने कहा, ***''मैं राज्य के लिए योग्य नहीं हूँ । राज्य के लिए हर प्रकार से पांडु ही योग्य है, अतः उसका राज्याभिषेक किया जाय ।''***

धृतराष्ट्र की इस उदारता को सुनकर भीष्म अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने एक शुभ दिन पाण्डु का राज्याभिषेक कर दिया ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

पांडु की ओर से भीष्म राज्य की समस्त व्यवस्था का संचालन करने लगे । न्याय व नीतिपूर्वक राज्य संचालन होने से प्रजा भी अत्यन्त प्रसन्न थी ।

कुन्ती पर मोहित पाण्डु

एक दिन गांधारदेश का अधिपति शकुनि हस्तिनापुर आया और भीष्म से मिला । शकुनि के गांधारी आदि आठ बहनें थीं । शकुनि ने भीष्म से विनती की-``मैं अपनी बहनों का लग्न धृतराष्ट्र से करना चाहता हूँ ।'' शकुनि की यह बात सुनकर भीष्म खुश हो गए...और उन्होंने लग्न के लिए प्रेम से सहमति दे दी ।

एक शुभ दिन धृतराष्ट्र और गांधारी आदि आठ कन्याओं का विधि पूर्वक लग्न हो गया ।

एक बार भीष्म और पांडु दोनों नगर में घूमने के लिए निकले । एक अज्ञात व्यक्ति हाथ में एक चित्रपट लेकर आ रहा था । अचानक पांडु की दृष्टि उस चित्र पर पड़ी । चित्र में आलेखित कन्या के अद्‌भुत रूप को देखकर पांडु स्तब्ध हो गया । सोचने लगा-``यह कोई देवकन्या है ? या नागकन्या है ? या कोई मानुषी ? ऐसा अद्‌भुत रूप केवल कल्पना से चित्रित है अथवा वास्तविक है ?''

भीष्म ने देखा–चित्र को देखकर पांडु एकदम मोहित हो गया है । भीष्म ने उस अज्ञात पुरुष को राजमहल में बुलाया और पूछा, ``यह जो चित्रपट है, उस पर चित्रित रूप किसका है ?''

उस अज्ञात व्यक्ति ने चित्र में अंकित कन्या का परिचय देते हुए कहा-``यमुना नदी के तट पर मथुरा नाम की नगरी आई हुई है । उस नगरी में `यदु' नाम का राजा था । उस राजा के नाम से ही `यादव' वंश की उत्पत्ति हुई । उस राजा के दो पुत्र थे-शौरि और सुवीर । राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र का राज्याभिषेक किया और छोटे भाई को युवराज के पद पर स्थापित किया और स्वयं ने गृहवास का त्याग कर आत्मकल्याण किया ।

शौरि और सुवीर के बीच अत्यन्त प्रेम था । शौरि ने मथुरा का राज्य सुवीर को सौंप दिया और स्वयं ने कुशावर्त देश में `शौर्यपुर' नगर की स्थापना की ।

शौरि के अन्धकवृष्णि आदि अनेक पुत्र हुए । अन्त में अन्धकवृष्णि को राज्य सौंपकर शौरि ने दीक्षा स्वीकार की और अपनी आत्मा का कल्याण किया ।

अन्धकवृष्णि राजा बना । सुभद्रा उसकी महारानी थी । सुभद्रा ने दस पुत्रों को जन्म दिया-1. समुद्रविजय 2. अक्षोभ्य 3. सागर 4. हिमवान 5. अचल 6. धरण 7. पूरण 8. अभिचन्द 9. वसुदेव और 10. स्तिमित ।

ये दस पुत्र दस दिक्पालों की भाँति अन्धकवृष्णि का महत्त्व बढ़ा रहे थे । इन दस पुत्रों के बाद सुभद्रा ने क्रमशः दो कन्याओं को जन्म दिया-(1) कुन्ती और (2) माद्री ।

धीरे-धीरे दस पुत्रों के साथ-साथ वह कुन्ती भी बड़ी होने लगी । यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के बाद अन्धकवृष्णि को उसके वर की चिन्ता सताने लगी ।

अन्धकवृष्णि ने समुद्रविजय को पूछा-``बेटा ! इस कुन्ती के लिए योग्य वर कौन होगा ?''

समुद्रविजय ने कहा-``कुन्ती के लिए स्वयंवर बुलाने में तो राजकुमारों के बीच परस्पर कलह होगा । अतः उसके योग्य वर के लिए कुन्ती के रूप को चित्रित कर दूर-दूर देशों में दूत को भेजा जाय तो अवश्य ही कुन्ती के अनुरूप योग्य वर की प्राप्ति हो सकती है ।''

समुद्रविजय की बात अन्धकवृष्णि के गले उतर गई और उन्होंने तुरन्त ही चित्रकार द्वारा कुन्ती का भव्य चित्र बनवाकर मुझे बुलाया और कहा- ``हे कोरक ! तू इस चित्रपट को लेकर दूर-दूर देशों में जा और कुन्ती के अनुरूप योग्य वर को शोधकर ला ।''

महाराजा की आज्ञा सुनकर उस चित्रपट को लेकर अनेक राज्यों में घूमते हुए यहाँ आया हूँ । इस चित्र में अंकित कन्या कुन्ती है । जिस प्रकार पांडु ने अपने रूप द्वारा कामदेव को जीत लिया है, उसी प्रकार कुन्ती ने अपने रूप द्वारा रति को भी परास्त कर दिया है ।

कोरक की यह बात सुनकर भीष्म और पांडु दोनों खुश हुए । भीष्म ने एक चित्रपट पर पांडु का रूप अंकित करवाया और उसे एक दूत को देकर कोरक के साथ मथुरा भेजा ।

पांडु का कुन्ती से मिलन के लिए प्रयास

`कोरक' धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ मथुरा आया और उसने अन्धकवृष्णि को सब बातें सुना दीं । कोरक ने कहा-``हस्तिनापुर से गांगेय ने यह दूत भी भेजा है, आपको जो उचित लगे, आज्ञा फरमाएँ ।''

राजा ने कहा-``ठीक बात है, सोच-विचार कर कल निर्णय करूंगा ।''

इधर कुन्ती ने पांडु राजा के रूपादि गुणों की प्रशंसा सुनी । तुरन्त ही उसका मन पांडु के प्रति मोहित हो गया । वह पांडु से मिलने के लिए उत्कण्ठित हो गई ।

दूसरे दिन कोरक के साथ भीष्म का दूत भी राजसभा में आया ।

अन्धकवृष्णि ने कहा-``मैंने सुना है कि तुम्हारा राजा पांडु, पांडु के रोग से ग्रस्त है, अतः मैं अपनी कन्या पांडु को देने में असमर्थ हूँ ।''

भीष्म का दूत इस बात को सुनकर अत्यन्त निराश हो गया । वह हस्तिनापुर की ओर आगे बढ़ा और उसने जाकर सब घटना भीष्म और पांडु को सुना दी ।

दूत की बात सुनकर भीष्म मौन हो गए ।

पांडु ने दूत से पूछा-``कुन्ती को मेरे प्रति प्रेम था या नहीं ?''

दूत ने कहा-``राजन् ! जब कोरक ने राजा के सामने आपके रूपादि गुणों का वर्णन किया, तब कुन्ती के मुख पर मुझे अत्यन्त ही प्रसन्नता दिखाई

दी, वह आपके रूपादि गुणों को सुनने के लिए अत्यन्त ही आतुर मन वाली और उत्साही दिखाई दी...मैंने उसके बाह्य हावभाव को देखकर कहा है, बाकी तो उसके मन की बात मैं कैसे कह सकता हूँ ?''

दूत की यह बात सुनकर पांडु मन ही मन सोचने लगा-``मुझे कुन्ती की प्राप्ति कैसे होगी ?''

पांडु के मन में कुन्ती की छवि स्थिर हो गई थी। वह उसे पाने के लिए लालायित हो उठा, परन्तु उसे कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। आखिर वह अपना मन बहलाने के लिए एक उद्यान की ओर आगे बढ़ा और उद्यान में जाकर इधर-उधर टहलने लगा। अचानक उसकी नजर खेर के वृक्ष पर पड़ी। उसने देखा, एक मनुष्य बेभान हालत में उस झाड़ से बँधा हुआ है और उसके हाथों में कीलें लगा दी गई हैं।

उस अज्ञात मनुष्य की यह हालत देखकर पांडु का मन दया से भर आया। वह तुरन्त ही उसके पास गया और शीघ्र ही उसके बन्धन दूर करने लगा। उसके हाथों में लगी कीलें बाहर निकाल दीं और घाव के स्थान में संरोहिणी औषधि भर दी। पांडु ने उसके देह पर जल का छिड़काव किया। थोड़ी ही देर में वह मनुष्य होश में आने लगा।

पांडु ने पूछा-``तुम कौन हो और तुम्हारी यह दशा किसने की है ?''

उसने कहा-``मैं वैताढ्य पर्वत पर आए हुए हेमपुर नगर का राजा विशालाक्ष नाम का विद्याधर हूँ। थोड़े समय पूर्व मैं घूमने के लिए निकला था। उसी समय मेरे दुश्मन ने आकर इस वृक्ष से मुझे बाँध दिया और मेरे हाथों में कीलें लगा दी। इस पीड़ा के कारण मैं बेहोश हो गया था।

``आप मेरे महान् उपकारी हो, आपने मुझे बन्धनों से मुक्त कर नवजीवन प्रदान किया है, मैं आपके उपकार को कभी नहीं भूलूंगा।''

कृतज्ञ होने से उस विद्याधर ने पांडु को कहा-``आप कौन हैं और मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?''

विद्याधर की बात सुनकर पांडु राजा ने कहा, ``मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, आप जाकर निश्चिन्त होकर प्रजा का पालन करो।''

विद्याधर ने कहा-``आपके मुख पर उदासीनता दिखाई दे रही है, अतः मुझे अपने दुःख का कारण कहो, मैं अपनी शक्ति अनुसार आपकी सहायता करूंगा।''

विद्याधर की आग्रह भरी विनती सुनकर पांडु ने कुन्ती की प्राप्ति के लिए सहायता करने की बात कही ।

विद्याधर ने कहा-``मेरे पास विद्या अधिष्ठित मुद्रिका है । यह मैं आपको देता हूँ, इसके प्रभाव से आप इच्छानुसार गमनागमन कर सकोगे और अपने आपको अदृश्य भी रख सकोगे ।'' इतना कहकर विद्याधर ने वह मुद्रिका पांडु को दे दी और स्वयं आकाशमार्ग से अपने नगर की ओर चल पड़ा ।

कुन्ती का आत्महत्या के लिए प्रयास

अन्धकवृष्णि ने भीष्म के दूत को स्पष्ट कह दिया था कि पांडुरोग से ग्रस्त होने के कारण मैं अपनी कन्या पांडु को देने में असमर्थ हूँ । ये समाचार ज्योंही कुन्ती ने सुने, उसके दुःख का पार न रहा । उसका मुख विषादग्रस्त हो गया । उसे किसी भी पदार्थ में आनन्द नहीं रहा । चन्दन के लेप या फूलों की सुगन्ध भी उसके मन को बहलाने में अब असमर्थ थी ।

अहो ! कुन्ती का यह कैसा राग है ! जिसका मुख भी नहीं देखा, मात्र नाम व वर्णन ही सुना है, उसके प्रति भी कितनी राग वाली बन गई ! जन्म-जन्मान्तरों के राग के संस्कार आत्मा में पड़े हुए हैं, जिसके कारण एक अज्ञात व्यक्ति के प्रति भी इतना राग पैदा हो जाता है ।

वैभवी वातावरण के बीच में कुन्ती को अपना जीवन एकदम शून्यसा प्रतीत होने लगा, उसे किसी भी पदार्थ / विषय में आनन्द नहीं आ रहा था । उसने बड़ी कठिनाई से दिन प्रसार किया, परन्तु रात्रि प्रसार करना उसके लिए अत्यन्त ही असह्य हो गया, अतः वह रात्रि में ही अपनी धायमाता के साथ उद्यान में आई और इधर-उधर घूमने लगी ।

उसने सोचा-**``इस प्रकार भारभूत जीवन जीने के बजाय तो मौत को भेंटना ही श्रेयस्कर है ।''** इस प्रकार विचार कर धायमाता को पुष्प लाने के लिए दूर भेजकर, स्वयं अशोकवृक्ष के नीचे आत्महत्या करने के लिए गले में फन्दा डालकर बोली-

``हे वनदेवताओ ! इस जीवन में अब पांडु-पति की संभावना दिखाई नहीं देती है...परन्तु आगामी भव में मेरा पति पांडु ही हो, अतः मैं अपनी जीवन-लीला समाप्त करती हूँ ।''

मोह का आवेग भयंकर है

मोह का आवेग अत्यन्त भयंकर होता है, वह व्यक्ति को भान भुलाता है। कर्तव्य-अकर्तव्य से भ्रष्ट करता है। मोह के आवेग से सोचने-समझने की दृष्टि नष्ट हो जाती है।

पांडु और कुन्ती दोनों मोह के अधीन थे। इसी कारण कुन्ती आत्म-हत्या का प्रयास कर अमूल्य मानव-जीवन को क्षणिक सुखों की प्राप्ति के लिए हारने को तैयार हो गई।

पांडु का आगमन

कुन्ती ज्योंही गले में फन्दा डालकर आत्महत्या की तैयारी कर रही थी, त्योंही विद्याधरप्रदत्त अँगूठी के प्रभाव से पांडु उसी रात्रि में, उस उद्यान में आकाशमार्ग से आ गया और सर्वप्रथम उसने अपनी तलवार के प्रहार से पाश को छेद कर कुन्ती को फन्दे से मुक्त कर दिया।

अज्ञात व्यक्ति की अचानक उपस्थिति और पाशछेद को देखकर कुन्ती के आश्चर्य का पार न रहा।

कुन्ती ने कहा-``आप कौन हैं ?'' पांडु ने कहा-``मैं हस्तिनापुर का राजा पांडु हूँ।''

पांडु का नाम सुनते ही कुन्ती के आश्चर्य का पार न रहा। सोचने लगी-``क्या यह सच है ! कहीं यह स्वप्न तो नहीं है ?''

सचमुच अपनी आँखों के सामने अपने प्राणप्यारे प्रियतम को देखकर वह एकदम लज्जित हो गई। तभी धायमाता भी वहाँ आ गई। उसने पांडु को पहिचान लिया। उसी समय धायमाता ने पांडु और कुन्ती का गान्धर्व विधि से लग्न करा दिया।

रात्रि व्यतीत कर पांडु पुनः अँगूठी के प्रभाव से हस्तिनापुर आ गया और अपने राज्यकार्य में डूब गया।

बालक का त्याग

दैवयोग से जिस रात्रि में पांडु और कुन्ती का मिलन हुआ, उस रात्रि में कुन्ती को गर्भ रह गया। धीरे-धीरे वह गर्भ बड़ा होने लगा। पांडु के मिलन

की बात एकमात्र धायमाता ही जानती थी, अतः अपनी पुत्री की इज्जत बचाने के लिए उसने हर तरह से कुन्ती को गुप्त रखा । धीरे-धीरे समय बीता । गर्भ के प्रभाव से कुन्ती को शुभ दोहद पैदा होने लगे । गर्भ के प्रभाव से वह इन्द्र के बल को भी तृण तुल्य गिनने लगी । गर्भ-प्रभाव से उसकी उदारवृत्ति बढ़ गई, बहुत कुछ दान करने पर भी उसे सन्तोष नहीं होता था ।

नौ मास बीतने पर कुन्ती ने एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया । धायमाता ने यह सब बात गुप्त ही रखी । पुत्र को देखकर किस माता को आनन्द नहीं होता ? परन्तु आज कुन्ती के सामने बड़ी समस्या थी-उसकी इज्जत का सवाल था, अतः वह सोचने लगी कि इस पुत्र का क्या किया जाय ?

आखिर धायमाता के साथ विचारविमर्श कर वह बालक को लेकर गंगा किनारे आई और उसने मणि के कुंडल से सुशोभित पुत्र को पेटी में बन्द कर नदी के प्रवाह में डाल दिया । पेटी नदी में बहा तो दी...परन्तु उसके साथ ही पुत्र-वियोग में कुन्ती ने अपार वेदना का अनुभव किया ।

पांडु-कुन्ती का लग्न

पुत्रवियोग और पांडुवियोग से कुन्ती के चेहरे पर उदासीनता बढ़ती जा रही थी । माँ सुभद्रा ने देखा, कुन्ती को किसी भी कार्य में आनन्द क्यों नहीं आ रहा है ? आखिर क्या कारण है ?

उसने धायमाता को पूछा । आखिर धायमाता ने वह सब घटना सुभद्रा को कह दी ।

सुभद्रा ने सोचा-``कुन्ती की एक भूल हो गई है...तो अब इस भूल को सुधारने के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए । उसने वह बात अपने पति अन्धकवृष्णि को कही । अन्धकवृष्णि ने सोचा-कुन्ती को पांडु के प्रति प्रेम है तो उसका लग्न उसी के साथ कर देना अच्छा है । इस प्रकार विचार कर उसने अपने पुत्र धरण को बुलाया और कुन्ती का लग्न पांडु राजा के साथ कराने की आज्ञा फरमा दी ।

धरण कुन्ती को लेकर हस्तिनापुर आया । भीष्म और पांडु को इस बात के समाचार मिले, उनके आनन्द का पार न रहा । शुभ दिन और शुभ घड़ी में पांडु और कुन्ती का लग्न हो गया ।

कुछ समय बाद विदुर का भी लग्न देवकराज की पुत्री कुमुदवती के साथ हो गया ।

धृतराष्ट्र आदि तीनों भाइयों के लग्न हो चुके थे । तीनों भाइयों में परस्पर प्रेम था ।

इधर कुछ समय बाद अन्धकवृष्णि ने अपनी दूसरी पुत्री माद्री का भी लग्न पांडु के साथ करा दिया ।

कुनिमित्तों से बचें

अनादिकाल से आत्मा में कुसंस्कार तो पड़े हुए ही हैं । खराब निमित्त मिलते ही वे संस्कार तुरन्त जाग्रत हो जाते हैं । कुनिमित्तों के कारण अच्छे-अच्छे त्यागी व तपस्वियों का भी पतन हो गया है । महात्मा नन्दिषेण, लब्धिधर आषाढ़भूति...सिंहगुफावासी मुनि आदि अनेक साधकों का पतन अशुभ निमित्तों के कारण ही हो गया था । अतः अपनी आत्मा के रक्षण के लिए अशुभ निमित्तों से दूर रहना अत्यन्त आवश्यक है । अशुभ संस्कार चिनगारी के समान हैं और अशुभ-निमित्त घासलेट व पेट्रोल के समान हैं । घासलेट मिलते ही जैसे आग भड़क उठती है, उसी प्रकार अशुभ निमित्तों को पाकर अशुभ संस्कार तीव्र बन जाते हैं और आत्मा पतित हो जाती है ।

गर्भ के अशुभ निमित्त के कारण ही गान्धारी के जीवन में निर्दयता / कठोरता आई थी ।

कुन्ती गर्भवती बनी

गान्धारी पहले गर्भवती बनी होने के कारण वह कुन्ती का अपमान और तिरस्कार करने लगी । अब धीरे-धीरे कुन्ती को भी पुत्र की स्पृहा सताने लगी, वह धर्म-ध्यान में अधिक लीन बनने लगी ।

गान्धारी से ईर्ष्या करने के बजाय कुन्ती परमात्म-भक्ति, जीव-दया आदि की प्रवृत्ति में अधिक रस लेने लगी । पुण्यप्रभाव से कुन्ती भी गर्भवती हुई और उसने एक रात्रि में सागर, मेरु, सूर्य, चन्द्र और लक्ष्मी को स्वप्न में देखा ।

प्रातःकाल में उसने अपने स्वप्न पांडु को कहे । स्वप्न सुनकर पांडु खुश हो गए । कुन्ती धीरे-धीरे गर्भ को वहन करने लगी । उस गर्भ के प्रभाव

से उसे अच्छे दोहद होने लगे । गर्भप्रभाव से जिनधर्म के प्रति उसका प्रेम बढ़ने लगा । समस्त नगर में अमारि की घोषणा और कैदियों को बन्धन से मुक्त कराने की इच्छा पैदा हुई । जिनमन्दिरों में परमात्मा की भव्य अंग- रचना आदि सभी दोहद पांडु राजा ने पूर्ण किये ।

पुत्र-जन्म व देव-वाणी

गर्भकाल पूर्ण होने पर कुन्ती ने शुभ योग में एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । दासी ने जाकर सत्यवती आदि को समाचार दिये । सभी ने प्रसन्न होकर दासी को पुरस्कृत किया ।

तभी आकाश में इस प्रकार देव-वाणी हुई-

असौ सत्यवतां मुख्यः, सतामग्र्य समग्रधीः ।
शौण्डीर्यस्थैर्यगाम्भीर्यवसतिर्विनयी नयी ।।1।।
धर्मबद्धरतिर्भूपः सार्वभौमो भविष्यति ।
वार्द्धके व्रतमादाय निर्वाणं च गमिष्यति ।।2।।

अर्थ : यह बालक सत्यवादियों में अग्रेसर बनेगा, सज्जनों में अग्रणी रहेगा । बहुश्रुत और विद्वान् होगा । पराक्रम-स्थिरता और गम्भीरता का घर होगा । अत्यन्त ही विनयी और न्यायप्रिय होगा । धर्म में रति वाला होगा । सार्वभौम राजा बनेगा...और वृद्धावस्था में दीक्षा स्वीकार कर निर्वाण पद प्राप्त करेगा ।

इस आकाशवाणी को सुनकर भीष्म आदि सभी को अत्यन्त ही आनन्द हुआ । राजा ने हर्षोल्लास के साथ पुत्र का जन्म महोत्सव किया । नगरवासियों ने राजा को पुत्र-जन्म की बधाई दी । बारहवें दिन भीष्म पितामह ने उस बालक का नाम युधिष्ठिर रखा । तप के प्रभाव से पुत्र की प्राप्ति होने के कारण बालक का दूसरा नाम **'धर्मपुत्र'** रखा गया ।

युधिष्ठिर जैसे पुत्ररत्न को जन्म देने के बाद कुन्ती अधिकाधिक धर्माभिमुख बनी । कुन्ती ने नासिक में एक भव्य जिन-मन्दिर का निर्माण करवाया । गृहस्थ के लिए परमात्मा का मन्दिर अनेकविध प्रेरणाओं का स्त्रोत बनता है ।

धर्म और पुण्य के प्रभाव से कुन्ती पुनः गर्भवती बनी । कुन्ती ने एक स्वप्न देखा-**''प्रचण्ड वायु के वेग से एक कल्पवृक्ष उखड़कर उसकी गोद में आ गिरा ।''**

24. महासती रेवती

पृष्ठ नं. 64

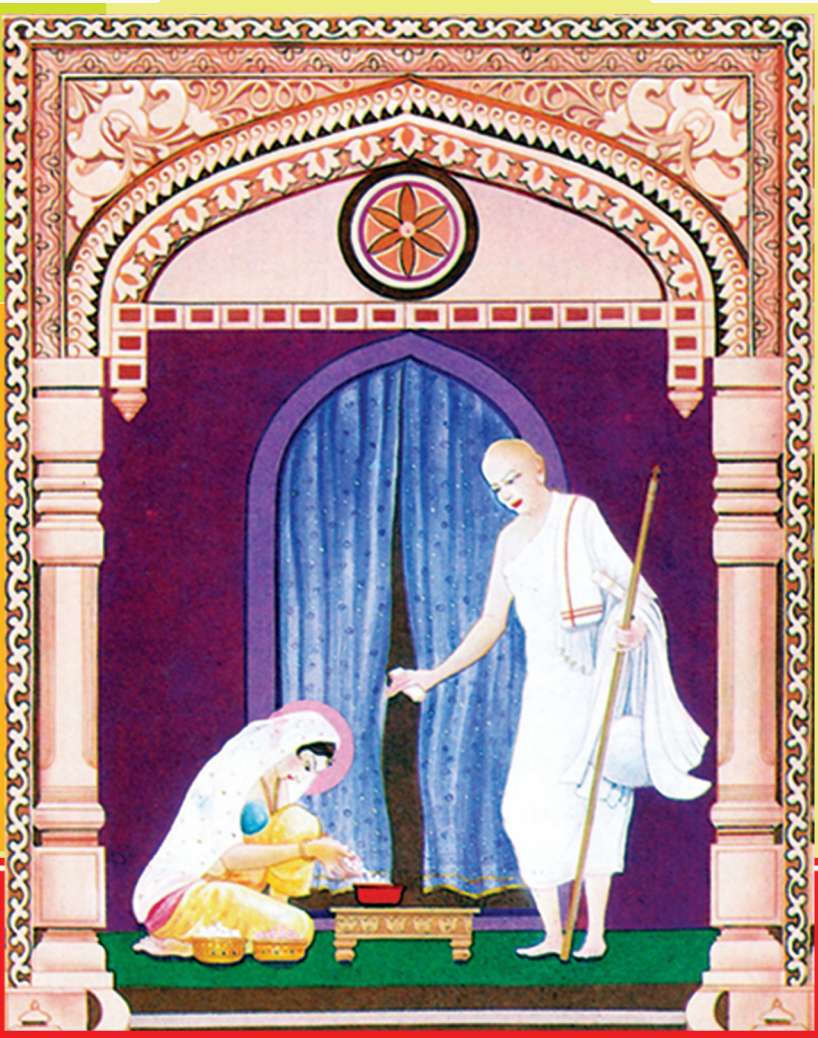

कुन्ती ने अपने पति पांडुराजा को स्वप्न की बात कही ।

पांडु ने कहा-**``प्रिये ! तू एक पुत्र की माता बनेगी जो शूरवीरों में अग्रणी होगा और अत्यन्त पराक्रमी होगा ।''** यह सुनकर कुन्ती के आनन्द का पार न रहा ।

गर्भ के प्रभाव से कुन्ती को, पर्वत को चूर देने आदि के दोहद पैदा होने लगे । गर्भ के प्रभाव से कुन्ती में इतना बल आ गया कि वह वज्र जैसे हीरों को भी कर्पूर की भाँति चूर-चूर करने लगी ।

कुन्ती को पुनः गर्भवती देखकर गान्धारी का दिल जलने लगा । उसे गर्भवती हुए तीस माह बीत चुके थे, फिर भी वह पुत्रवती बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकी थी, अतः उसे मन-ही-मन कुन्ती के प्रति अत्यन्त ईर्ष्या होने लगी । वह सोचने लगी, ``अरे ! यह कुन्ती पुनः गर्भवती बन गई और अभी तक मुझे एक भी प्रसूति नहीं हो पाई ।''

ईर्ष्या एक भयंकर आग

दुनिया में चार तरह के पुरुष होते हैं-

(1) दूसरे को सुखी करके खुश होने वाले उत्तमोत्तम पुरुष ।

(2) दूसरे को सुखी देखकर खुश होने वाले उत्तम पुरुष ।

(3) दूसरे को दुःखी देखकर खुश होने वाले अधम पुरुष ।

(4) दूसरे को दुःखी करके खुश होने वाले अधमाधम पुरुष ।

तीसरे और चौथे क्रम वाले व्यक्ति प्रायः ईर्ष्या के रोग से ग्रस्त होते हैं । उनके दिल में ईर्ष्या की आग जलती रहती है । ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को दुःखी देखकर व दुःखी करके प्रसन्न होते हैं और किसी व्यक्ति को सुखी देखकर मन-ही-मन जलते हैं ।

सामान्यतः समान स्तर वालों के साथ यह ईर्ष्या तत्त्व अधिक काम करता है ।

ईर्ष्या का परिणाम आत्मा के लिए अत्यन्त ही नुकसानकारी है ।

गान्धारी का हृदय ईर्ष्या से ग्रस्त होने के कारण वह कुन्ती के आनन्द में अपना आनन्द नहीं मान सकी । वह मन-ही-मन अपने आपको धिक्कारती थी ।

गान्धारी गुस्से में आकर अपने पेट पर मुक्के लगाती, जिससे अविकसित

गर्भ की ही उसे प्रसूति हो गई । उस पिंड में से भी भयंकर बदबू आ रही थी । गान्धारी अपने दुर्भाग्य पर रोने लगी और उस बालक को फेंक देने के लिए भी तैयार हो गई, परन्तु दासी के समझाने पर गान्धारी ने घी के कुंड आदि में रख गर्भ का पालन किया । गान्धारी ने जिस दिन पुत्र को जन्म दिया उसके तीन प्रहर बाद ही कुन्ती ने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

पुत्र के जन्म के समय देववाणी हुई-**``यह बालक वज्र जैसी काया वाला अत्यन्त पराक्रमी होगा, ज्येष्ठ बन्धु के प्रति अत्यन्त आदर वाला होगा और भावी में मोह को छेदकर सिद्धिपद को प्राप्त करेगा ।''** कुन्ती अत्यन्त प्रसन्न हुई । पांडु ने दोनों पुत्रों का जन्म-महोत्सव मनाया ।

धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र का नाम `दुर्योधन' रखा । पांडु ने अपने पुत्र का नाम `भीम' रखा ।

भीम का पर्वत से लुढ़कना

एक बार महाराजा पांडु और कुन्ती ऋतुराज वसन्त की शोभा देखने के लिए किसी पर्वत पर पहुँचे । उस समय शिशु भीम एक मास का था । वन का वातावरण अत्यन्त मनमोहक था । कुन्ती एक वृक्ष के नीचे बैठकर अपने लाल भीम को क्रीड़ा कराने लगी । इधर पांडु वन में घूमने लगे । उन्होंने वन के सुगन्धित पुष्पों की माला बनाई और वे माला लेकर कुन्ती के पास आ गए और वह हार कुन्ती के गले में डाल दिया । कुन्ती उस माला को देखकर खुश हो गई । हर्ष के अतिरेक में कुन्ती खड़ी हो गई । गोद में रहे शिशु भीम का उसे ख्याल न रहा और इस भूल के कारण वह बालक शिला पर से नीचे लुढ़कने लगा ।

शिशु को शिला पर से नीचे लुढ़कते देख कुन्ती चिल्लाने लगी । अचानक पांडु की नजर शिला पर पड़ी तो उसने देखा कि वे शिलाएँ चूर-चूर हो गई हैं । पांडु और कुन्ती शिला पर से नीचे उतरने लगे । कुन्ती घबराई हुई थी तभी एक सैनिक ने आकर समाचार दिये-``भीम सकुशल है...उसको कुछ भी चोट नहीं लगी है ।''

पांडु और कुन्ती दोनों तलहटी में आए और शिशु भीम को सकुशल देख प्रसन्न हो गए । कुन्ती के आनन्द का पार न रहा । उसके शोकग्रस्त चेहरे पर प्रसन्नता छा गई ।

कुन्ती ने कहा, ``हे स्वामिन् ! हम जब ऊपर चढ़े थे तब तो ये शिलाएँ सुरक्षित थीं, अभी ये शिलाएँ चूर्ण कैसे हो गईं ?''

पांडु ने कहा-``प्रिये ! यह तो तेरे शिशु का ही पराक्रम है । उसके जन्म के समय देववाणी हुई थी कि यह बालक वज्रकाय होगा ।''

कुन्ती प्रसन्न हो गई ।

अर्जुन आदि का जन्म

धीरे-धीरे समय बीतने लगा और एक दिन सूर्योदय के पूर्व महारानी कुन्ती ने स्वप्न में ऐरावत हाथी पर बैठे इन्द्र को देखा ।

कुन्ती ने अपना स्वप्न पांडु को कहा ।

पांडु ने कहा, ``यह पुत्र इन्द्र की तरह अत्यन्त पराक्रमी होगा ।''

गर्भ के प्रभाव से कुन्ती को सुन्दर दोहद होने लगे-``मैं समग्र पृथ्वी को उपद्रव रहित करूँ और पृथ्वी को अपने अधीन करूँ ।''

...और एक शुभ दिन कुन्ती ने पुत्ररत्न को जन्म दिया-देववाणी हुई-**``यह पुत्र ज्येष्ठ बन्धु का आदर करने वाला होगा, जगत् में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होगा । महापराक्रमी, नीतिमान् और शूरवीर होगा । अन्त में दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष जाएगा ।''** बालक अत्यन्त पुण्यशाली था । उसके जन्म के समय अप्सराओं ने भी आकाश में नृत्य किया । पाण्डु राजा ने पुत्र का जन्म-महोत्सव मनाया और बारहवें दिन उस बालक का नाम `अर्जुन' रखा ।

कुछ समय बाद पांडु की पत्नी माद्री भी गर्भवती बनी और एक शुभ दिन उसने भी पुत्र युगल को जन्म दिया । शिशुओं के नाम `नकुल' और `सहदेव' रखे गए ।

इधर धृतराष्ट्र की गान्धारी आदि आठ पत्नियों ने भी अन्य 99 पुत्रों को जन्म दिया । दुर्योधन सहित धृतराष्ट्र के ही 100 पुत्र आगे चलकर कौरव कहलाए ।

धीरे-धीरे पाँच पाण्डव और सौ कौरव बड़े होने लगे ।

संस्कारों का प्रभाव

पाँच पाण्डव और सौ कौरव धीरे-धीरे बड़े हो रहे थे । उन सबके बीच में परस्पर बहुत प्रेम था । वे सभी 105 प्रतिदिन भीष्म पितामह, धृतराष्ट्र,

पांडु, विदुर, सत्यवती आदि के चरणों में प्रणाम करते और सभी के आशीर्वाद प्राप्त करते ।

समान वय वाले और एकवंशीय होने पर भी कौरवों और पाण्डवों के संस्कार-सिंचन में काफी अन्तर था ।

कुन्ती का हृदय विशाल था । उसके दिल में परमात्मा के प्रति, गुरुजनों के प्रति अपूर्व भक्ति थी, वह एक शीलवती सन्नारी थी, अतः उसने अपनी सन्तानों में विनय, नम्रता, सद्भाव, सरलता, सज्जनता, त्याग तथा परस्पर प्रेम आदि गुणों का सिंचन किया, जबकि गान्धारी एक ईर्ष्याग्रस्त नारी थी । उसके दिल में ईर्ष्या की भावना होने से वह अपनी सन्तानों में अच्छी तरह से सुसंस्कारों का सिंचन न कर सकी ।

शिक्षण

द्रोणाचार्य के पास सभी कौरव-पाण्डवों का अभ्यास प्रारम्भ हो गया । सभी राजकुमार विद्याध्ययन करते थे, परन्तु जो 'गुरुकृपा' अर्जुन ने प्राप्त की, वह किसी अन्य ने नहीं की ।

अर्जुन की नम्रता व विनयगुण से प्रसन्न होकर एक दिन द्रोणाचार्य ने कहा, ``मैं तुझे जगत् में एक अद्वितीय धनुर्धर बनाऊंगा ।''

यह बात सुनकर अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।

एक तो स्वयं अर्जुन में बाण चलाने की चतुराई थी ही, इसके साथ ही उसे गुरुकृपा भी प्राप्त हो गई । अर्जुन की यह महत्ता देखकर दुर्योधन मन-ही-मन कुढ़ने लगा ।

दुर्योधन कर्ण के साथ अधिक दोस्ती करने लगा, धीरे-धीरे उन दोनों के बीच की दोस्ती गाढ़ बनती गई ।

एकलव्य की अद्भुत बाणकला

एक बार अर्जुन घूमते हुए **'पुष्पकरंडक'** नाम के वन में जा पहुँचा । अर्जुन वन के प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लूट रहा था । उसके चेहरे पर मस्ती थी । अचानक उसने एक कुत्ते को देखा, जिसका मुँह बाणों से भरा हुआ था, फिर भी आश्चर्य था कि कुत्ते के मुख से खून की एक बूंद भी नहीं गिर रही थी ।

अर्जुन ने यह दृश्य साक्षात् अपनी आँखों से देखा, उसके आश्चर्य का पार न रहा । ``अहो ! ऐसा कौन धनुर्धर है, जिसने इस प्रकार कुत्ते का भोंकना

बन्द करा दिया। अरे ! ऐसी कला तो मुझे भी नहीं आती है...वह कौन धनुर्धर है, जो ऐसी कलाएँ जानता है, वह कितना महान् होगा और उसके विद्यागुरु भी कितने महान् होंगे ?''

अर्जुन ने इधर-उधर नजर की, परन्तु उसे कोई मनुष्य दिखाई नहीं दिया...कुछ आगे बढ़ने पर उसे एक अत्यन्त तेजस्वी युवक दिखाई दिया...जो अकेला ही बाण-कला के चमत्कार दिखा रहा था। वह युवक अपनी साधना में मस्त था। तुरन्त ही अर्जुन उसके निकट पहुँचा और बोला-``तुम कौन हो ? तुम्हारे गुरु कौन हैं ?''

उसने कहा, **``यहाँ पास में ही 'रुद्रपल्ली' नाम की पल्ली है। मैं उस पल्ली के नायक हिरण्यधनुष का पुत्र 'एकलव्य' हूँ। मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं।''**

``मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं'' यह सुनते ही अर्जुन का चेहरा विषादग्रस्त हो गया। वह सोचने लगा-``हाँ ! ऐसी कला द्रोणाचार्य के सिवाय और कौन सिखा सकते हैं ? परन्तु यह क्या ? द्रोणाचार्य ने तो मुझे वरदान दिया था कि तू जगत् में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होगा, सचमुच गुरुदेव की कृपा इस भील पर अधिक लगती है। अरे, यह क्या ? मैं एक सामान्य भील के बालक से भी पराजित हो गया ?''

अर्जुन तुरन्त ही अपने स्थान की ओर चल पड़ा। उसके मुख पर अत्यन्त उदासीनता छा गई। अर्जुन द्रोणाचार्य के निकट आकर बैठ गया। द्रोणाचार्य ने अर्जुन के विषादग्रस्त चेहरे को देखा। तुरन्त ही द्रोणाचार्य बोले-``अरे अर्जुन ! आज तेरे मुख पर उदासीनता क्यों है ? क्या किसी ने तेरी आज्ञा का खण्डन किया है ? अथवा किसी ने तिरस्कार किया है ? जिसके ऊपर यमराज की दृष्टि पड़ी हो, वही व्यक्ति तेरा अपमान करने की हिम्मत कर सकता है ? सच कहो, अर्जुन ! क्या बात है ?''

अर्जुन ने कहा-**``गुरुदेव ! आगे आपने मुझे जगत् में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने का वचन दिया था, परन्तु आपका वह वचन मिथ्या हो गया है। आपने तो मुझसे भी बढ़कर दूसरे को श्रेष्ठ धनुर्धर बनाया है।''**

द्रोणाचार्य ने कहा-``अर्जुन ! तेरी बात मेरी समझ में नहीं आ रही है। मैंने तो अपनी कलाएँ तुझे ही सिखाई हैं, तू यह कैसी बात कर रहा है ?''

``गुरुदेव ! आज मैं वनभ्रमण के लिए गया था, वहाँ मैंने सर्वश्रेष्ठ

धनुर्धर को देखा । उसकी धनुषकला के आगे तो मेरा ज्ञान सोलहवाँ भाग भी नहीं है ।''

द्रोणाचार्य ने कहा-``वत्स ! तेरे समान मेरा अन्य कोई शिष्य ही नहीं है तो फिर ज्ञानदान की तो बात ही कहाँ रही ?''

अर्जुन ने कहा-``गुरुदेव ! आप मेरे साथ चलिये । मैं आपको आपका सर्वश्रेष्ठ शिष्य दिखला देता हूँ ।''

अर्जुन अपने गुरु द्रोणाचार्य को उस वन में ले गया, जहाँ एक वृक्ष के नीचे बैठकर एकलव्य अपनी बाणकला का प्रदर्शन कर रहा था ।

अचानक एकलव्य ने देखा-``मेरे विद्या-गुरु पधार रहे हैं,'' तो उसने बाण नीचे रख दिये और वह गुरु के चरणों में गिर पड़ा ।

गुरु के आगमन के साथ ही खड़े हो जाना, उनके चरणों में प्रणाम करना, उन्हें योग्य स्थान पर बिठाना, इत्यादि बातें शिष्य के जीवन में देखने को मिलती थीं ।

एकलव्य ने गुरुचरणों में प्रणाम किया । तत्पश्चात् द्रोणाचार्य ने पूछा-``तुमने यह बाणकला किससे प्राप्त की है ?''

एकलव्य ने कहा-``गुरु द्रोणाचार्य से ।''

तभी अर्जुन ने कहा-``गुरुदेव ! देखो, यह स्वयं आपका ही नाम ले रहा है ।''

एकलव्य की बात सुनकर द्रोणाचार्य असमंजस में पड़ गए । ``अरे ! मैंने तो कभी इसे विद्या सिखाई नहीं है, फिर यह मेरा नाम कैसे ले रहा है ?''

तभी एकलव्य द्रोणाचार्य को एक वृक्ष के नीचे ले गया । वहाँ द्रोणाचार्य की भव्य प्रतिमा थी । अर्जुन तो उस प्रतिमा को देखता ही रह गया । गुरु के प्रति रहे बहुमान भाव से ही एकलव्य श्रेष्ठ धनुर्धर बना था ।

कर्ण का कुल कौनसा ?

अंगदेश के राजा के रूप में कर्ण का राज्याभिषेक सुनकर उसका पिता अतिरथी उसी समय रंग-मण्डप में आ गया ।

अपने पिता के आगमन को जानकर कर्ण अपने सिंहासन पर से खड़ा हो गया और उसने जाकर अत्यन्त आदरपूर्वक अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया ।

पिता ने भी अपने पुत्र का आलिंगन किया और उसे आशीर्वाद दिया ।

तभी अत्यन्त रोषायमान हुए भीम ने आकर कर्ण को कहा-``अरे कर्ण ! सारथीपुत्र ! तू अर्जुन के साथ लड़ने की कैसी इच्छा करता है ? तू अपने कुल के उचित आचरण कर । रथ के ऊपर आरूढ़ होकर घोड़ों को हाँक । यहाँ तेरा काम नहीं है ? व्यर्थ क्यों मरना चाहता है ? क्या तू चम्पा राज्य के योग्य है ?''

भीम के इस प्रकार के अपमानजनक शब्दों को सुनकर कर्ण के दिल में आग पैदा हो गई । उसके मन में पाण्डवों के प्रति वैरभावना अत्यन्त दृढ़ हो गई ।

इसी बीच दुर्योधन ने कहा-``अरे भीम ! तुम बात-बात में कुल की बात क्यों करते हो ? क्या इतना तेजस्वी व्यक्ति सामान्य कुल में पैदा हो सकता है ? परन्तु यहाँ कुछ भेद अवश्य होना चाहिए ।''

इसी बीच अतिरथी सारथी ने कहा-``हे महानुभावो ! कर्ण मेरा आत्मज (पुत्र) नहीं है, बल्कि वह तो मेरा धर्मपुत्र है ।''

अतिरथी की यह बात सुनकर दुर्योधन ने कहा-``अतिरथी ! सच कहो, यह तुम्हारा धर्मपुत्र कैसे ?''

अतिरथी ने कहा-``आज से वर्षों पूर्व एक बार मैं गंगानदी के किनारे घूमने के लिए गया था । वहाँ मैंने गंगानदी के प्रवाह में बहती हुई एक पेटी देखी थी । नदी में कूदकर मैंने वह पेटी उठा ली और उसे लेकर किनारे पर आया ।

पेटी खोली तो देखा कि एक अत्यन्त तेजस्वी शिशु सोया हुआ है, उसके कानों में कुण्डल हैं ।

मैं उस शिशु को अपने घर ले आया । मुझे कोई सन्तान तो थी नहीं । अतः मैंने वह पुत्र अपनी पत्नी राधा को सौंप दिया । उसी दिन सूर्योदय के पूर्व राधा को सूर्य का स्वप्न आया था ।

``पुत्र को प्राप्त कर राधा अत्यन्त खुश हुई । कान के नीचे हाथ रखकर सोने के कारण इस बालक का नाम कर्ण रखा गया । सूर्य के स्वप्न से प्राप्त होने के कारण इस बालक का नाम **'सूर्य-पुत्र'** भी है । हमने इस बालक को पुत्र की तरह पाला-पोसा । इस बालक में बाल्यकाल से ही क्षत्रियोचित गुण दिखाई देते हैं । हो-ना-हो यह राजकुल में ही जन्मा होना चाहिए । मैं तो उसका पालक पिता ही हूँ ।''

कर्ण के कुल की इस रहस्य भरी बात को सुनकर सभी सभासदों के आश्चर्य का पार न रहा ।

इस घटना को सुनते ही कुन्ती को अपने लग्नपूर्व के जीवन की घटना का स्मरण हो आया । वह सोचने लगी-**``अरे ! यह कर्ण तो मेरा ही पुत्र लगता है । अपने पुत्र के दर्शन कर आज मैं धन्य बनी हूँ ।''**

परन्तु लज्जा के कारण कुन्ती ने कर्ण के जन्म का वृत्तान्त किसी को नहीं कहा । वह मौन रह गई । सोचने लगी-``अवसर आने पर सत्य प्रगट कर दूंगी ।''

कर्ण के कुल के रहस्य को सुनकर दुर्योधन ने कहा-``कर्ण जिस किसी कुल का हो, मैंने उसका अंगदेश के राजा के रूप में अभिषेक किया है । यदि यह बात किसी को नहीं रुचती हो तो वह युद्ध के लिए तैयार हो जाय ।''

दुर्योधन की यह बात सुनकर पांडु ने कहा-``अरे द्रोणाचार्यजी ! मैंने राजकुमारों की परीक्षा के लिए यह आयोजन किया है, यह कोई युद्ध-भूमि नहीं है, अतः कुमारों के संघर्ष को दूर करो ।''

पांडु राजा की यह बात सुनकर द्रोणाचार्य खड़े हो गए । उन्होंने दुर्योधन-अर्जुन आदि को अपने-अपने स्थान पर बिठा दिया । द्रोणाचार्य ने परीक्षा-विधि समाप्त की । सभी राजा व प्रजाजन अपने-अपने घर लौटने लगे ।

कांपिल्यपुर से दूत का आगमन

धीरे-धीरे समय बीतने लगा । एक दिन महाराजा पांडु अपनी राज-सभा में बैठे हुए थे तभी राजसभा में एक अज्ञात पुरुष का आगमन हुआ । उसने आगे आकर महाराजा के चरणों में प्रणाम किया ।

महाराजा ने उसका परिचय पूछा । दूत ने कहा-``राजन् ! मैं कांपि-ल्यपुर के महाराजा द्रुपद की आज्ञा से एक सन्देश लेकर आया हूँ । महाराजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी जो अत्यन्त रूपवती और गुणवती है, उसके स्वयंवर में पधारने के लिए आपको आमंत्रण देने के लिए महाराजा द्रुपद ने मुझे भेजा है ।

``महाराजा द्रुपद ने आपकी क्षेम-कुशलता पूछी है और कहा है कि जो राजकुमार, राधावेध को सिद्ध करेगा, उस राजकुमार के साथ द्रौपदी का

लग्न होगा, अतः आप भी अपने राजकुमारों को साथ लेकर समय पर कांपिल्यपुर पधारो ।''

पाण्डु राजा ने दूत के आमंत्रण को स्वीकार किया और एक शुभ दिन वे अपने पाँच पुत्रों और धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों तथा कुन्ती, माद्री, धृतराष्ट्र आदि सभी को लेकर कांपिल्यपुर पहुँच गए ।

कांपिल्यपुर के महाराजा द्रुपद ने पाण्डु आदि राजाओं का भव्य स्वागत किया ।

स्वयंवर का दिन निकट आ चुका था । महाराजा द्रुपद ने विशाल स्वयंवर-मण्डप की रचना करवाई थी । आगन्तुक मेहमानों के बैठने के लिए सुयोग्य व्यवस्था हो चुकी थी । मण्डप में स्वर्ण-चांदी के स्तम्भ थे । मोतियों की मालाएँ स्थान-स्थान पर लटकाई हुई थीं । सुगन्धित धूप के जलने से चारों ओर का वातावरण सुरभित था ।

आखिर स्वयंवर का निश्चित दिन आ ही गया । सभी महाराजाओं ने स्वयंवर मण्डप में प्रवेश किया और अपने-अपने योग्य आसन ग्रहण कर लिये । तभी सोलह शणगार से सज्ज बनी रति के अवतार समान द्रौपदी ने स्वयंवर-मंडप में पैर रखा । द्रौपदी के अद्‌भुत रूप और लावण्य को देखकर अनेक राजकुमार द्रौपदी को वरने का मनोरथ करने लगे ।

स्वयंवर-मंडप के मध्य में राधावेध की सिद्धि के लिए मजबूत धनुष पड़ा हुआ था । सर्वप्रथम धृष्टद्युम्न ने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा- ``आगन्तुक अतिथियो ! मैं आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ । आकाश में रहे सूर्य, सिद्ध तथा गन्धर्वों एवं यहाँ पधारे हुए सभासदो ! आपके समक्ष मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो कोई व्यक्ति धनुष उठाकर राधावेध करेगा, उसके साथ मेरी बहिन सौभाग्यवती द्रौपदी का लग्न होगा । यह धनुष अनेक देवताओं से अधिष्ठित है, अतः जो कोई पुण्यवन्त पुरुष हो, वह आगे आए और राधावेध को सिद्ध कर बताए ।''

धृष्टद्युम्न की इस उद्‌घोषणा के बाद सर्वप्रथम दमदन्त राजा राधा-वेध करने के लिए खड़ा हुआ । दमदन्त शूरवीर था, उसकी भुजाओं में अद्‌भुत बल था । वह आगे बढ़ा । परन्तु अफसोस ! भाग्य ने उसे यारी नहीं दी और राधावेध को सिद्ध करना तो दूर रहा, वह धनुष भी नहीं उठा सका । वह एकदम निराश हो गया और अपने स्थान पर आकर बैठ गया ।

दमदन्त के बाद विराट देश का राजा और उसके बाद नन्दिपुर का राजा शल्य भी खड़ा हुआ...परन्तु वे दोनों भी धनुष को न हिला सके ।

तत्पश्चात् राजगृही का राजा जरासन्ध, जिसे अपनी शक्ति का अत्यन्त अभिमान था, खड़ा हुआ और धनुष को उठाने हेतु आगे बढ़ा...परन्तु धनुष को उठाने के साथ ही धनुष नीचे गिर पड़ा । शर्म के कारण जरासन्ध का मुख नीचा हो गया और उसने भी अपना स्थान ग्रहण कर लिया । उसके बाद चेदिराज शिशुपाल आगे आया, परन्तु उसे भी विफलता ही हाथ लगी ।

उसके बाद कर्ण आगे आया । कर्ण के आगमन के साथ द्रौपदी के मन में उसके प्रति दुर्भाव पैदा हो गया । कर्ण आगे बढ़ा, परन्तु उसे वज्रावर्त धनुष में से निकलती आग की लपटें दिखाई देने लगीं, वह दूर हट गया । अजोड़ धनुर्धर कर्ण भी राधावेध नहीं साध सका ।

राधावेध को साधना कोई सरल काम नहीं है । एक स्तम्भ के ऊपर आठ चक्र घूमते होते हैं । उनमें से चार सीधे और चार उलटे घूमते हैं । उस स्तम्भ पर राधा-पुत्तलिका होती है । स्तम्भ के नीचे तेल का कुण्ड होता है । कुण्ड में रहे प्रतिबिम्ब पर दृष्टिपात कर, ऊपर बाण फेंककर राधा को बींधना होता है ।

प्रचण्ड पुरुषार्थ के बाद ही राधावेध की साधना में सफलता मिल सकती है । राधावेध से भी कठिन मोक्ष की साधना है । उसके लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ, दृढ़ मनोबल और तीव्र एकाग्रता की आवश्यकता होती है । इसके बिना मोक्ष की साधना सम्भव ही नहीं है ।

कर्ण की विफलता के बाद दुर्योधन, दु:शासन, अश्वत्थामा, जयद्रथ, चारुदेष्ण आदि ने भी राधावेध के लिए प्रयत्न किया, परन्तु किसी को सफलता नहीं मिली ।

आखिर में कृष्ण के इशारे से पाँचों पाण्डव खड़े हुए । पाण्डवों के खड़े होने के साथ ही द्रौपदी के मन में क्षण भर के लिए एक विचित्र विचार आया-**''ये पाँचों पाण्डव मेरे पति बनें तो कितना अच्छा हो ।''** दूसरे ही क्षण द्रौपदी को इस विचार से आश्चर्य का अनुभव हुआ...फिर भी वह उस विचार को रोक न सकी ।

बस, पाँच पाण्डवों में से अर्जुन आगे आया । उसने धनुष की तीन प्रदक्षिणा की । अत्यन्त सरलतापूर्वक अर्जुन ने वह धनुष उठाया और तैल के

कुण्ड में दृष्टिपात कर उसने निशाना ताककर धनुष छोड़ दिया । वह धनुष आठ चक्रों में से पार हो गया और उसने राधा को बींध लिया ।

जयध्वनि से चारों ओर का वातावरण गूँज उठा । द्रौपदी अपने हाथ में वरमाला लेकर आगे आई और उसने अर्जुन के गले में माला पहना दी ।

परन्तु यह क्या ! द्रौपदी ने तो केवल अर्जुन के गले में माला का आरोपण किया था, परन्तु दैवयोग से वह माला पाँचों पाण्डवों के गले में दिखाई देने लगी । सभी के आश्चर्य का पार न रहा ।

एक पुरुष के पाँच पत्नियाँ तो सुनी जाती हैं, परन्तु एक स्त्री के पाँच पति ! यह तो सभी के लिए एक अत्यन्त ही आश्चर्यकारी घटना थी । कोई इसके रहस्य को समझ नहीं पा रहा था ।

तभी आकाश में दिव्य वाणी सुनाई दी-``हे सभाजनो ! द्रुपद की पुत्री द्रौपदी पाँच पाण्डवों को ब्याही गई है, वह योग्य ही है ।''

मुनि का आगमनः पूर्वभव-कथन

द्रुपद राजा तो चिन्तातुर बने हुए थे । एक कन्या के पाँच पति ! उन्हें बड़ा आश्चर्य हो रहा था ! तभी आकाशमार्ग से एक चारणमुनि का आगमन हुआ । द्रुपद राजा ने मुनि को नमस्कार किया और उन्हें योग्य आसन प्रदान किया । सभी ने अत्यन्त भावपूर्वक मुनि को वन्दन किया । मुनिवर ने धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया और उसके बाद वैराग्यवाहिनी धर्मदेशना दी ।

सभी के मन में द्रौपदी के पाँच पतियों के भेद को जानने की तीव्र उत्कण्ठा थी । तभी कृष्ण महाराजा ने मुनि भगवन्त से प्रश्न किया-``भगवन्त ! द्रौपदी के पाँच पति होंगे, यह आकाशवाणी क्या सत्य है ?''

मुनिवर ने कहा-``इसका रहस्य जानने के लिए भूतकाल के इतिहास का अवलोकन करना होगा ।''

मुनिवर अपने ज्ञान से असंख्य वर्ष पूर्व बनी घटना को साक्षात् देखकर बोले-``असंख्य वर्षों पूर्व की बात है । चम्पानगरी में सोमदेव, सोमभूति और सोमदत्त नाम के तीन ब्राह्मण रहते थें । यौवन को प्राप्त होने पर उन तीनों का क्रमशः नागश्री, भूतश्री और यक्षश्री नाम की कन्याओं के साथ लग्न हुआ । तीनों भाई अलग-अलग रहते हुए भी मन से अभिन्न थे । उनमें परस्पर गाढ़ प्रेम था । अलग रहने पर भी उन्होंने तय किया था-``बारी-बारी से एक-एक के घर सभी को भोजन करना ।''

बस, इस क्रम के अनुसार एक दिन सोमदेव ब्राह्मण के घर भोजन की बारी थी । सोमदेव ब्राह्मण की पत्नी नागश्री ने बहुत ही सुन्दर रसोई बनाई । उसने रसोई में तुंबड़े का साग बनाया, मिर्च-मसाले डालकर उस साग को अत्यन्त स्वादिष्ट बनाया परन्तु ज्योंही उसने उस साग के स्पर्श वाली अँगुली मुँह में डाली, त्योंही उसे चक्कर आने लगे । वह समझ गई कि यह कड़वी जहरीली तुंबड़ी का साग है । मौत के भय से उसने वह साग अलग कर दिया और दूसरा साग बनाकर अपने परिवार जनों के साथ भोजन किया ।

उस नगर में धर्मघोषसूरि नाम के आचार्य भगवन्त पधारे हुए थे । उन आचार्य भगवन्त के एक शिष्य थे-धर्मरुचि मुनि । वे मासक्षमण के पारणे मासक्षमण की उग्र तपश्चर्या करते थे । मासक्षमण के पारणे में भी वे स्वयं भिक्षा के लिए जाते थे ।

धर्मरुचि मुनि भिक्षा के लिए आगे बढ़ते हुए नागश्री के घर आ पहुँचे । नागश्री ने सोचा-**``कड़वी तुंबड़ी का साग ऐसे ही पड़ा है, इस मुनि को भिक्षा में दे दूँ ।''** इस प्रकार सोचकर मुनि ने ज्योंही भिक्षा-पात्र नीचे रखा, त्योंही नागश्री ने वह सब साग बहोरा दिया । मुनिवर निषेध करते ही रह गए ।

मुनिवर उस भिक्षापात्र को लेकर अपने गुरुदेव के पास आए । गुरुदेव ने देखा, ``यह साग जहरीला लगता है'', अतः उसे अकल्प्य जानकर उसी मुनिवर को बोले-``यह भिक्षा अनुचित होने से जंगल में जाकर इसे परठ दो ।''

अपने आचार्य गुरुदेव की आज्ञा को स्वीकार कर धर्मरुचि मुनि जंगल में उस साग को परठने के लिए गए । परठने के पूर्व ही उस साग की 2-4 बूंदें नीचे गिर गईं । उस साग की गन्ध से अनेक चींटियाँ वहाँ आ गईं और तत्क्षण मर गईं ।

मुनिवर ने यह दृश्य अपनी आँखों से देखा । उनका दिल द्रवित हो उठा । वे सोचने लगे-``अहो ! मेरे इस प्रमाद के कारण इतने जीवों की हिंसा हो गई । अरे ! यह साग कहीं भी परठा जाएगा, मैं हिंसा से बच नहीं पाऊंगा, अतः क्यों न अपने देह में ही इसे परठ दूँ ।''

इस प्रकार विचार कर वे मुनि अत्यन्त समाधिस्थ हो गए । उन्होंने अपनी आत्मा को इस बलिदान के लिए तैयार किया और वह साग स्वयं वापर लिया ।

बस, उस जहरीले साग का प्रभाव उनके शरीर पर होने लगा । वे सतत जागृत थे । पंच-परमेष्ठी भगवन्त का नाम स्मरण करते-करते उन्होंने अपना नश्वर देह सदा के लिए छोड़ दिया ।

इधर काफी समय तक मुनि का पुनः आगमन न होने से आचार्य भगवन्त ने मुनि की शोध प्रारम्भ करवाई । आखिर पता चला कि मुनिवर ने तो अपना देह छोड़ दिया है ।

आचार्य धर्मघोषसूरिजी म .ज्ञानी थे । उन्होंने अपने ज्ञान द्वारा नागश्री की दुष्प्रवृत्ति साक्षात् देखी । आखिर उन्होंने यह बात प्रकट की । नागश्री की इस दुष्प्रवृत्ति की बात नगर में चारों ओर फैल गई । सभी लोग नागश्री पर धिक्कार की वर्षा करने लगे ।

सोमदेव को भी इस बात का पता चला । उसने भी अपनी स्त्री को धिक्कारा और अन्त में उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया ।

धर्मद्रोही तो सजा के पात्र ही हैं । उन्हें योग्य सजा न करने पर धर्मद्रोह की परम्परा आगे बढ़ने की सम्भावना रहती है ।

चारों ओर तिरस्कार और अपमान की पात्र बनी नागश्री अन्त में अत्यन्त करुण स्थिति में मरकर छठे नरक में गई है और वहाँ से निकलकर पुनः तिर्यंच-नरकादि के भवों में असंख्य काल तक भटकती रही है ।

सुकुमालिका का पापोदय- तीर्थंकर, संघ व साधु की आशातना भयंकर पाप है । साधु-द्रोह के भयंकर पापाचरण के कारण नागश्री को असंख्य वर्ष तक नरक-तिर्यंच आदि के भयंकर दुःख सहने पड़े ।

अन्त में, उस पाप के भार से लगभग मुक्त बनी वह चम्पानगरी में सागरदत्त सेठ की पुत्री सुकुमालिका बनी । उसका रूप व लावण्य अद्‌भुत था । क्रमशः वह यौवन को प्राप्त हुई । उसके प्रति सागरदत्त को अत्यन्त ही स्नेह था । उसके लिए पुत्री का वियोग असह्य होने से उसने पहले से ही तय कर दिया कि जो घर-जामाता (जमाई) बनकर रहेगा, उसी को मैं अपनी पुत्री दूंगा ।

आखिर जिनदत्त सेठ के पुत्र सागर के साथ सुकुमालिका का लग्न हुआ । लग्न के बाद सुकुमालिका के देह-स्पर्श से सागर को भयंकर दाह का अनुभव हुआ, अतः वह भय के मारे सुकुमालिका को छोड़कर भाग गया ।

पिता के लिए पुनः समस्या खड़ी हो गई ।

आखिर एक भिखारी को स्नानादि कराकर, वस्त्रादि से अलंकृत कर

सुकुमालिका का उसके साथ सम्बन्ध कर दिया । परन्तु यह क्या ? वह भिखारी भी उसी दिन भाग गया । दुर्भागी सुकुमालिका अपने भाग्य पर रोने लगी ।

सुकुमालिका की आज्ञाविरुद्ध आतापना

सुन्दर रूप व धन-सम्पत्ति प्राप्त होने पर भी तीव्र पापोदय के कारण सुकुमालिका उस सुख का उपभोग न कर सकी ।

एक बार उसे जैन साध्वीजी भगवन्त का परिचय हुआ । साध्वीजी भगवन्त के संसर्ग से उसके दिल में धर्म-भावना जागृत हुई और अन्त में संसार के सर्व-संग का त्याग कर वह साध्वी बन गई ।

साध्वी-जीवन को स्वीकार कर वह कठोर संयम-जीवन जीने लगी ।

एक दिन उसके दिल में विचार आया-``जैनश्रमण नगरबाहर आतापना कर अपने कर्मों की भारी निर्जरा करते हैं तो मैं भी वह आतापना स्वीकार करूँ ।'' उसने अपना विचार अपनी गुरुणी को कहा ।

गुरुणी ने उसे समझाया कि साध्वी के लिए जंगल, श्मशान व एकान्त में कायोत्सर्ग करना, आतापना करना आदि शास्त्र में निषिद्ध है ।

गुरुणी द्वारा निषेध करने पर भी वह न मानी और एक दिन नगर के बाहर उद्यान में जाकर सूर्य की आतापना लेने लगी ।

सुकुमालिका साध्वी उद्यान में आतापना ले रही थी, उसी समय दिव्य रूप वाली देवदत्ता वेश्या उस उद्यान में आ गई । उस वेश्या के रूप पर मोहित बने हुए पाँच युवक उसकी चाकरी कर रहे थे ।

अचानक सुकुमालिका की दृष्टि उस वेश्या पर पड़ी । वह सोचने लगी-``अहो ! यह वेश्या कितनी भाग्यशालिनी है, पाँच-पाँच पुरुष इसकी सेवा में उपस्थित हैं । मैं कितनी दुर्भागी ? मेरे संग में आने वाला पुरुष भी दूर भाग जाता था । अहो ! यदि मेरे तप का कोई फल हो तो आगामी भव में मुझे भी पाँच पति मिलें ।''

इस प्रकार का निदान कर वह उपाश्रय में आ गई ।

मर्यादा-भंग हानिकर

पुरुष हो चाहे स्त्री, सबकी अपनी-अपनी मर्यादाएँ हैं, सबकी अपनी-अपनी लक्ष्मण रेखाएँ हैं । उन मर्यादाओं का उल्लंघन न पुरुष के लिए

लाभकारी है, न स्त्री के लिए। अपनी-अपनी मर्यादा में रहने में ही एक-दूसरे की सुरक्षा है।

स्त्री के लिए तो शील ही सर्वस्व है। स्त्री का देह-सौन्दर्य पुरुष के लिए सहज राग का कारण बनता है। अतः शास्त्रकार महर्षियों ने स्त्री के शीलरक्षण के लिए अनेक मर्यादाएँ की हैं। जो स्त्री इन मर्यादाओं को भंग करती है, उसे बलात्कार आदि का शिकार बनना पड़ता है।

सुकुमालिका ने साध्वीमर्यादा का भंग किया, जिसके परिणामस्वरूप वह मार्ग-भ्रष्ट बनी और अपने क्षणिक दैहिक सुख के लिए उत्कृष्ट संयम की साधना को बेचने के लिए तैयार हो गई। उसने अपनी मर्यादा का भंग किया, इसी कारण वह अशुभ निमित्त का शिकार बनी।

उपाश्रय में आने के बाद वह सुकुमालिका साध्वी अपने शरीर की अधिकाधिक शुश्रूषा करने लगी। बार-बार हाथ-पैर धोना, कपड़ों को सदैव स्वच्छ करना आदि में उसे अधिक रस पड़ने लगा। उसकी इस प्रवृत्ति को देखकर ज्येष्ठ साध्वियाँ उसे टोकने लगीं। सुकुमालिका साध्वी को वह ठपका कड़वा लगने लगा तो वह अलग वसति में रहने लगी। उसने कठोर तप का आचरण किया और मृत्यु पूर्व आठ मास की सल्लेखना की। परन्तु उसने अपने पाप का प्रायश्चित्त नहीं किया। अन्त में काल-धर्म प्राप्त कर वह सौधर्म देवलोक में देवी बनी।

अन्त में, द्रौपदी के भेद को खोलते हुए मुनि ने कहा-**``वह सुकुमालिका साध्वी ही देवलोक से च्यवकर द्रौपदी बनी है। पूर्व भव में किए गए निदान के फलस्वरूप ही इसे इस जन्म में पाँच पति प्राप्त हुए हैं।''**

मुनिवर अपनी बात पूर्ण कर आकाशमार्ग से चले गए। मुनिवर के मुख से द्रौपदी के पूर्वभवादि को सुनकर सभी को भारी आश्चर्य हुआ।

तभी कृष्ण ने कहा-``यदि द्रौपदी की पाँच पति वरने की इच्छा हो और वह इस परिस्थिति को स्वीकार कर सकती हो तो इस सम्बन्ध में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।''

मुनिवर के मुख से द्रौपदी के पूर्वभव को जानने के बाद किसी के लिए विरोध करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। बस, एक शुभ मुहूर्त में पाँच पाण्डवों का द्रौपदी के साथ लग्न हो गया।

नारदजी का आगमन

महाराजा कृष्ण हस्तिनापुर में थे । इसी बीच एक दिन अचानक आकाशमार्ग से नारदजी का आगमन हुआ । पाण्डु को पता चलते ही उन्होंने नारदजी का स्वागत किया और उन्हें योग्य आसन आदि प्रदान किया । पाण्डु राजा के साथ औपचारिक विधि समाप्त हो जाने के बाद नारदजी कृष्ण और पाण्डवों से एकान्त में मिले ।

महाराजा कृष्ण को भी इस बात की चिन्ता थी कि द्रौपदी एक है और उसके पति पाँच हैं, अतः कहीं भविष्य में पाँचों भाइयों के बीच कलह और क्लेश पैदा न हो । आज तो सभी भाइयों के बीच परस्पर प्रेम है, परन्तु भविष्य में उस प्रेम के बीच दरार पड़ने की संभावना है, अतः यदि कोई समुचित व्यवस्था हो जाय तो उनका प्रेम अखण्डित रह सकता है ।

कृष्ण ने नारद जी को कहा-``पाण्डवों की कुछ व्यवस्था होनी चाहिए ।''

तभी नारदजी ने पाण्डवों को सम्बोधित कर कहा-``हे पाण्डवो ! दुनिया में जब एक ही व्यक्ति या वस्तु के अनेक मालिक बन जाते हैं, तब उसके स्वामित्व को पाने के लिए परस्पर कलह और क्लेश पैदा होता है । वह वस्तु भी नहीं मिलती है, किन्तु परस्पर विनाश अवश्य हो जाता है ।''

पाण्डवों द्वारा प्रतिज्ञा स्वीकार

भविष्य में किसी प्रकार का अनर्थ न हो, इसके लिए नारदजी ने कहा-``हे पाण्डवो ! द्रौपदी पर अधिकार के सम्बन्ध में तुम्हें अपनी मर्यादा कर लेनी चाहिए ।''

तभी सभी पाण्डवों ने एक ही आवाज में कहा-``नारदजी ! आप हमें जो भी आज्ञा करेंगे, वह हमें सहर्ष स्वीकार है, हम उसका आजीवन पालन करेंगे ।'' तभी नारदजी ने कहा—

यदा युष्माकमेकः स्याद् द्रौपदीवासवेश्मनि ।
कार्यतोऽपि तदाऽन्येन न गन्तव्यं कथञ्चन ।।
कथञ्चिदथ यः कोऽपि, भिनत्ति समयं यदि ।
वनवासाय गन्तव्यं, तेन द्वादशवत्सरीम् ।।

``तुममें से कोई एक जब द्रौपदी के वासभवन में हो, तब किसी कार्य

के आ पड़ने पर भी दूसरा उसके वासभवन में न जाय और भूल से भी कोई चला जाय तो उसे बारह वर्ष वनवास में व्यतीत करने होंगे ।''

भावी अनर्थ की परम्परा से बचने के लिए नारदजी ने ज्योंही उपर्युक्त बात कही, त्योंही तत्काल सब पाण्डवों ने सहर्ष उस प्रतिज्ञा स्वीकार कर लिया ।

पाण्डवों ने प्रतिज्ञा स्वीकार की, जिससे नारदजी अत्यन्त प्रसन्न हुए । कुछ समय स्थिरता कर नारदजी ने आगे के लिए अपनी उड़ान भर दी ।

हस्तिनापुर में पाँचों पाण्डव सुखपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगे । उन सब भाइयों के बीच परस्पर अत्यन्त प्रेम और भ्रातृत्व की भावना थी ।

महासती द्रौपदी की तो यह कठोर साधना थी । पाँच पति होते हुए भी एक दिन एक के साथ पति जैसा व्यवहार करना और शेष चारों के प्रति भाई जैसा व्यवहार करना, कोई सामान्य बात नहीं थी ।

समय बीतने लगा । द्रौपदी गर्भवती बनी । उसने क्रमशः पाँच पुत्रों को जन्म दिया । उम्र का भेद होने पर भी वे सभी एक ही समान लगते थे, अतः उन सबका नाम **''पांचाल''** किया गया ।

समय का प्रवाह आगे बढ़ने लगा ।

हस्तिनापुर में पशुओं की चोरी

सूर्य अस्ताचल की गोद में चला गया था । जगत् में चारों ओर अपना साम्राज्य फैलाने के लिए अन्धकार चारों ओर फैल रहा था । अन्धकार पापियों को सहायता भी करता है । बस, उसी समय हस्तिनापुर नगर में चारों ओर हाहाकार मच गया । चोरों की एक टोली ने नगर में प्रवेश किया था । वे इस नगर के कीमती पशुधन को लूटकर ले जा रहे थे ।

लुटेरे इतने अधिक बलवान थे कि उनके आगे पशुपालक टिक न सके । इस प्रकार पशुधन की लूट को देखकर कई पशुपालक राजभवन के निकट आए और इस आपत्तिकाल में उनका रक्षण करने के लिए सत्त्वशाली अर्जुन से प्रार्थना करने लगे ।

अर्जुन के दिल में प्रजा के प्रति अटूट प्रेम था । एक राजकुमार के नाते भी प्रजा का रक्षण करना, वह अपना कर्त्तव्य समझता था ।

नीतिशास्त्र में भी राजा के पाँच यज्ञ कहे गए हैं-

दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य पूजा, न्यायेन कोषस्य सदा सुवृद्धिः ।
अपक्षपातो रिपुराष्ट्ररक्षा, पञ्चैव यज्ञाः कथिताः नृपाणाम् ।।

अर्थ : दुष्ट को दण्ड देना, सज्जन की पूजा करना, न्यायनीति पूर्वक कोष की वृद्धि करना, किसी का पक्षपात नहीं करना और शत्रुओं से राष्ट्र की रक्षा करना, ये राजा के पाँच यज्ञ कहलाते हैं ।

प्रजा की विपत्ति सुनकर सत्त्वशाली अर्जुन मौन कैसे रह सकता था ! तुरन्त ही वह प्रजा की विपत्ति दूर करने के लिए सुसज्ज हो गया ।

अर्जुन का अद्‌भुत पराक्रम

प्रजाजनों की बात सुनते ही अर्जुन खड़ा हो गया, परन्तु उसने देखा-``मेरे पास धनुष कहाँ है ? गाण्डीव धनुष तो द्रौपदी के शयनखण्ड में है, उस खण्ड में युधिष्ठिर हैं । अब क्या किया जाय ? एक और प्रजा के रक्षण का प्रश्न है तो दूसरी ओर नियम-भंग के फलस्वरूप बारहवर्ष वनवास की सजा है ।

अर्जुन ने अपने स्वार्थ को गौण कर प्रजारक्षण को महत्त्व दिया और वह तुरन्त ही द्रौपदी के खण्ड में पहुँच गया और वहाँ से गाण्डीव धनुष उठाकर नगर के बाहर आ गया ।

सत्त्वशाली अर्जुन ने अपने धनुष पर जोर से टंकार किया । उस आवाज को सुनते ही लुटेरे डाकू भय के मारे काँपने लगे । अर्जुन का आगमन सुनते ही सभी लुटेरे पशुधन को ज्यों-का-त्यों छोड़कर जंगल की ओर भाग गए ।

अर्जुन ने अपने अद्‌भुत पराक्रम से प्रजाजनों का रक्षण किया । अपने गोधन के रक्षण को देखकर प्रजाजन के आनन्द का पार न रहा । सभी ने अर्जुन का अत्यन्त आभार माना ।

वनवास के लिए अनुज्ञा

पशुधन का रक्षण कर अर्जुन पुनः नगर के द्वार पर आकर खड़े हो गए । तभी उन्हें अपनी प्रतिज्ञाभंग की सजा (बारह वर्ष का वनवास) याद आ गई । तत्क्षण उन्होंने वनवास की ओर प्रयाण करने का दृढ़ संकल्प कर लिया ।

सत्त्वशाली पुरुष अपनी प्रतिज्ञा के पालन में अत्यन्त ही दृढ़ होते हैं । अर्जुन ने अपने प्रजाजनों के द्वारा भीष्म, पाण्डु, कुन्ती, युधिष्ठिर आदि को सन्देश कहलाया कि वे उसे वनगमन के लिए आज्ञा प्रदान करें ।

अर्जुन की यह बात सुनकर प्रजाजनों को भी भारी आश्चर्य हुआ । उन्होंने जाकर भीष्म-पाण्डु-युधिष्ठिर आदि को समाचार दिए । समाचार मिलते ही पाण्डु-कुन्ती-युधिष्ठिर आदि नगर के बाहर आ गए और अर्जुन को कहने लगे-``बेटा ! वन में जाने की तू यह कैसी बात कर रहा है ? इस यौवनवय में वनवासी जीवन जीना तेरे लिए क्या उचित है ? वन में हमें जाना चाहिए, अतः तू यह विचार छोड़ दे ।''

कुन्ती ने कहा-``बेटा ! तेरे बिना मैं कैसे रह पाऊंगी ? तू तो महलों में पला है, जंगल के भयंकर कष्ट तेरे लिए उचित नहीं हैं ।'' इतना कहती हुई कुन्ती एकदम रो पड़ी ।

अर्जुन ने कहा-``मैंने अपनी प्रतिज्ञा भंग की है, अतः उसकी सजा तो मुझे स्वीकार करनी ही चाहिए ।''

युधिष्ठिर ने कहा-``अरे अर्जुन ! इस छोटी सी बात के लिए तू वन-गमन की बात कर रहा है, जरा देख तो सही, तेरे वन-गमन की बात सुनकर माता-पिता को कितना दुःख हो रहा है ? माता-पिता की आज्ञा का पालन करना, यह तो पुत्र का प्रथम कर्त्तव्य है, अतः तू वन-गमन का अपना विचार छोड़ दे ।''

``अरे अर्जुन ! तू अपनी प्रतिज्ञा-भंग की बात करता है, परन्तु वास्तव में प्रतिज्ञा भंग कहाँ हुई है ? तू किसी अशुभ उद्देश्य से थोड़े ही मेरे शयन-खंड में आया था । तेरा आशय एकदम पवित्र था । प्रजा के रक्षण के लिए तूने वासभवन में कदम रखा है, तो उसमें तूने कौनसा अपराध किया है ? परोपकार के लिए की गई यह भूल तो क्षन्तव्य है, अतः तू वनगमन का अपना विचार छोड़ दे ।''

भीम ने कहा-``बन्धु अर्जुन ! तुम्हारे वियोग की बात सुनकर मेरा हृदय टूट रहा है, अतः तुम वनगमन की बात छोड़ दो ।''

अपने बन्धुओं की यह बात सुनकर अत्यन्त ही धैर्य का अवलम्बन लेकर अर्जुन ने कहा-``बन्धुओ ! आप स्नेह से इतने कातर क्यों बन रहे हैं ?

मैंने प्रतिज्ञा भंग की है, यह बात एकदम सत्य है...तो फिर मुझे वनवास जाना ही चाहिए। नारदजी की साक्षी में ग्रहण किये गए नियम का बराबर पालन नहीं होगा तो कौरवकुल की कीर्ति में काला दाग लगेगा। कुरुवंशी कभी अपनी प्रतिज्ञा का भंग नहीं करते हैं। स्नेह की अपेक्षा कर्त्तव्य पालन महान् है, अतः आप मुझे कर्त्तव्य-पालन से रोकें नहीं, बल्कि आप मुझे हृदय से आशीर्वाद दें। वनवास के कष्टों से घबराना यह कुरुवंशजों के लिए शोभास्पद नहीं है।''

``आप सब माता-पिता की सेवा में उपस्थित हो ही, अतः मेरे वियोग के दर्द को दूर करने में आप समर्थ हो...आप सहर्ष मुझे वन-गमन के लिए अनुज्ञा व आशीर्वाद प्रदान करें।''

अर्जुन की दृढ़ता देखकर आखिर पाण्डु-कुन्ती-युधिष्ठिर आदि ने उसे वनगमन की अनुज्ञा प्रदान कर दी।

सब की अनुज्ञा मिलने के बाद द्रौपदी ने सोचा-``मेरे कन्त अपनी प्रतिज्ञा के पालन में दृढ़निश्चयी हैं, अतः अब उन्हें रोकना मेरे लिए उचित नहीं है।''

अर्जुन के वियोग में द्रौपदी को दुःख होना सहज है, फिर भी वह अपने मन को मजबूत करके अपने स्वामी के प्रति शुभकामना व्यक्त करती हुई बोली-``हे स्वामिन्! आपका यह वन-मार्ग निष्कण्टक बने, शीघ्र ही आपका पुनः संयोग प्राप्त हो।'' इतना कहकर द्रौपदी ने सद्भावपूर्वक अर्जुन को प्रणाम किया। उसके बाद अर्जुन ने वन की ओर प्रस्थान किया।

सत्त्वशाली व्यक्ति दृढ़प्रतिज्ञ होते हैं

सत्त्वशाली व्यक्ति ग्रहण की गई प्रतिज्ञा का दृढ़ता से पालन करते हैं। इसे सिंहवृत्ति कहते हैं अर्थात् सत्त्वशाली व्यक्ति सिंह के समान अत्यन्त पराक्रमपूर्वक व्रत का स्वीकार करते हैं और सिंह के समान ही उस व्रत का पालन भी करते हैं। सत्त्वहीन व्यक्ति दीनतापूर्वक व्रत ग्रहण करता है और उसके पालन में भी दीन बन जाता है।

माता-पिता व भाइयों के स्नेह में आकर भी अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा से लेश भी चलित नहीं हुआ, यह कोई सामान्य बात नहीं है।

जिनमंदिर-दर्शन

हस्तिनापुर के नगरवासियों ने अर्जुन के प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त कीं...और कुछ ही क्षणों में अर्जुन आगे बढ़ गया।

``वन में क्या होगा ? कैसे रहूंगा ?'' इस प्रकार की दीनता अर्जुन के मुख पर नहीं थी । अर्जुन सत्त्वशाली था । सत्त्वशाली व्यक्ति दुःख से घबराता नहीं है, वह दुःख को भी हृदय से स्वीकार करता है ।

जंगल में प्रवेश करने के बाद दूर से उसे एक जिन-मन्दिर दिखाई दिया । वह उस ओर आगे बढ़ा । उसने अत्यन्त ही भावपूर्वक युगादिदेव आदिनाथ भगवान की स्तवना की । उसका दिल प्रसन्नता से भर आया ।

मन्दिर-दर्शन कर वह कुछ आगे बढ़ा । अचानक पर्वत के एक भाग से उसे एक स्त्री के रुदन का करुण स्वर सुनाई दिया । तुरन्त ही उसने उस स्वर की दिशा में अपने कदम बढ़ा दिये । परोपकारी व्यक्ति किसी को आपत्ति में देखकर शान्त नहीं बैठ सकते हैं । वे तुरन्त किसी के संकट को भेदने के लिए सुसज्ज होते हैं ।

अर्जुन द्रुतगति से आगे बढ़ा । आगे जाकर उसने देखा-एक राज कुमार जैसी आकृति वाला युवक पर्वत के शिखर पर से गिरकर आत्महत्या करने का प्रयास कर रहा है और पास ही में एक स्त्री करुण रुदन कर रही है ।

तुरन्त ही अर्जुन ने उस पुरुष को रोक दिया । वह बोला-``तुम कौन हो ? और इस प्रकार आत्महत्या क्यों कर रहे हो ? **आपत्ति से घबराकर आत्महत्या करना तो कायरता है । सुख की भाँति आपत्ति को भी सहर्ष स्वीकार करना, यही तो जीवन का सच्चा आनन्द है । तुम्हें जो भी दुःख हो, वह मुझे कहो, मैं उसे दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न करूंगा ।''**

अर्जुन के इस सौजन्यपूर्ण व्यवहार को देखकर उस अज्ञात पुरुष के मन में अर्जुन के प्रति सद्भाव पैदा हुआ ।

संकट के समय व्यक्ति सर्वप्रथम आश्वासन की अपेक्षा रखता है । योग्य समय पर आश्वासन मिल जाय तो व्यक्ति दुःख के भार से एकदम हल्का हो जाता है ।

अर्जुन ने कहा-``ओ सत्त्वशिरोमणि ! आओ, बैठो, अपने दिल की बात मुझे कहो ।''

अर्जुन के इस आग्रह को देखकर उस अज्ञात व्यक्ति ने कहा-``इस पर्वत के पास ही रत्नपुरी नामकी नगरी है, मैं उसी नगरी का राजा मणिचूड़ हूँ, मेरे पिता का नाम चन्द्रावतंस है, यह मेरी पत्नी चन्द्राननना है ।

``मैं इस नगरी में अपने पिता के राज्य का अच्छी तरह से पालन कर रहा था । पिता ने मुझे कुलक्रम से आई हुई विद्याएँ प्रदान की थीं परन्तु उन विद्याओं को सिद्ध करने के पूर्व ही मेरे पिता की मृत्यु हो गई । पिता की मृत्यु के बाद सामन्तों ने मुझे राजा बनाया...परन्तु कुछ ही दिनों में मेरे चाचा के पुत्र ने ईर्ष्याग्रस्त होकर एक दिन मेरे राज्य पर अचानक आक्रमण कर दिया । युद्ध के लिए मेरी कोई पूर्व तैयारी नहीं थी, अतः उस युद्ध में मुझे हार खानी पड़ी । विद्युत्वेग ने मुझे राज्य से निष्कासित कर दिया और स्वयं राजा बन गया ।

``इस प्रकार अचानक राज्य से पद-भ्रष्ट होने के कारण मुझे अपने जीवन से कंटाला आ गया । इस आपत्ति में मेरी सहायता करने वाला कोई नहीं था, अतः मैंने आत्महत्या करने का निर्णय लिया । मेरी पत्नी चन्द्रानना को ज्योंही इस बात का पता चला, वह भी मेरे पीछे आ गई और मुझे रोकने के लिए करुण रुदन करने लगी ।

अर्जुन का आश्वासन

अर्जुन तो परोपकार-व्यसनी था । आपत्ति में पड़े हुए किसी की सहायता करना वह अपना कर्त्तव्य समझता था, अतः उसने मणिचूड़ को आश्वासन देते हुए कहा, ``मणिचूड़ ! तुम अब आत्महत्या का विचार छोड़ दो...और समझ लो कि तुम्हारी आपत्ति कुछ ही समय में दूर हो जाने वाली है ।''

``मणिचूड़ ! दुःख से घबरा कर आत्महत्या करना तो कायरता है । दुर्लभता से प्राप्त इस मानव-जीवन को ऐसे ही गँवा देने में कौनसी बुद्धिमत्ता है ? जब तक अपने साध्य की सिद्धि न हो तब तक हमें अपना पुरुषार्थ चालू रखना चाहिए ।''

अर्जुन की ये बातें सुनकर मणिचूड़ को भी हौसला आ गया...वह भी उत्साही बन गया..उसने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया ।

मणिचूड़ ने कहा-``आपका परिचय ?''

``मैं हस्तिनापुर के महाराजा पाण्डु का मध्यम पुत्र अर्जुन हूँ, युधिष्ठिर-भीम मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं ।''

``ओ हो ! आप अर्जुन हैं । मुझे आत्मविश्वास है कि आप मुझे अवश्य विजयी बनायेंगे...परन्तु हे अर्जुन ! एक सामान्य भूचर विद्याधर के आगे टिक

नहीं सकता है, अतः सर्वप्रथम आप मुझे प्राप्त विद्याओं को सिद्ध करें । विद्यासिद्धि के बाद ही विद्युत्वेग से आसानी से लड़ा जा सकेगा ।''

अर्जुन ने तुरन्त ही विद्यासिद्धि की साधना के लिए अपनी स्वीकृति दे दी ।

आत्महत्या के विचार को छोड़ देने से चन्द्रानना को भी आश्वासन मिल गया । मणिचूड़ सर्वप्रथम चन्द्रानना को उसके पिता के घर छोड़ आया ।

अर्जुन की विद्या-साधना

मणिचूड़ ने अर्जुन को सभी विद्याएँ बतला दीं । अर्जुन ने तत्काल उन विद्याओं की साधना प्रारम्भ कर दी । विद्या-साधना में बैठने के कुछ ही समय बाद विघ्नसन्तोषी राक्षसों के उपद्रव चालू हो गए । चारों ओर भयंकर गर्जनाएँ सुनाई देने लगीं । सिंह व हाथी की गर्जनाओं से वातावरण भयपूर्ण हो गया । क्षुद्र देवताओं के भयंकर उपद्रवों से सत्त्वशाली अर्जुन लेश भी चलित नहीं हुआ ।

विद्यासिद्धि के लिए तीन गुण अनिवार्य हैं-

(1) ब्रह्मचर्य : विद्या चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक, उसकी सिद्धि के लिए सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य का पालन जरूरी है, जो व्यक्ति वासनाओं के निमित्तों को पाकर चलित हो जाते हैं, उन्हें किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त नहीं होती है ।

(2) स्थिरता विद्यासिद्धि के लिए दृढ़ संकल्पपूर्वक स्थिरता भी अनिवार्य है । जो व्यक्ति अस्थिर बन जाते हैं, उन्हें विद्या प्राप्त नहीं होती ।

(3) एकाग्रता : भयंकर उपसर्ग या उपद्रव आ जाय तो भी अपने ध्यान से चलित न हो, वही व्यक्ति विद्याओं को सिद्ध कर सकता है । साधना में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के उपसर्ग आते हैं । एकाग्रचित्त वाला व्यक्ति ही उस समय स्थिर रह सकता है ।

अर्जुन ने छह मास तक साधना की । छह मास के अन्त में आठों विद्यादेवियाँ अर्जुन के सामने आकर खड़ी हो गईं और बोली-``हे सत्त्व-शिरोमणे ! तुम्हारी दृढ़ साधना से हम तुम्हारे अधीन हैं, हमारे लिए क्या आज्ञा है ?''

विद्याओं की सिद्धि जानकर अर्जुन के आनन्द का पार न रहा । परोपकार-व्यसनी अर्जुन ने कहा-``मेरी इच्छा है कि तुम मणिचूड़ विद्याधर का सान्निध्य करो और उसकी सहायता करो ।''

विद्या देवियों ने कहा-``हे कुरुवंश-शिरोमणे ! तुम्हारी इस निःस्पृहता को धन्य है, परन्तु हमारी मर्यादा है कि जिसने हमारी साधना की है, हम उसी का सान्निध्य करती हैं, अतः मणिचूड़ यदि विद्याओं को सिद्ध करेगा तो उसका भी हम अवश्य सान्निध्य कर सकेंगी ।''

विद्यादेवियों की यह बात सुनकर परोपकार-व्यसनी अर्जुन ने मणि-चूड़ को विद्यासाधना के लिए बिठा दिया और कुछ ही समय बाद उसे भी आठों विद्याएँ सिद्ध हो गईं ।

विद्यासिद्धि के बाद अर्जुन, मणिचूड़ को साथ लेकर रत्नपुर नगर के बाहर आ गया । सर्वप्रथम युद्धनीति के अनुसार अर्जुन ने विद्युत्वेग के पास एक दूत भिजवाया और कहलाया कि ``या तो आप अपना राज्य मणिचूड़ को सौंप दो अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ ।''

दूत ने जाकर विद्युत्वेग को सन्देश सुना दिया । अर्जुन के इस सन्देश को सुनते ही विद्युत्वेग आगबबूला हो उठा और उसने दूत का तिरस्कार करते हुए कहा-``कौन है यह अर्जुन मेरे सामने ? जो इस प्रकार की बालिश बातें कर रहा है, उसे लड़ना हो तो युद्ध के मैदान में आ जाय ।''

बस, दूत ने आकर अर्जुन को बात कही । रणभेरी बज उठी । आठ-आठ महाविद्यादेवियों का अर्जुन व मणिचूड़ को सान्निध्य प्राप्त होने से विद्युत्वेग अर्जुन के आगे टिक न सका, आखिर वह युद्ध के मैदान को छोड़कर भाग गया ।

युद्धविजय के साथ ही अर्जुन व मणिचूड़ का नगर में भव्य प्रवेश हुआ । अपने पूर्व के राजा को पुनः प्राप्त कर प्रजाजनों के आनन्द का पार न रहा । चारों ओर नगर में अर्जुन के पराक्रम के गीत सुनाई देने लगे । अर्जुन ने मणिचूड़ को पुनः राजसिंहासन पर स्थापित कर दिया । मणिचूड़ ने भी अर्जुन का खूब-खूब आभार माना । मणिचूड़ ने अर्जुन को रुकने के लिए खूब-खूब आग्रह किया, परन्तु अर्जुन वहाँ ज्यादा दिन नहीं रहे । उन्हें तो वन-भ्रमण की उत्कण्ठा थी ।

अष्टापद की यात्रा

मणिचूड़ को राजगद्दी पर स्थापित कर अर्जुन ने वहाँ से विदाई ली और वह अष्टापद तीर्थ की यात्रा के लिए आगे बढ़ा । कुछ ही समय बाद अर्जुन अष्टापद पर्वत पर आ पहुँचा । भरतचक्री के द्वारा निर्मित अष्टापद-महातीर्थ और उस मन्दिर में स्थापित चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों की स्व-देह प्रमाण जिन प्रतिमाओं के दर्शन कर अर्जुन का मन प्रसन्नता से भर आया ।

परमात्मा के दर्शन से आत्मा निर्मल और पावन बनती है ।

अष्टापद महातीर्थ की यात्रा कर अर्जुन बाहर आया और अचानक उसे चारणमुनि के दर्शन हुए । उसने अत्यन्त भावपूर्वक मुनि को वन्दन किया और मुनिवर ने भी उसे धर्मलाभ की आशिषपूर्वक वैराग्यमय देशना दी ।

संसार की असारता व मोक्ष की उपादेयता का वर्णन सुनकर अर्जुन ने प्रश्न किया-``भगवन् ! मेरा मोक्ष कब होगा ?''

ज्ञानी मुनिवर ने कहा-``तुम इसी भव में मोक्ष प्राप्त करोगे । अभी तुम्हारा कुछ कर्म बाकी है ।''

इसी भव में भव-बन्धन से मुक्ति की बात सुनकर अर्जुन के मुख पर एकदम प्रसन्नता छा गई । उसका मन मयूर आनन्द से नाच उठा ।

अष्टापद की यात्रा के बाद अर्जुन आगे बढ़ा और उसने हिरण्यपुर के दुःखी हेमांगद की भी सहायता की ।

हस्तिनापुर से दूत आगमन

परोपकार-व्यसनी अर्जुन ने अपने वनवास की अवधि में अनेक व्यक्तियों की सहायता की । मणिचूड़ को राज्य प्रदान किया तो हेमांगद की अपहृत पत्नी प्रभावती का पता लगाकर हेमांगद से उसका मिलन करवाया । अर्जुन हेमांगद राजा का अतिथि बना हुआ था, उसी समय अचानक हस्तिनापुर से एक दूत का आगमन हुआ ।

सर्वप्रथम अर्जुन ने दूत से अपने माता-पिता की कुशलता की पृच्छा की ।

दूत ने कहा-``कुरुवंशशिरोमणि अर्जुन ! महाराजा पाण्डु अब राज्य-

जीवन से निवृत्ति प्राप्त करना चाहते हैं । वे अपने राज्य की धुरा अपने ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को सौंपना चाहते हैं, अतः इस प्रसंग पर आपकी उपस्थिति अत्यन्त जरूरी है । इधर आपका वनवासकाल समाप्त हो चुका है, आपके वियोग में माँ कुन्ती भी सतत आँसू बहा रही है, अतः आप जल्दी हस्तिनापुर पधारें ।''

दूत की बात सुनकर अर्जुन अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ । उसने दूत को कहा-``बन्धु ! तुम जल्दी जाकर पिताजी को समाचार दो कि अर्जुन शीघ्र आ रहा है । मैं शत्रुंजय की यात्रा करके हस्तिनापुर आ रहा हूँ ।''

अर्जुन की आज्ञा पाकर दूत हस्तिनापुर के लिए रवाना हो गया ।

अर्जुन हेमांगद, मणिचूड़ आदि के साथ शत्रुंजय महातीर्थ पर आया । उसने विशेष भक्ति-भावपूर्वक युगादिदेव आदिनाथ भगवान की पूजा-भक्ति की ।

शत्रुंजय की यात्रा पूर्ण कर अर्जुन कृष्णजी से मिलने के लिए द्वारका-नगरी में आए । काफी समय के बाद अर्जुन कृष्णजी का मिलन हुआ था । कृष्ण ने अर्जुन का भव्य स्वागत किया ।

कृष्ण की बहिन सुभद्रा यौवन के प्रांगण में प्रवेश कर चुकी थी । कृष्ण ने सोचा, ``सुभद्रा के लिए अर्जुन सुयोग्य वर है ।'' उन्होंने अपना प्रस्ताव अर्जुन के समक्ष रखा ।

अर्जुन की सहमति मिलते ही कृष्ण ने अपनी बहिन सुभद्रा का लग्न अर्जुन के साथ करा दिया । अर्जुन कुछ दिन द्वारका में रहे । तत्पश्चात् एक दिन सुभद्रा, हेमांगद आदि को साथ लेकर विमान में बैठकर हस्तिनापुर की ओर रवाना हुए ।

अर्जुन ने अपने आगमन के समाचार पहले ही भिजवा दिए थे । हस्तिनापुर की प्रजा अर्जुन के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी । प्रजाजनों के दिलों में आनन्द समा नहीं रहा था ।

कुछ ही समय बाद अर्जुन का विमान नीचे उतरा और वह विमान में से बाहर आया । प्रजाजनों ने अर्जुन की जय-जयकार की घोषणाओं से आकाश-मण्डल को भर दिया ।

विमान में से बाहर आते ही अर्जुन ने सर्वप्रथम भीष्म पितामह, पाण्डु, धृतराष्ट्र, विदुर, कुन्ती आदि के चरणों में अत्यन्त ही सद्भावपूर्वक प्रणाम किया । सभी ने अर्जुन को हृदय से आशीर्वाद दिया ।

पितामह आदि के दिल में वात्सल्य का भाव था तो अर्जुन के दिल में समर्पण की भावना थी । जहाँ वात्सल्य और समर्पण का संयोग हो, वहाँ कौनसी सिद्धि अवशिष्ट रहती है ?

अर्जुन ने सुन्दर समारोह के साथ नगर में प्रवेश किया ।

युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

पाण्डु राजा वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके थे । उनकी इच्छा सांसारिक-प्रवृत्तियों का त्याग कर आत्मकल्याण की साधना करने की थी । अतः उन्होंने एक दिन अपने समस्त परिवार को इकट्ठा किया और अपने दिल की बात सभी के सामने रखी ।

अब प्रश्न था उत्तराधिकारी किसे बनाया जाय ? तभी भीष्म पितामह, विदुर आदि ने कहा-``पाण्डु के उत्तराधिकारी के रूप में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक किया जाय ।''

पितामह के इस प्रस्ताव का सभी ने हृदय से स्वागत किया । सभी के दिल में युधिष्ठिर के प्रति प्रेम था । युधिष्ठिर धर्मराज के रूप में प्रख्यात था । पूज्यों को आत्मविश्वास था कि युधिष्ठिर न्याय और नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने में समर्थ है ।

पाण्डु ने भी इस निर्णय में अपनी सहमति प्रदान कर दी । उसी समय दिव्य संकेत दिखाई देने लगे । ज्योतिषी ने राज्याभिषेक का मुहूर्त निकाल दिया था । चारों ओर नगर में युधिष्ठिर के राज्याभिषेक की तैयारियाँ चालू हो गईं । प्रजाजनों के आनन्द का पार नहीं था ।

स्थान-स्थान पर तोरण, ध्वजा-पताकाएँ बाँधी गईं...और एक शुभ दिन शुभ मुहूर्त में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो गया ।

युधिष्ठिर न्याय और नीतिप्रिय था । राजनीति से भी वह सुपरिचित था । अन्य अनेक सदगुणों के साथ ही उसमें उदारता का एक विशिष्ट गुण था । राज्याभिषेक के बाद युधिष्ठिर सौधर्मसभा में बैठे हुए इन्द्र की तरह सुशोभित हो रहे थे ।

हस्तिनापुर के विशाल साम्राज्य का आधिपत्य प्राप्त होने पर भी युधिष्ठिर के मुख पर अभिमान की कोई रेखा दिखाई नहीं दे रही थी ।

युधिष्ठिर सोचने लगा-``मुझे यह विशाल राज्य प्राप्त हुआ है, परन्तु मेरे छोटे भाई दुर्योधन को तो कुछ भी नहीं मिला है, अतः उसे भी राजा बनाना चाहिए, अन्यथा उसके दिल को कितना बड़ा धक्का लगेगा ?'' इतना सोचकर वह भीष्म आदि स्वजनों के पास गया और उनसे विचार-विमर्श कर उसने तत्काल ही दुर्योधन को इन्द्रप्रस्थ का राजा बनाने की घोषणा कर दी। इतना ही नहीं, उसी समय उसने दुर्योधन को बुलाकर, उसे `इन्द्रप्रस्थ' का राजा बना दिया। `इन्द्रप्रस्थ' की राजगादी दुर्योधन को सौंप दी गई।

उदारदिल युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के अन्य पुत्रों को भी छोटे-छोटे राज्यों की सत्ता प्रदान कर दी।

युधिष्ठिर के राज्याभिषेक-महोत्सव पर आए हुए सभी राजा-महाराजाओं को विशेष भेंट दी गई और कुछ दिनों तक युधिष्ठिर का आतिथ्य स्वीकार कर उन्होंने वहाँ से विदा ली।

महाराजा पाण्डु ने अपनी सत्ता के सभी सूत्र युधिष्ठिर को सौंप दिये थे। वे अब आत्मकल्याण की साधना के लिए दीक्षा ग्रहण करने को उत्सुक थे।

भारत की महान् आर्य संस्कृति का आदर्श है-त्याग। भारत की संस्कृति त्याग-प्रधान है और इसी कारण इस देश के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो यह बात स्पष्ट देखने को मिलती है कि यहाँ के राजा-महाराजा भी वृद्धावस्था के पूर्व ही राज्य का त्याग कर संयम-जीवन को स्वीकार लेते थे।

जीवन में यदि आप सच्चे सुख को पाने के इच्छुक हों तो आपको भौतिकवाद का त्याग करना ही होगा।

पाण्डु राजा की इच्छा दीक्षा ग्रहण करने की थी, परन्तु पाण्डु के इस अभिप्राय को जानते ही पाण्डुपुत्र दुःखी हो गए। उन्होंने अपने पिता से प्रार्थना की-``पूज्यवर ! आप यहीं रहें, भले ही आप राज्य के कार्य-भार से निवृत्त रहें...और महल के बाह्य उद्यान में निवृत्ति प्रधान जीवन व्यतीत करें परन्तु आप जंगल में न जाएँ।''

पुत्र के अत्यन्त आग्रह के कारण पाण्डु राजा का मन पिघल गया और उन्होंने उद्यान के एक भाग में ही निवृत्ति-प्रधान जीवन का संकल्प कर लिया।

अयोग्य को पद-प्राप्ति हानिकर

महाराजा युधिष्ठिर ने अपनी उदारवृत्ति के कारण दुर्योधन को `इन्द्र-प्रस्थ' का राजा बनाया था, परन्तु दुर्योधन में वह योग्यता कहाँ थी ? युधिष्ठिर की उदार-वृत्ति के फलस्वरूप ही दुर्योधन को राज्य की प्राप्ति हुई थी, फिर भी उसके दिल में कृतज्ञता का भाव भी नहीं था ।

व्यक्ति में यदि योग्यता न हो और कोई ऊँचा पद उसे मिल जाय तो उसके फलस्वरूप भयंकर अनर्थ ही पैदा होता है ।

दुर्योधन सत्ता के पद को पचा नहीं पाया । उसके जीवन में अन्याय व अनीति के साक्षात् दर्शन होने लगे ।

दिग्विजय के लिए प्रयाण

एक बार राजसभा खचाखच भरी हुई थी, तभी किसी कवि ने आकर राजदरबार में दिग्विजय करने वाले राजाओं की वंशावली की यशोगाथा सुनाई । इसे सुनकर युधिष्ठिर के मन में भी दिग्विजय करने की भावना पैदा हुई ।

दुष्ट को दण्ड, सज्जन का रक्षण, खजाने की वृद्धि, शत्रु राजा से प्रजा का रक्षण और राज्य का विस्तार करना, नीतिशास्त्र में राजा के ये पाँच यज्ञ कहे गए हैं ।

युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को कहा-``यदि तुम्हारी सहमति हो तो मैं दिग्विजय के लिए प्रस्थान करूँ ।''

युधिष्ठिर की यह बात सुनते ही अर्जुन ने कहा-``बन्धुवर्य ! आप यह क्या बात कह रहे हो ? हमारे होते हुए आप युद्ध के लिए प्रयाण करोगे ? आप हमें आज्ञा करें । हम चार भाई हैं और दिशाएँ भी चार हैं, अतः आप हमें आज्ञा प्रदान करें ताकि हम दिग्विजय के लिए प्रयाण कर सकें ।''

भाइयों के अति आग्रह को देखकर युधिष्ठिर ने चारों को अलग-अलग दिशा में जाने के लिए सहमति प्रदान कर दी । पूर्वदिशा में भीम ने प्रस्थान किया, दक्षिण दिशा में अर्जुन ने, पश्चिम दिशा में नकुल ने तथा उत्तर दिशा में सहदेव ने प्रस्थान किया ।

युधिष्ठिर ने चारों भाइयों को युद्ध की नीति समझा दी थी । चारों भाइयों ने विदा ली और युधिष्ठिर न्याय-नीतिपूर्वक हस्तिनापुर के राज्य का पालन करने लगे ।

पुनः हस्तिनापुर आगमन

अपने अद्‌भुत पराक्रम के कारण चारों भाइयों ने चारों दिशाओं के अनेक राजा-महाराजाओं पर विजय प्राप्त कर ली । अर्जुन ने लाट, कोंकण, कर्णाटक, तैलंग, महाराष्ट्र आदि देशों को अपने अधीन कर लिया । भीम ने अंग, बंग व कलिंग आदि देशों में अपनी विजय-पताका फहराई । नकुल ने भी पश्चिम दिशा के अनेक राजाओं को अपने अधीन कर चारों ओर अपनी कीर्ति फैलाई । उत्तर दिशा में बढ़े सहदेव ने भी नेपाल आदि देशों के राजाओं को अपने अधीन कर लिया ।

इस प्रकार चारों दिशाओं में दिग्‌दिगन्त तक विजय प्राप्त कर चारों भाई हस्तिनापुर आ गए । महाराजा युधिष्ठिर ने सभी का अत्यन्त आदरपूर्वक स्वागत किया ।

सुभद्रा ने पुत्र को जन्म दिया

समय बीतने लगा । अर्जुन की पत्नी सुभद्रा गर्भवती हुई ।

एक शुभ दिन सुभद्रा ने अत्यन्त तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया । महाराजा युधिष्ठिर ने पुत्रजन्म का महोत्सव किया और बारहवें दिन उस पुत्र का **'अभिमन्यु'** नामकरण किया । धीरे-धीरे अर्जुनपुत्र अभिमन्यु बड़ा होने लगा ।

जिनमन्दिर का निर्माण

युधिष्ठिर आदि सभी जिनधर्म के परम उपासक थे । **'पुण्योदय से प्राप्त लक्ष्मी की सफलता और सार्थकता सात क्षेत्रों की भक्ति करने में ही है'** इस सत्य को महाराजा युधिष्ठिर अच्छी तरह से जानते और समझते थे । पुण्य के उदय से उन्हें अमाप सम्पत्ति की प्राप्ति हुई थी, परन्तु वे उसमें अत्यन्त आसक्त नहीं थे ।

पुण्य भी दो प्रकार का है- (1) पुण्यानुबन्धी और (2) पापानुबन्धी ।

(1) जिस पुण्य के उदय से मोक्ष-मार्गानुकूल विशेष धर्माराधना करने की भावना पैदा होती हो, उसे पुण्यानुबन्धी पुण्य कहते हैं ।

(2) जिस पुण्य के उदय से प्राप्त लक्ष्मी का भोग-विलास और हिंसादि पापों की वृद्धि में उपयोग होता हो, उसे पापानुबन्धी पुण्य कहते हैं ।

युधिष्ठिर के मन में देवाधिदेव वीतराग परमात्मा का भव्य जिनमन्दिर बनाने का मनोरथ हुआ ।

पुण्यशाली व्यक्तियों को ऐसे शुभ ही मनोरथ पैदा होते हैं ।

अरिहन्त परमात्मा का अपनी आत्मा पर असीम उपकार है, मोक्षमार्ग का प्रकाशन करके अरिहन्त परमात्मा जगत् के जीवों का सर्वाधिक उपकार करते हैं, अतः मोक्षमार्गदाता अरिहन्त परमात्मा की भक्ति करना, अपना श्रेष्ठ कर्त्तव्य है ।

युधिष्ठिर की इस सुन्दर भावना को जानकर अर्जुन आदि को भी आनन्द हुआ । बस, शुभ मुहूर्त्त में जिनमन्दिर-निर्माण के कार्य का शुभारम्भ हो गया ।

शुभभाव की वृद्धि के लिए उस मन्दिर में स्वर्ण, रत्न, स्फटिक, नीलम, वज्र तथा वैडूर्य आदि मणि भी जड़े गए । कुछ ही माह में जिन-मन्दिर-निर्माण का कार्य सम्पन्न हो गया ।

भव्य प्रतिष्ठा महोत्सव

पुण्यशाली जहाँ कदम रखता है, वहीं से निधान प्रगट होता है । बस, इसी न्याय से युधिष्ठिर की भावनाएँ साकार होने लगीं । उसने भव्यातिभव्य देवाधिदेव परमात्मा की मूर्ति भरवाई और मूर्ति तैयार होते ही बुद्धिसागर-सूरिजी आचार्य भगवन्त के पास विधिपूर्वक अंजनशलाका करवाई ।

अंजनशलाका अर्थात् प्राणप्रतिष्ठा । अंजनशलाका के बाद ही मूर्ति पूजनीय व वन्दनीय होती है ।

अब प्रतिष्ठा कार्यक्रम ही बाकी था । परमात्मा के इस प्रतिष्ठा-महोत्सव पर युधिष्ठिर ने कृष्ण, दुर्योधन, शकुनि आदि सभी राजा-महाराजाओं को पधारने के लिए आमंत्रण भेजा ।

युधिष्ठिर के आमंत्रण को स्वीकार कर दूर-सुदूर देशों से अनेक राजा-महाराजा इस प्रतिष्ठा-महोत्सव पर पधारे । युधिष्ठिर ने उन सबका हार्दिक स्वागत किया ।

शुभ मुहूर्त में मंगल वाद्ययंत्रों की शुभ ध्वनि के साथ ही देवाधिदेव परमात्मा के बिम्ब की प्रतिष्ठा की गई । इस मंगल प्रसंग पर दीन-दुःखियों को भी दान दिया गया और कारावास में रहे कैदियों को भी मुक्त कर दिया गया ।

प्रतिष्ठा-महोत्सव की समाप्ति के बाद महाराजा युधिष्ठिर ने आगन्तुक राजा-महाराजाओं को विविध भेंट आदि प्रदान कर सभी को विदाई दी, किन्तु उन्होंने विशेष आग्रह करके दुर्योधन को रोक लिया। युधिष्ठिर ने सभी राजाओं का आभार माना।

प्रभु-प्रतिष्ठा महोत्सव की अवधि में दुर्योधन ने युधिष्ठिर की ख्याति व प्रसिद्धि के साक्षात् दर्शन किये। दूर-दूर से आए हुए राजा-महाराजा युधिष्ठिर को खूब आदर और मान देते थे। युधिष्ठिर के इस मान-सम्मान को देखकर दुर्योधन मन ही मन जलने लगा।

ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरे के गुणों को देख नहीं सकता है।

ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरे के गुणों की प्रशंसा करने में मूक होता है।

ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरे की प्रशंसा सुन नहीं सकता है, वह उसके लिए बधिर होता है।

महापुरुषों ने कहा है-दूसरे के दोष कहने में मूक बनो, दूसरे के दोष देखने में अन्ध बनो और दूसरे के दोष सुनने में बहरे बनो।

आत्मप्रशंसा स्वयं न करो और न ही आत्म-प्रशंसा सुनने के लिए लालायित बनो।

युधिष्ठिर के पास गुणसंपत्ति थी और इस कारण लोगों का उसके प्रति आकर्षण था, लोग उसे दिल से चाहते थे, वह भी प्रजाजनों के सुख-दुख और हित की सतत चिन्ता करता था।

दुर्योधन के दिल में ईर्ष्या की आग थी। ईर्ष्यालु व्यक्ति पर के उत्कर्ष व पर की प्रशंसा को सहन नहीं कर पाता है।

दिव्यसभा में प्रवेश

अर्जुन ने अपने वनवास-काल में जिस मणिचूड़ पर महान् उपकार किया था, उस मणिचूड़ ने अपनी विद्याओं के बल से हस्तिनापुर में भव्यातिभव्य दिव्यसभा का निर्माण कराया था। उस दिव्यसभा की दीवारें मणिरत्न और स्फटिक के पत्थरों से बनी हुई थीं। मोतियों की मालाओं से दिव्यसभा सुसज्जित थी।

एक दिन युधिष्ठिर ने दुर्योधन को दिव्यसभा देखने के लिए आमंत्रण दिया। दुर्योधन उस आमंत्रण को ठुकरा न सका, उसने युधिष्ठिर के साथ उस दिव्यसभा में प्रवेश किया। दिव्यसभा की शोभा निराली ही थी।

दुर्योधन आगे बढ़ा । भूतल स्फटिक रत्न का बना होने से, दुर्योधन को वहाँ जल की भ्रांति हो गई और उसने अपना अधोवस्त्र ऊँचा कर लिया । दुर्योधन की इस प्रवृत्ति को देखकर पाण्डवों के नौकर हँसने लगे । दुर्योधन ने नौकरों के हास्य को देखा, उसे मन-ही-मन अत्यन्त दुःख हुआ ।

दुर्योधन कुछ आगे बढ़ा । आगे पानी का एक कुण्ड था, परन्तु जल अत्यन्त स्थिर होने से दुर्योधन को इस बात का पता न चला और वह आगे भी वैसे ही चलने लगा । बस, आगे बढ़ते ही वह हौज में जा गिरा । उसके सारे कपड़े गीले हो गए । दुर्योधन उस हौज में से बाहर आया । युधिष्ठिर ने दुर्योधन के भीगे कपड़े बदलवा दिये और उसे सूखे कपड़े पहना दिये ।... परन्तु दुर्योधन की इस स्थिति से भीम अपनी हँसी नहीं रोक सका और वह खिलखिला कर हँसने लगा । भीम के हास्य को देखकर दुर्योधन को अत्यन्त ही आघात लगा ।

दुर्योधन कुछ आगे बढ़ा...तो आगे उसे दीवार की भ्रान्ति होने से वह वापस लौटने लगा...परन्तु उसी रास्ते से जब दूसरे राजपुरुषों ने गमन किया, तब दुर्योधन को लगा कि वह द्वार को दीवार समझ बैठा है ।

दुर्योधन फिर आगे बढ़ा, आगे स्फटिकमय दीवार थी, उसे सामने खुला आकाश दिखाई दे रहा था, अतः वह ज्योंही आगे बढ़ा दीवार से टकरा गया, उसे सामान्य चोट लगी । दुर्योधन की इस अज्ञान चेष्टा को देखकर नकुल और सहदेव हँसने लगे ।

नकुल-सहदेव के हास्य को देख दुर्योधन के मुख पर यकायक उदासीनता छा गई । युधिष्ठिर ने उसे प्रसन्न करने के लिए भरसक प्रयत्न किये, परन्तु दुर्योधन प्रसन्न नहीं हुआ ।

दिव्यसभा से बाहर आने के बाद उसने इन्द्रप्रस्थ की तरफ जाने की अनुमति मांगी । युधिष्ठिर की इच्छा नहीं होने पर भी आखिर उसे अनुमति देनी पड़ी ।

शकुनि की दुष्ट सलाह

दुर्योधन रथ में आरूढ़ हो गया । दुर्योधन के साथ उसका मामा शकुनि भी था । शकुनि ने दुर्योधन का उदासीन चेहरा देखकर पूछा, ``दुर्योधन ! तू इतना उदास क्यों है ?'' शकुनि के पूछने पर भी दुर्योधन कुछ नहीं बोला । उसका चेहरा अत्यन्त मलिन हो चुका था ।

शकुनि के अत्यन्त आग्रह करने पर दुर्योधन बोला-``क्या कहूँ ? आपके जैसे चतुर राजपुरुष को ! आप जानते ही हैं-ये पाण्डव मेरे शत्रु हैं । इन्द्रसभा तुल्य दिव्यसभा का निर्माण करके उन्होंने मेरा जो अपमान किया है, वह अपमान तो मेरे लिए अत्यन्त ही असहनीय बना है । अहो ! ये पाण्डव ! इतनी अधिक समृद्धि के स्वामी कैसे बन गए ? आपने देखा नहीं, दूर-सुदूर से आए हुए राजा-महाराजा युधिष्ठिर को कितना मान और सम्मान देते हैं ! युधिष्ठिर ने सभी राजा-महाराजाओं को अपने अधीन बना लिया है । युधिष्ठिर की इस समृद्धि को देखकर मेरे दिल-दिमाग में आग पैदा हो रही है । वह सब समृद्धि मुझे कैसे प्राप्त हो ? बस, इसी एक चिन्ता से मेरा मन सतत संतप्त बना हुआ है ।''

शकुनि ने कहा-``दुर्योधन ! अपने भाइयों की इस शोभा को देखकर तुम व्यर्थ ही सन्ताप कर रहे हो, आखिर तो वह समृद्धि तुम्हारे ही भाइयों की है न ? और उनके भाई होने के नाते तुम्हारे लिए भी वह समृद्धि आनन्द का ही कारण बननी चाहिए ।''

दुर्योधन ने कहा-``ओ मामा ! बन्द करो ये बातें । मुझ जैसे समर्थ का अपमान करने वाले वे मेरे भाई हैं ? हाँ ! होंगे...किसी भूतकाल में...। किन्तु आज से तो वे मेरे कट्टर शत्रु हैं । मै तो उनका सम्पूर्ण नाश करना चाहता हूँ । उनके जीवित दर्शन से भी मेरा मन अपने जीवन से ऊब रहा है । यदि वह समृद्धि मुझे प्राप्त न हो तो अब मुझे अपने जीवन का भी मोह नहीं है । उनसे अपमानित जीवन जीने के बजाय तो मैं मृत्यु को भेंटना अधिक बेहतर समझता हूँ । मैं उस सहायक की शोध में हूँ, जिसके बल से मैं इन पाण्डवों को मूल से ही उखाड़ दूँ ।''

शकुनि ने कहा-``दुर्योधन ! तू इतना निराश क्यों हो रहा है ? तेरे पास भी तो दुःशासन जैसे अत्यन्त पराक्रमी भाई हैं और दुनिया का सर्वश्रेष्ठ योद्धा कर्ण भी तो तुम्हारे पक्ष में है और मैं भी तुम्हारे पक्ष में हूँ, अतः तुम भी अपने बल से इस पृथ्वी को जीतकर महान् सम्राट् बनो । व्यर्थ ही लघुता-ग्रन्थि से क्यों दुःखी हो रहे हो ?''

दुर्योधन ने कहा-``यदि ऐसा ही है तो क्यों न पाण्डवों के साथ युद्ध करके उन्हें युद्ध में जीत लिया जाय, जिससे उनकी समस्त सम्पत्ति के प्रति मुझे अधिकार प्राप्त हो जाए ।''

शकुनि ने कहा-``युद्ध-भूमि में पाण्डवों को जीतने की बात तो तेरे लिए स्वप्न-तुल्य है । पाण्डवों के अदभुत पराक्रम से तू परिचित ही है, उन्हें युद्ध के मैदान में हराना सरल काम नहीं है । अर्जुन, भीम, कृष्ण और द्रुपद आदि को तू जानता ही है न ?''

दुर्योधन ने कहा-``मामाजी ! यदि युद्धभूमि में भी उन पर विजय प्राप्त नहीं हो सकती हो तो मुझसे उनकी समृद्धि देखी नहीं जा रही है, अतः अब तो मेरे लिए आत्महत्या का ही एक आश्रय है ।''

शकुनि ने कहा-``दुर्योधन ! हताश मत बनो । मेरे पास एक उपाय है और उस उपाय को अजमाएंगे तो बिना युद्ध किये ही इन पाण्डवों को अपने वश में कर सकेंगे, इतना ही नहीं, इनकी समस्त सम्पत्ति के भी तुम मालिक बन सकोगे ।''

``मामाजी ! जल्दी बताओ, वह कौनसा उपाय है ?'' दुर्योधन ने अत्यन्त उत्सुकता से पूछा ।

शकुनि ने कहा-``दुर्योधन ! युधिष्ठिर चाहे कितना ही नीतिमान् क्यों न हो, परन्तु मैं उसकी एक कमजोरी को अच्छी तरह से जानता हूँ । वह है-जुए का व्यसन । युधिष्ठिर को जुए का व्यसन है । जुए की बात आते ही वह सब कुछ भूल जाता है, जुए का शौक, मेरी जुए की कला से तो तू एकदम परिचित ही है, किसी की ताकत नहीं है कि मुझे कोई जुए में हरा दे...अतः युधिष्ठिर को जुए में हराकर तुम इस विशाल साम्राज्य के स्वामी बन सकते हो ।''

शकुनि की यह बात सुनकर दुर्योधन आनन्द में आ गया । उसे अपना भावी उज्ज्वल दिखाई देने लगा ।

शकुनि की योजना

जुए की बात सुनकर दुर्योधन अत्यन्त खुश हो गया और बोला, ``तो चलें, हम यहीं से पीछे मुड़ें और युधिष्ठिर को जुए में जीतकर यह राज्य प्राप्त कर लें ।''

शकुनि ने कहा, ``दुर्योधन ! इतनी जल्दबाजी मत करो, अभी हमें इन्द्रप्रस्थ ही जाना होगा और इस कार्य के लिए किसी भी प्रकार से धृतराष्ट्र की सहमति लेनी होगी ।''

दुर्योधन ने कहा, ``तो फिर रहने दो आपकी योजना । मेरे पिता की सहमति ? क्या इस जुए के लिए वे अपनी सहमति देंगे ? मुझे तो उन पर लेश भी विश्वास नहीं है । वे तो इस बात में मेरा विरोध ही करेंगे, वे तो बात-बात में पाण्डवों का ही पक्ष लेते हैं ।''

शकुनि ने कहा, ``दुर्योधन ! इस कार्य में धृतराष्ट्र की सहमति लेना आवश्यक है और मुझे विश्वास है कि धृतराष्ट्र तुम्हें अवश्य ही इस कार्य में सहमति देंगे, भले ही प्रारम्भ में तुम्हारा वे विरोध करेंगे...परन्तु आखिर तो तुम्हारे प्रति उन्हें गाढ़ प्रीति है, अतः उनकी सहमति मिलेगी ही, तुम प्रयत्न तो करो ।

``दुर्योधन ! मेरे पास दैविक पासे हैं, एक बार युधिष्ठिर जुए के लिए तैयार हो जाएगा तो फिर तो यह राज्य सम्पत्ति तुम्हारे ही अधीन है ।''

युधिष्ठिर की कमजोरी

युधिष्ठिर न्यायप्रिय था । अत्यन्त सदाचारी और प्रजाप्रिय था । `धर्मराज' के रूप में उनकी चारों ओर प्रसिद्धि थी । मान-सम्मान की उन्हें कोई कमी नहीं थी । परिवारजनों की ओर से उनके प्रति पूर्ण आदर का भाव था । अनेक गुणों के भण्डार होते हुए भी `सोने की थाली में, लोहे की कील' की भाँति उनमें एक दुर्गुण था-जुए का । बस, जीवन में बहुत कुछ त्यागवृत्ति होने पर भी वे जुए का त्याग न कर सके । इतना होने पर भी वे जुए की कला में निष्णात नहीं थे । केवल शौक को लेकर वे जुआ खेलते थे ।

धृतराष्ट्र से मंत्रणा

शकुनि और दुर्योधन दोनों इन्द्रप्रस्थ नगर में आ पहुँचे । नगरवासियों ने उनका स्वागत किया । दुर्योधन के आगमन के समाचार धृतराष्ट्र को मिल चुके थे । वे भी दुर्योधन की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

बस, थोड़ी ही देर बाद दुर्योधन के आगमन की पदचाप धृतराष्ट्र को सुनाई दी । धृतराष्ट्र सावधान हो गए ।

दुर्योधन पिता के समीप आया । आज उसकी श्वास जोरों से चल रही थी । उसका मुँह निस्तेज बना हुआ था । उसके मुख से शब्द निकल नहीं पा रहे थे ।

धृतराष्ट्र ने कहा-``बेटा दुर्योधन ! तेरे जैसे धीर-वीर और बहादुर पुत्र

को आज क्या हो गया है ? तू इतने जोर-जोर से श्वास क्यों ले रहा है ? क्या किसी ने तुम्हारी आज्ञा भंग की है ? अथवा किसी ने तुम्हारा अपमान किया है ?

``बेटा ! तेरा राजदरबार समृद्धि से छलक रहा है, तुझे किस बात की कमी है ? तू इतना निराश क्यों हो रहा है ?''

दुर्योधन ने कहा-``पिताजी ! पिताजी ! आप व्यर्थ ही मेरी बड़ाई हाँक रहे हैं ? कहाँ है मेरी समृद्धि ? पाण्डवों की समृद्धि तो देखो...उनकी प्रसिद्धि तो सुनो । उनके आगे तो मेरी समृद्धि और सम्पत्ति तृण तुल्य भासित हो रही है । नदी तभी तक खुश होती है, जब तक वह सागर को नहीं देखती है ।

``हे तात ! प्रतिष्ठा-महोत्सव पर दूर-दूर से आए राजामहाराजा युधिष्ठिर की आज्ञा शिरोधार्य करते थे और युधिष्ठिर को ही सभी मान-सम्मान देते थे । उनकी इस समृद्धि को देखकर मेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं ।''

धृतराष्ट्र ने कहा-``बेटा ! अपने भाइयों की इस समृद्धि को देखकर तू ईर्ष्या से क्यों जलता है ? व्यर्थ ही हृदय में मत्सर भाव को क्यों धारण करता है ? तेरे इस मत्सर-भाव को धिक्कार हो । उन्होंने तुम्हें राज्य दिया । लक्ष्मी दी...सब कुछ दिया ही है ।''

दुर्योधन ने कहा-``पिताजी ! आप उन्हें भाई समझने की ही सबसे बड़ी भूल कर रहे हो...वे मेरे भाई नहीं किन्तु शत्रु ही हैं । इतनी समृद्धि पाने के बाद भी क्या उन्होंने मुझे अपना भाग दिया ? इतना ही नहीं, अपनी दिव्यसभा में ले जाकर उन्होंने मेरा जो अपमान किया है, वह तो मेरे लिए एकदम असह्य है ।''

शकुनि ने कहा-``दुर्योधन की बात सच है । दिव्यसभा में दुर्योधन का जो अपमान हुआ है, उसके स्थान पर अन्य कोई होता तो अपने प्राण छोड़ देता ।''

धृतराष्ट्र ने कहा-``भाइयों की सम्पत्ति को देख गौरव होना चाहिए, उसके स्थान पर तू....।''

दुर्योधन ने कहा-``वे मेरे भाई कहाँ हैं ? वे तो कभी से मेरे भाई मिट गए हैं, मुझे तो वे साक्षात् दुश्मन प्रतीत हो रहे हैं । पिताजी ! उनकी समृद्धि देखने के बाद तो मुझे अपना जीवन शून्य प्रतीत हो रहा है । मेरी एक ही

इच्छा है या तो उस सम्पत्ति का स्वामित्व प्राप्त करूँ अन्यथा इस जीवन के स्वामित्व का विसर्जन कर दूँ ।''

दुर्योधन के इस आत्महत्या के विचार से धृतराष्ट्र एकदम घबरा गया । उन्हें पुत्र-मोह ने घेर लिया ।

धृतराष्ट्र ने कहा, ``बेटा ! तू ही कह । पाण्डवों की समृद्धि के आगे तू क्या कर सकता है ? क्या तुम्हारे पास इतना बल है कि तुम पाण्डवों के आगे टिक सको ? पाण्डवों के बल-पराक्रम से तुम सर्वथा परिचित हो, अतः युद्ध करके उन पर विजय पाना तो शक्य नहीं है तो फिर उनसे ईर्ष्या करने से क्या फायदा ? बेटा ! तू व्यर्थ का अभिमान छोड़ दे ।''

उसी समय अवसर देखकर शकुनि ने कहा-``धृतराष्ट्रजी ! मैं इस दुर्योधन को समझाने के लिए ही आपके पास लाया हूँ । पाण्डव भले ही गुणसम्पन्न हों...परन्तु उन्होंने दुर्योधन का जो घोर अपमान किया है, उससे तो आपकी भी कीर्ति कलंकित बनी है, अतः दुर्योधन की बात पर आपको कुछ सोचना तो चाहिए ही !''

धृतराष्ट्र ने कहा-``पाण्डवों की सम्पत्ति क्या ऐसे ही मिल सकती है ? उनकी भुजाओं में कितना बल है ! यदि उनके साथ युद्ध करेंगे तो लोग क्या कहेंगे ? `धृतराष्ट्र ने भाइयों को परस्पर लड़ाया ।'

शकुनि ने कहा-``ज्येष्ठवर्य ! आपकी कृपा से मुझे एक उपाय सूझा है और उस कार्य में आपकी सहमति हो तो पाण्डवों का समस्त राज्य दुर्योधन के चरणों में आ सकता है ।''

``कौनसा उपाय है ? बताओ तो सही'' धृतराष्ट्र ने पूछा ।

``धृतराष्ट्रजी ! ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिर को, गुणसम्पन्न होते हुए भी जुए का तीव्र व्यसन है । बस, उस जुए के माध्यम से पाण्डवों की समस्त सम्पत्ति पर अपना एकाधिकार प्राप्त कर सकते हैं ।''

शकुनि की यह बात सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा-``शकुनि ! तुम्हारी बात पर मैं सोचकर जवाब दूंगा और इस कार्य के लिए मैं विदुर की सलाह लेना चाहता हूँ । विदुर की सहमति बिना मैं इस बात का निर्णय नहीं दूंगा ।''

दुर्योधन ने सोचा-``चाचा विदुर इस कार्य के लिए सहमति कभी नहीं देंगे,'' अतः उसने कहा-``पिताजी ! आप विदुर की आज्ञा में रहना चाहते

हों तो भले रहो, आप दोनों भाई मजे से राज्य करो। बस, मेरी अन्तिम बात सुन लो-विदुर यदि सहमति नहीं देगा तो मैं मौत को ही भेंटने वाला हूँ।''

दुर्योधन को पता था कि पिता का मेरे प्रति कितना अधिक राग है। पिता की कमजोरी को वह अच्छी तरह से जानता था, अतः उसने पिता को अपनी मृत्यु की धमकी दी।

इधर धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाने के लिए एक दूत भेजा और उधर इन्द्रप्रस्थ नगर में एक दिव्य-सभा बनाने के लिए कारीगरों-कलाकारों व शिल्पियों को आदेश दिया।

विदुर सच्चा सलाहकार

बड़े भाई धृतराष्ट्र के आमंत्रण को जानकर विदुर ने शीघ्र ही इन्द्रप्रस्थ नगर की ओर प्रयाण किया। कुछ ही दिनों में विदुर इन्द्रप्रस्थ आ पहुँचा। धृतराष्ट्र ने उसका हार्दिक स्वागत करवाया।

विदुर ने पूछा-``अचानक बुलाने का कोई विशेष प्रयोजन ?''

धृतराष्ट्र ने कहा-``बन्धुवर्य ! मैंने आपको विशेष उद्देश्य से ही बुलाया है। मेरा पुत्र दुर्योधन पाण्डवों के साथ जुआँ खेलना चाहता है।'' इतना कहकर धृतराष्ट्र ने विदुर को आदि से अन्त तक का सब वृत्तान्त कह सुनाया।

धृतराष्ट्र की बात सुनते ही विदुर कोपातुर हो गये। ``अरे ! यह क्या ? कुरुवंश के विनाश की भयंकर योजना ! मुझे तो लगता है यह दुर्योधन कुरुवंश में कुलांगार है। मैंने तो उसके जन्म-समय ही कह दिया था, ऐसे कुलांगार पुत्र का त्याग कर दो, परन्तु उस समय मेरी एक न सुनी। आज पुनः तुम्हें सावधान करता हूँ कि इस प्रकार जुएँ का आयोजन कर कुरुवंश के वटवृक्ष में आग मत लगाओ।''

विदुर तो सच्चा सलाहकार था। उसने धृतराष्ट्र को सच्ची सलाह दी, परन्तु पुत्र में मोहान्ध बने होने के कारण धृतराष्ट्र पर उसका गहरा असर नहीं हुआ।

युधिष्ठिर का आगमन

शकुनि युधिष्ठिर की कमजोरी को अच्छी तरह से जानता था। इधर इन्द्रप्रस्थ में दिव्य-सभा का निर्माण हो चुका था।

धृतराष्ट्र ने जयद्रथ को भेजकर युधिष्ठिर को इन्द्रप्रस्थ आने का आमंत्रण भेजा ।

युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के आमंत्रण का स्वीकार कर लिया और अपने परिवार के साथ युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ आ गया । सपरिवार युधिष्ठिर के आगमन को जानकर दुर्योधन ने उनका भव्य स्वागत किया । सरल हृदय युधिष्ठिर के मन में कोई कल्पना भी नहीं थी कि यह सब स्वागत दुर्योधन किसी माया और कपट से कर रहा है । **सरल व्यक्ति हमेशा दूसरों को भी सरल ही समझते हैं ।**

दुर्योधन ने युधिष्ठिर आदि का भोजन आदि द्वारा अत्यन्त मधुर स्वागत किया ।

भोजन आदि की समाप्ति के बाद दुर्योधन युधिष्ठिर को अपनी दिव्य-सभा दिखाने के लिए ले गया ।

परस्पर वार्तालाप करते हुए दोनों आगे बढ़ रहे थे । धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए एक ऐसे स्थान पर पहुँचे, जहाँ शकुनि आदि जुआँ खेल रहे थे । तुरन्त ही दुर्योधन युधिष्ठिर की कमजोरी पर हमला करते हुए बोला-``आओ ! बन्धुवर ! हम भी थोड़ी देर जुए का आनन्द लूटें ।''

जुए की बात सुनते ही एक बार तो युधिष्ठिर ने कह दिया-``यहाँ जुआँ खेलने नहीं, दिव्यसभा देखने आया हूँ ।'' परन्तु दूसरे ही क्षण उसके हृदय में जुएँ के प्रति आकर्षण का भाव पैदा हो गया ।

इतने में खड़े होकर शकुनि ने कहा-``आओ ! आओ ! महाराजा युधिष्ठिर ! आपका स्वागत है । हम आपकी ही प्रतीक्षा कर रहे थे । आइये, कुछ आनन्द लूटें और राज्य के कार्यभार की चिन्ता से ग्रस्त मन को प्रफुल्लित करें ।''

युधिष्ठिर ने कहा-``पासे की क्रीड़ा तो बुरी चीज है ।''

दुर्योधन ने कहा-``ऐसी क्रीड़ाएँ क्षत्रिय वीर नहीं करेगा तो और कौन करेगा ?''

``महाराजा युधिष्ठिर ! आपको खेलने का शौक तो है ही, फिर क्यों मना करते हो ?''

दुर्योधन के इस आग्रहभरे आमंत्रण को देख युधिष्ठिर का मन पिघलने लगा । वे बोले-``खेलूंगा जरूर, मगर किसी प्रकार की शर्त बिना ।''

शकुनि ने कहा-``अरे भाई ! इसमें कहाँ हस्तिनापुर का दरबार लुट जाने वाला है । कहीं शर्त के बिना जुआँ खेला जाता है ?''

शकुनि की यह बात सुनकर युधिष्ठिर जुआँ खेलने के लिए तैयार हो गया ।

दुर्योधन की ओर से शकुनि बैठ गया । युधिष्ठिर ने भी आसन ग्रहण किया...और धीरे-धीरे एक के बाद एक वस्तु दाँव पर लगाने लगे ।

कहते हैं कीचड़ में फँसा हुआ हाथी बाहर निकलने का ज्यों ज्यों यत्न करता है, त्यों-त्यों वह अधिक-अधिक कीचड़ में फँसता जाता है ।

बस, शकुनि अत्यन्त ही चालाकी से युधिष्ठिर में जुए का रस पैदा करता जा रहा था । एक दो बार युधिष्ठिर जीत लेता था, बाकी सब बाजी शकुनि के पक्ष में होती थी ।

युधिष्ठिर हीरा, मोती, माणक आदि सम्पत्ति हारने लगा । धीरे-धीरे हाथी-घोड़े पैदल सैन्य आदि भी हार गया ।

हारा हुआ जुआरी जीत की आशा से नए-नए दाँव लगाता जाता है । बस, इसी नियम से युधिष्ठिर एक के बाद एक वस्तु होड़ में लगाता ही जा रहा था ।

सम्पूर्ण राज्य के हार जाने पर भीष्म ने युधिष्ठिर को समझाया, परन्तु जिसके भाग्य का चक्र ही बदल गया हो, उसे सच्ची सलाह भी कहाँ से पसन्द पड़े ।

बस, युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह की एक न सुनी । उसी समय कर्ण ने युधिष्ठिर व दुर्योधन को राज्य-त्याग की शर्त करवाई । जो हार जाय वह बारह वर्ष का वनवास स्वीकार करे । दोनों ने कर्ण की शर्त स्वीकार कर ली । युधिष्ठिर एक के बाद एक अपने समस्त राज्य को भी जुए में हार गया । अन्त में उसने अपने समस्त भाइयों को और अपने आपको भी दाँव पर लगा दिया और उसमें भी युधिष्ठिर हार गया ।

अपने आपको हार जाने पर युधिष्ठिर हक्का-बक्का हो गया । उसके मुख पर एकदम ग्लानि छा गई ।

तभी दुष्ट शकुनि ने कहा-``अभी द्रौपदी तो बाकी है, अतः उसे दाव पर लगाकर समस्त सम्पत्ति वापस प्राप्त करने का भाग्य आजमा लो ।''

बस, शकुनि की बात सुनकर युधिष्ठिर ने द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया और चालाकी से शकुनि ने उसे भी जीत लिया ।

युधिष्ठिर जुए में सब कुछ हार गए ।

द्रौपदी का वस्त्रहरण

युधिष्ठिर की हार होने के साथ ही दुर्योधन ने सभी पाण्डवों को अपने कीमती वस्त्र उतार देने के लिए आदेश दे दिया । सभी पाण्डवों ने अपने अधोवस्त्र को छोड़कर सभी वस्त्र उतार दिये और म्लान मुख वाले सभी सभा में आकर बैठ गए ।

बस, उसी समय दुर्योधन ने अपने भाई दुःशासन को आदेश दिया कि वह द्रौपदी को खींचकर राजसभा में ले आवे ।

दुःशासन द्रौपदी के पास जाकर बोला, ``जुए में युधिष्ठिर तुझे हार गया है, अतः तू मेरे साथ चल, अन्यथा मैं तुझे खींच करके ले जाऊंगा । तू दुर्योधन के प्रति प्रीतिवाली बन ।''

दुःशासन की यह बात सुनकर अत्यंत रुष्ट बनी द्रौपदी ने कहा-**``अरे दुःशासन ! अपने कुल के विरुद्ध इस प्रकार की बात करते हुए तुझे लज्जा भी नहीं आ रही है ?''**

दुःशासन ने कहा-``तुझे युधिष्ठिर हार चुका है और दुर्योधन जीत चुका है, अतः तू दुर्योधन को स्वीकार कर । सभा में बैठा दुर्योधन तुझे बुला रहा है, यदि तू नहीं आएगी तो मैं जबरन ले जाऊंगा ।''

द्रौपदी ने कहा-``मैं रजस्वला हूँ और एकवस्त्रधारी होने से राजसभा में कैसे आऊँ ?'' उसी समय द्रौपदी ने प्रश्न किया-``अरे ! दुःशासन ! युधिष्ठिर ने हारने के बाद मुझे दाँव पर लगाया था या पहले ? यदि स्वयं के हारने के बाद उन्होंने मुझे दाँव पर लगाया है तो यह कौनसा न्याय ? जब वे स्वयं ही हार गए तो फिर स्वयं परतंत्र बने होने से वे मुझे दाँव पर कैसे लगा सकते हैं ?''

द्रौपदी की यह बात सुनकर आवेश में आए दुःशासन ने कहा-``बन्द कर तेरी यह बकवास ।'' इतना कहकर उसने द्रौपदी को चोटी से पकड़ा और उसे खींचकर राजसभा की ओर लाने लगा ।

महाराजा द्रुपद की पुत्री, पाण्डु राजा की पुत्रवधू और पाण्डवों की पत्नी की यह दयनीय दशा देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया ।

द्रौपदी जोर-जोर से करुण रुदन करने लगी । भीष्म आदि इस करुण दृश्य को अपनी आँखों से न देख सके । उन्होंने अपनी आँखों पर वस्त्र ढक लिया । सभी पाण्डव नीचा मुँह करके खड़े हो गए ।

उस समय अपने रक्षण के लिए द्रौपदी ने सभी से प्रार्थना की परन्तु जुए में पाण्डवों की हार हो जाने के कारण द्रौपदी को बचाने के लिए कोई भी आगे न आ सका । प्रजाजनों की आँखों से श्रावण-भादों बरस रहा था ।

उसी समय कामाधीन बने दुर्योधन ने अपनी जंघा पर के वस्त्र को हटाते हुए द्रौपदी को कहा-``अरे द्रौपदी ! तेरे लग्न के समय ही तेरे प्रति मुझे अत्यन्त स्नेह था, परन्तु उस समय मैं अपनी भावना को पूर्ण न कर सका, आज मेरी वह भावना साकार होगी तू मेरी जंघा पर आकर बैठ ।''

दुर्योधन की इस दुष्टताभरी वाणी को सुनकर अत्यन्त कुपित बनी द्रौपदी ने कहा-``ओ पापी ! इस प्रकार की दुष्ट प्रवृत्ति द्वारा तू स्वयं ही भस्म क्यों नहीं हो गया ? मुझ सती को तू अपनी जंघा दिखा रहा है अतः तू अपने ही विनाश को आमंत्रण दे रहा है ।''

उसी समय कर्ण ने कहा-``अरे द्रौपदी ! रहने दे तेरा बुद्धिचातुर्य ! तेरा पति सर्वस्व हार गया है तो क्या उसमें तेरी हार नहीं हुई है ?''

कर्ण की यह बात सुनकर प्रजाजन अत्यन्त कुपित हो गए, परन्तु दुर्योधन के भय से कुछ भी बोल न सके, वे सब मौन ही रहे । उसी समय दुर्योधन ने दुःशासन को आदेश दिया, ``हे दुःशासन ! तू इसके वस्त्र को खींचकर, इसे दासी के वस्त्र पहना दे ।''

बस, उसी समय निर्लज्ज होकर दुःशासन द्रौपदी का वस्त्र खींचने लगा । अत्यन्त भयभीत बनी द्रौपदी उस समय शासनदेव से प्रार्थना करने लगी-``ओ शासन के अधिष्ठायक देवी-देवताओ ! यदि मैं शीलधर्म वाली होऊँ तो मेरा देह वस्त्र रहित न बने ।''

बस, द्रौपदी की प्रार्थना के साथ ही शासनदेव ने द्रौपदी का सान्निध्य किया । दुःशासन द्रौपदी के वस्त्र को खींचता ही गया...खींचता ही गया, वह ज्यों-ज्यों वस्त्र खींचता गया, त्यों-त्यों वस्त्र अधिक लम्बा होता गया ।

द्रौपदी का इस प्रकार अपमान होते हुए देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ भीम, दुःशासन को मारने के लिए तैयार हो गया, परन्तु युधिष्ठिर ने उसे रोक लिया।

भीम की भीष्म प्रतिज्ञा

तब अत्यन्त कुपित बने भीम ने प्रतिज्ञा की- ***''जिस दुष्ट ने मेरी पत्नी-द्रौपदी को बालों से खींचकर, उसकी विडम्बना की है और उसके वस्त्र खींचे है, उसके बाहुदण्ड को मैं मूल सहित उखाड़ूंगा और उसकी छाती के रक्त से भूमि को रक्तरंजित नहीं करूंगा तथा द्रौपदी को जंघा बताने वाले दुर्योधन की जंघा पर गदा का प्रहार कर उसे चूर-चूर न करूँगा तो मेरा नाम भीम नहीं।''***

इस प्रकार भीम की प्रतिज्ञा सुनकर सभी लोग स्तब्ध हो गए।

सतीत्व का चमत्कार

द्रौपदी महासती स्त्री थी। वह अपने शीलधर्म के प्रति पूर्णतः अडिग थी। महासतियाँ मन, वचन और काया से अपनी मर्यादाओं का पालन करती हैं। मन में भी कभी पर-पुरुष की इच्छा नहीं करती हैं।

शील ही स्त्री का सर्वश्रेष्ठ आभूषण है। सती स्त्री अपने प्राणों का बलिदान देकर भी अपने शील-धर्म का रक्षण करती है। वह अपने शील की रक्षा के लिए सब कष्ट सहन करने के लिए भी तैयार हो जाती है।

शीलधर्म के माहात्म्य का वर्णन करते हुए श्री **'सिन्दूरप्रकर'** ग्रन्थ में कहा है–

''शील के प्रभाव से अग्नि जल बन जाती है। सर्प माला में रूपान्तरित हो जाता है। सिंह हिरण बन जाता है, विष अमृत बन जाता है, विघ्न उत्सव रूप बन जाता है, दुश्मन भी मित्र बन जाता है और इतना ही नहीं जंगल में भी स्व-गृह जैसा वातावरण खड़ा हो जाता है।''

द्रौपदी के शीलधर्म के प्रभाव से ही दुःशासन उसे भरी सभा में नग्न न कर सका, वह ज्यों-ज्यों वस्त्र खींचता गया, त्यों-त्यों उसका वस्त्र लम्बा होता गया। इस प्रकार भरी सभा में द्रौपदी के शीलधर्म का चमत्कार सभी को देखने व जानने को मिला।

दुःशासन की निर्लज्ज चेष्टा को देखकर भीष्म पितामह ने गर्जना करते हुए कहा-``अरे ! कौरवकुल के कुलांगार ! इस पतिव्रता द्रौपदी को छोड़

दे । सचमुच, तेरा पिता बाहर से अन्धा है और तू अंदर और बाहर दोनों से अन्धा है ।''

विदुर की गर्जना

दुर्योधन व दुःशासन की अत्यन्त दुष्टता भरी प्रवृत्ति देखकर धृतराष्ट्र को सम्बोधित करते हुए अत्यन्त रोषायमान विदुर ने कहा-***''मैंने तो इस दुर्योधन के जन्म के समय ही कह दिया था कि यह कुरुकुल के लिए धूमकेतु समान होगा अतः उसी समय इसे खत्म करने के लिए मैंने सलाह दी थी, परन्तु मेरी बात नहीं मानी गई । इसी के परिणामस्वरूप जो प्रवृत्ति चाण्डाल कुल में भी नहीं होती है, वह प्रवृत्ति कौरव कुल में हो रही है । दुर्योधन ! तूने माया व कपट का आश्रय लेकर भाइयों को जीता है और गुरुजनों के आगे बड़ी निर्लज्जता से द्रौपदी का पराभव / तिरस्कार किया है । भीम अपनी पत्नी के पराभव को कैसे सहन करेगा ? तिर्यंच भी अपनी स्त्री के पराभव को सहन नहीं करते हैं तो मानव की तो क्या बात करें ? यह भीम इस पृथ्वी को दुर्योधन, दुःशासन और कर्णरहित किए बिना नहीं रहेगा ।***

''दुर्योधन के निमित्त से ही भीम के द्वारा इस कुरुवाहिनी सेना का विनाश होगा ।

``अरे बन्धु धृतराष्ट्र ! इस कुलांगार दुर्योधन की तू क्यों उपेक्षा कर रहा है ? इसे तू अब खत्म कर दे, यदि इतना सामर्थ्य नहीं हो तो इस दुर्योधन को इस प्रकार की पाप-प्रवृत्ति से रोको । ये पाण्ड़व, द्रौपदी के साथ अभी भले ही वन में जायें परन्तु अवधि पूर्ण होने पर ये वापस आकर पृथ्वी पर शासन करेंगे । यदि कुरुवंश की कुशलता चाहते हो तो तुम मेरी इस बात को स्वीकार करो ।''

धृतराष्ट्र का आक्रोश

विदुर की सच्ची सलाह सुनकर धृतराष्ट्र अत्यन्त आक्रोश करता हुआ बोला-``अरे पापी ! कर्मचाण्डाल ! तूने यह कैसी दुष्टप्रवृत्ति का आरम्भ किया है ? अब भी तू इस दुष्टप्रवृत्ति का त्याग कर और पाण्डवों को द्रौपदी सहित वन की ओर जाने दे । यदि तू मेरी बात स्वीकार नहीं करेगा तो मेरी यह तलवार तेरे मस्तक को धड़ से अलग कर देगी ।''

दुर्योधन का प्रत्युत्तर

धृतराष्ट्र आदि की बातें सुनकर दुर्योधन ने कहा-``हे सभासदो ! मेरी एक बात ध्यानपूर्वक सुनो । ये पाण्डव जुए में अपना राज्य हार चुके हैं अतः बारह वर्ष तक स्वेच्छा से वनवास में रहें और जुए में अपने आप को भी हारे होने के कारण तेरहवाँ वर्ष गुप्त रूप से बिताएँ । यदि उनके गुप्त-वास का मुझे पता चल गया तो इन्हें पुनः बारह वर्ष वन में रहना पड़ेगा ।''

गुरुजनों की सहमति देखकर युधिष्ठिर आदि ने दुर्योधन की यह आज्ञा स्वीकार की और तत्काल दुर्योधन को उन पाण्डवों ने अपने वस्त्र सौंप दिये ।

युधिष्ठिर आदि का हस्तिनापुर की ओर प्रयाण

अपनी प्रतिज्ञा पर अटल युधिष्ठिर ने वनगमन के लिए सर्वप्रथम हस्तिनापुर की ओर प्रयाण किया ।

युधिष्ठिर के वनगमन के समय चारों ओर प्रजाजन दुर्योधन की निन्दा कर रहे थे । ``अरे ! इस दुष्ट दुर्योधन ने अन्याय व अनीति के द्वारा अपने भाई का राज्य ले लिया ।''

युधिष्ठिर के साथ भीष्म पितामह भी रथ में आरूढ़ हुए और उन्होंने युधिष्ठिर को कहा-``अरे धर्मपुत्र युधिष्ठिर ! तूने यह क्या कर डाला । तू सर्वस्व हार गया । इस जुए को धिक्कार हो...जिसमें तेरे जैसी आत्मा भी मुग्ध हो गई ।''

हस्तिनापुर से प्रयाण

इन्द्रप्रस्थ नगर से प्रयाण कर युधिष्ठिर आदि हस्तिनापुर आए और वहाँ से उन्होंने वन की ओर प्रयाण किया । युधिष्ठिर आदि को वन की ओर जाते देखकर हस्तिनापुर की प्रजा भी उनके पीछे-पीछे चलने लगी ।

युधिष्ठिर अत्यन्त न्याय और प्रजाप्रिय राजा था...उसने प्रजा के दिल को अच्छी तरह से जीत लिया था, इसीलिए वन की ओर प्रयाण करने के समय प्रजाजन भी उनके पीछे चलने लगे । युधिष्ठिर के वनगमन के दृश्य को देखकर प्रजा रो रही थी । युधिष्ठिर प्रजाजनों के दिल में बसा हुआ था । सभी लोग युधिष्ठिर के पवित्र जीवन को याद कर आँसू बहा रहे थे ।

वन की ओर बढ़ते हुए युधिष्ठिर आदि काम्यकवन में आ पहुँचे । युधिष्ठिर की आज्ञा से सभी ने पाँच दिन का पड़ाव डाला ।

द्रौपदी की महानता

द्रुपद राजा को जब पाण्डवों के वन-गमन का पता चला तो उसने अपने पुत्र धृष्टद्युम्न को भेजा । काम्यकवन में धृष्टद्युम्न ने आकर युधिष्ठिर को कहा-``आप हमारे नगर में पधारें और सुखपूर्वक अपना काल व्यतीत करें ।''

धृष्टद्युम्न की बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा-``हमने वन-गमन की प्रतिज्ञा की है, अतः वहाँ कैसे आएँ ? आपत्ति के समय व्यक्ति अपने श्वसुर-गृह का आश्रय ले, यह उत्तम पुरुषों के लिए कहाँ तक उचित है ?''

युधिष्ठिर के मना करने पर धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी से घर चलने के लिए आग्रह किया ।

द्रौपदी ने कहा-**``वृक्ष की छाया क्या वृक्ष को छोड़कर अन्यत्र रहती है ? मेरे स्वामी जंगल के कष्ट सहन करें और मैं महलों में रहूँ, क्या यह मेरे लिए उचित है ? पाण्डवों के चरणों से पवित्र बने हुए वन ही मुझे प्रिय लगते हैं...पितृगृह नहीं ।''**

द्रौपदी पतिव्रता नारी का एक आदर्श उदाहरण है । पतिव्रता नारी सुख-दुःख में अपने पति के साथ ही रहती है ।

कृष्ण का आगमन

युधिष्ठिर काम्यकवन में ठहरे हुए थे, उसी अवधि में एक दिन कृष्ण महाराजा भी द्वारका से उनसे मिलने वन में आ गए । कृष्ण के आगमन के साथ ही पाण्डवों ने मिलकर उनका हार्दिक स्वागत किया ।

औपचारिक बातचीत के बाद कृष्ण ने कहा-``शकुनि, कर्ण और दुर्योधन ने तुम्हारे साथ कपट का आचरण कर, तुम्हारा राज्य ले लिया''- यह बात दूत के मुख से सुनने पर मुझे अत्यन्त ही दुःख हुआ, परन्तु उस समय मेरी अनुपस्थिति थी, अन्यथा दुर्योधन तुमसे कैसे जीत सकता था । मैंने सुना है कि तुम्हारे अवरोध से ही भीम और अर्जुन ने दुर्योधन को जीवित छोड़ दिया है । अभी भी तुम्हारी प्रतिज्ञा ही हमारे लिए अन्तराय रूप है । जिसने द्रौपदी के वस्त्र का हरण किया, ऐसे गान्धारी पुत्र को खत्म करने के

लिए मुझे भी कोप चढ़ा है । द्रौपदी के तिरस्कार का फल उन्हें अवश्य भुगतना पड़ेगा ।

कृष्ण की यह बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा-``आपके कोप के आगे तो इन्द्र का पराक्रम भी व्यर्थ है...तो फिर दुर्योधन की तो क्या ताकत है ! परन्तु इस प्रकार असत्य आचरण करने से लोक में अपनी निन्दा होगी और अपना अपयश फैलेगा ।''

इस प्रकार कृष्ण को शान्त कर युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास गया ।

भीष्म पितामह की सलाह

भीष्म पितामह के चरणों में प्रणाम कर युधिष्ठिर ने कहा-``आप हमें योग्य सलाह दें, जिससे हम इस दुःख के महासागर को सरलता से पार कर सकें ।''

पितामह ने कहा-``बेटा युधिष्ठिर ! मुझे लगता है कि तूने मित्र-अमित्र की परीक्षा के लिए जुआँ खेला होगा, अन्यथा जगत् को जीतने की समस्त कलाओं से युक्त जिसके भाई हैं, वह जुए में हार कैसे जाय ? खैर, जो भवितव्यता थी...वह घटना बन गई...परन्तु अब मैं भी तुम्हारे साथ वन में आना चाहता हूँ ।''

युधिष्ठिर ने चरणों में प्रणाम कर पितामह को कहा-``भूल तो मेरी है, आप जंगल के कष्ट सहन न करें...आप हमें योग्य सलाह दें ।''

पितामह ने कहा-``बेटा ! आत्मा के लिए हानिकर छह अन्तरङ्ग शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष) का सदैव त्याग करना । अज्ञान, स्थित और झूठ से सदैव दूर रहना और मांसाहार, शिकार, चोरी, जुआ, शराब, परस्त्रीगमन व वेश्यागमन रूप सात व्यसनों का सदैव त्याग करना । देख, एक जुए के कारण तेरे राज्य का नाश हो गया...अतः इन व्यसनों की भयंकरता को बराबर समझकर इन सबके त्याग में प्रयत्नशील बनना और तेरह वर्ष की समाप्ति के बाद कुशलतापूर्वक राज्य को ग्रहण करना ।''

भीष्म पितामह के मुख से इस प्रकार के उपदेशामृत का पान कर युधिष्ठिर का मन भर आया । उसने पुनः पितामह के चरणों में प्रणाम किया और उनसे हस्तिनापुर लौटने का आग्रह किया ।

इसी तरह द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के चरणों में भी प्रणाम कर, उन्हें भी हस्तिनापुर के लिए रवाना कर दिया ।

दुर्योधन को सलाह

उसके बाद युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के पास आया । युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के चरणों में प्रणाम किया । धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया । प्रयाण के पूर्व युधिष्ठिर ने दुर्योधन के लिए अपना सन्देश देते हुए धृतराष्ट्र को कहा- ``दुर्योधन प्रजा का पालन इस प्रकार करे, जिससे कुरुवंश की कीर्ति अधिक उज्ज्वल बने । राज्य में न्याय व नीति का स्वयं पालन करे और प्रजा से भी न्याय व नीति का पालन करवावे ।''

युधिष्ठिर का यह सन्देश सुनकर धृतराष्ट्र की आँखें नम हो गईं । उसे युधिष्ठिर की महानता के साक्षात् दर्शन हुए ।

जिस प्रकार दुर्जन व्यक्ति अपनी दुर्जनता का त्याग नहीं करता है, उसी प्रकार सज्जन व्यक्ति भी अपनी सज्जनता नहीं छोड़ते हैं ।

दुर्जन व्यक्ति का स्वभाव बिच्छू जैसा होता है । वह अपने उपकारी को भी काटता है ।

सज्जन व्यक्ति चन्दन की भाँति होते हैं । कोई चन्दन को पीसे या घिसे तो भी चन्दन उसे अपनी सुगन्ध का ही दान करता है ।

विदुर की सलाह

धृतराष्ट्र को विदाई देने के बाद युधिष्ठिर ने विदुर के चरणों में प्रणाम करके कहा-``पुत्र-वियोग से संतप्त अपने माता-पिता को वन में साथ लेकर जाऊँ या उन्हें हस्तिनापुर में रखूँ । आपकी क्या सलाह है ?''

विदुर बहुत बुद्धिमान थे । उन्होंने सोच-समझकर कहा-``युधिष्ठिर ! दुर्योधन अति द्वेषी व दुष्ट व्यक्ति है । अतः समस्त कुटुम्ब को अपने साथ वन में ले जाना ठीक नहीं है । पाण्डु राजा को हस्तिनापुर में रहने दो परन्तु मातृहृदया कुन्ती व द्रौपदी को साथ में लेकर जाओ ।''

विदुर की सलाह युधिष्ठिर को पसन्द पड़ गई । उसने अपने पिता पाण्डु व माद्री आदि को हस्तिनापुर जाने के लिए निवेदन किया...। अन्य

प्रजाजनों के साथ पाण्डु आदि हस्तिनापुर आ गए और इधर युधिष्ठिर ने जंगल की ओर प्रस्थान किया ।

दुर्योधन का षड्यंत्र

दुर्योधन इन्द्रप्रस्थ तथा हस्तिनापुर का राजा बन चुका था...फिर भी उसके मन में पाण्डवों के प्रति रहा हुआ द्वेष कम नहीं हो पाया था...वह मन ही मन अधिकाधिक सुलग रहा था । वह यही सोचता था कि जब तक पाण्डव जीवित हैं, तब तक मैं सुख और चैन से राज्यसुख का उपभोग नहीं कर सकूंगा ।

बस, इसी दुष्ट विचार के कारण उसने एक षड्यंत्र रचा । उस षड्यंत्र की गन्ध किसी को भी नहीं लगने दी । उसने 'पुरोचन' नाम के दूत को तैयार कर युधिष्ठिर के पास भेजा ।

जंगल में एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे युधिष्ठिर के पास आकर पुरोचन दूत ने सर्वप्रथम बाह्य आदर भाव के प्रदर्शनपूर्वक प्रणाम किया । तत्पश्चात् क्षेमकुशलता की पृच्छा कर कहा-``हे राजेन्द्र ! दुर्योधन ने आपकी क्षेमकुशलता पूछी है और कहलाया है कि आप तो आर्य (उत्तम) पुरुषों में अग्रणी हो और मैं अनार्यों में अग्रणी हूँ । आप गुणीजनों में अग्रसर हो और मैं गुणहीनजनों में शेखर हूँ । आप सज्जनों में मूर्धन्य हो और मैं दुर्जनों में मूर्धन्य हूँ । आप सुबुद्धि वाले पुरुषों में अग्रणी हो और मैं दुर्बुद्धि वाले पुरुषों में अग्रणी हूँ । आप कृतज्ञ हो...और मैं कृतघ्न हूँ ।

``मैंने जुए में आपके साथ जो दुर्व्यवहार किया है, उसके लिए मेरे अपराध को आप क्षमा करें । आप हस्तिनापुर वापस पधारें और राज्य की धुरा को वहन करें । मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करूंगा ।

``यदि आप वचन-भंग के भय से हस्तिनापुर पधारने में संकोच का अनुभव करते हों...तो आप वारणावत नगर में पधारें और वहाँ नवनिर्मित महल में सुखपूर्वक रहें...आप जंगल के कष्टों का त्याग कर दें ।''

पुरोचन ने इतनी मधुर वाणी में ये बातें कहीं कि युधिष्ठिर को दुर्योधन की बात पर विश्वास आ गया ।

सचमुच, युधिष्ठिर जैसे उत्तम पुरुषों का हृदय भी सरल ही होता है, वे किसी पर भी तुरन्त अविश्वास नहीं करते हैं ।

पुरोचन की बात पर विश्वास करते हुए युधिष्ठिर ने कहा-``हम प्रतिज्ञा-

भंग के भय से हस्तिनापुर तो नहीं आ सकते हैं, परन्तु दुर्योधन की भावना है तो वारणावत नगर में जरूर आ जायेंगे ।'' इतना कहकर दूत को विदाई दे दी और युधिष्ठिर आदि ने वारणावत नगर की ओर प्रस्थान कर दिया ।

इधर युधिष्ठिर की सहमति मिलते ही दुर्योधन ने कुशल शिल्पियों की मदद से वारणावत नगर में एक भव्य महल का निर्माण करा दिया । उस महल की दीवारों में ऐसे पदार्थ डाले गए जो शीघ्र आग पकड़ सकें । कुछ ही दिनों में वह भव्य महल तैयार हो गया ।

युधिष्ठिर वगैरह वारणावत नगर पहुँच गए । वारणावत नगर के प्रजाजनों ने उनका हार्दिक स्वागत किया । तत्पश्चात् युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने उस महल में प्रवेश किया ।

दुर्योधन ने पाण्डवों के भोजन, रहन-सहन, वस्त्र आदि की समुचित व्यवस्था कर दी थी ।

पुरोचन भी पाण्डवों की सेवा में रहकर उनकी सेवा-शुश्रूषा आदि करने लगा । सभी पाण्डव हर्ष और आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे ।

कुन्ती माता को दान का व्यसन होने से वह अपने द्वार पर आए हुए याचकों को आदरपूर्वक दान देने लगी । इस प्रकार दानादि की शुभ प्रवृत्ति के द्वारा कुन्ती अपने आपको कृतार्थ मानने लगी ।

धीरे-धीरे समय बीतने लगा ।

विदुर के दूत का आगमन

पाण्डव वारणावत नगर में आनन्द-कल्लोल कर रहे थे । उसी बीच एक दिन हस्तिनापुर नगर से विदुर द्वारा भेजा गया एक दूत आ पहुँचा । एकान्त में ले जाकर, `प्रियंवद' नाम के दूत ने युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम किया । युधिष्ठिर ने अपने पिता-पितामह आदि की क्षेम-कुशलता सम्बन्धी पृच्छा की । तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने दूत को आगमन का कारण पूछा ।

दूत ने कहा-``मुझे विदुरजी ने आपको विशेष सन्देश कहने के लिए भेजा है ।''

``कौन-सा सन्देश ?'' अत्यन्त जिज्ञासापूर्वक युधिष्ठिर ने पूछा ।

दूत ने कहा-``विदुरजी ने कहलाया है कि तुम्हारे वनगमन के बाद भी दुर्योधन अपनी दुष्ट-बुद्धि से लेश भी निवृत्त नहीं हुआ है । उसके मन में

तुम्हारे प्रति वैर की आग अधिकाधिक प्रदीप्त होती जा रही है और उस आग में कर्ण व दु:शासन आदि घी उँडेलने का काम कर रहे हैं ।

``एक बार दुर्योधन, कर्ण और दु:शासन आदि के साथ मंत्रणा कर पुरोचन को आदेश दे रहा था ।

दुर्योधन ने कहा-**``जब तक मेरे आजन्म वैरी पाण्डव जीवित रहेंगे, तब तक मैं सुखपूर्वक राज्य नहीं कर पाऊंगा, अत: उनको वारणावत नगर में लाया जाय और महल में रखकर, उस महल को ही आग लगा दी जाय...इस प्रकार आग में पाण्डवों के भस्मीभूत हो जाने के बाद मैं सुखपूर्वक राज्य कर सकूंगा ।''**

``ओ युधिष्ठिर ! ज्योंही विदुरजी ने दुर्योधन के मुख से यह बात सुनी, त्योंही उनका मन भय से काँप उठा । वे सोचने लगे-दुष्ट मायावी दुर्योधन किसी भी प्रकार से पाण्डवों को खत्म करना चाहता है, तो क्यों न मैं पाण्डवों को पहले ही सावधान कर दूँ ?

``इस प्रकार विचार कर विदुरजी ने आपको सावधान करने के लिए मुझे आपके पास भेजा है । इतना ही नहीं, उन्होंने कहा है कि यह पुरोचन आगामी काली चतुर्दशी के दिन आपके महल में आग लगाएगा, काली चतुर्दशी के पूर्व आप इस महल में से सुरक्षित भाग सको, इसके लिए विदुरजी ने `शूनक' शिल्पी को भी साथ में भेजा है, जो इस महल के नीचे के भाग में से सुरंग खोद देगा । चतुर्दशी के पूर्व यह सुरंग तैयार हो जाएगी...और आग लगने के पूर्व ही आप इस सुरंग द्वारा सुरक्षित स्थान में पहुँच सकोगे ।''

दूत के मुख से दुर्योधन के इस षड्यंत्र की बात सुनकर युधिष्ठिर को अत्यन्त आश्चर्य हुआ ।

भीम और अर्जुन तो बहुत कुपित हुए, तुरन्त ही सभी भाइयों ने मिलकर उस महल की दीवारों की जाँच की । जाँच करने पर पता चला कि इनमें जूट, घास व तैल आदि पदार्थों का प्रयोग किया गया है, जो जल्दी आग पकड़ते हैं ।

दुर्योधन के षड्यंत्र को जानने के साथ ही भीम को अत्यधिक गुस्सा आया । उसने कहा-``मुझे आप आज्ञा दें, मैं अभी हस्तिनापुर जाकर अपनी गदा से दुर्योधन को खत्म कर डालूँ ।''

भीम की बात से सभी सहमत हो गए, परन्तु युधिष्ठिर ने कहा-``हमें ऐसी प्रवृत्ति करना उचित नहीं है । हमें अपनी नैतिक-मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।''

युधिष्ठिर ने कहा-``पुरोचन जब महल में आग लगाए, उससे पूर्व ही हम सुरंग से बाहर निकल जायेंगे ।'' इस प्रकार सबको समझाकर शान्त किया ।

युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त कर, शूनक महल के नीचे के भाग में सुरंग खोदने लगा । अपनी विशिष्ट कुशलता के कारण उसने काली चतुर्दशी के पूर्व सुरंग तैयार कर दी । उस सुरंग का प्रवेश द्वार महल के एक भाग में था और उस सुरंग का निर्गमन द्वार `द्वैतवन' में था ।

महल में आग

दिन बीतने लगे । सभी पाण्डव पुरोचन के बाह्य आदर भाव से सावधान बन चुके थे । काली चतुर्दशी का दिन आया । कुन्ती प्रतिदिन याचकों को दान देती थी । काली चतुर्दशी के दिन एक बुढ़िया अपने पाँच पुत्रों और एक पुत्रवधू के साथ वहाँ आई । कुन्ती ने उन्हें अत्यन्त प्रेम से भोजन कराया । अत्यन्त थके हुए होने से उस वृद्धा ने उस महल में ही रात्रिविश्राम किया ।

इधर रात्रि के प्रारम्भ में ही अवसर देखकर पुरोचन ने महल में आग लगा दी । सभी पाण्डव आज सावधान बने हुए थे । भीम ने अपने भाइयों को माता व द्रौपदी सह सुरंग में रवाना कर दिया था । वह स्वयं अकेला महल के द्वार पर खड़ा था । ज्योंही पुरोचन ने उस महल में आग लगाई...और भीम को इस बात का पता चला, त्योंही उसने पुरोचन को गले से पकड़कर उसी आग में डाल दिया । दुष्ट बुद्धि के कारण वह पुरोचन मरकर नरक में गया । पुरोचन को आग में धकेलने के बाद भीम भी उस सुरंग में नीचे उतर गया ।

पुण्यशाली का स्वतःरक्षण

शारीरिक शक्ति से भी पुण्य का बल बढ़ जाता है । कहावत भी है- ``मारने वाले के दो हाथ होते हैं तो बचाने वाले के हजार हाथ होते हैं ।''

'बाल न बाँका करि सके, जो जग बैरी होय ।'

सारी दुनिया भी यदि पुण्यशाली व्यक्ति की दुश्मन बन जाय, तो भी पुण्य के बल से उसका स्वतः रक्षण हो जाता है अथवा उसे रक्षण का उपाय सूझ जाता है ।

◆ दुर्योधन ने पाण्डवों को जला डालने के लिए भयंकर षडयंत्र रचा, परन्तु पाण्डव अपने पुण्योदय से आबाद बच निकले ।

युधिष्ठिर आदि सुरंगमार्ग से द्वैतवन में पहुँच गए । आगे बढ़ने के बाद कुन्ती को याद आया कि वृद्धा आदि 7 व्यक्ति जो महल में सोये हुए थे, उन्हें जगाना तो वह भूल ही गई । सभी पाण्डवों को इस बात का अत्यन्त दुःख हुआ, परन्तु अब क्या हो सकता था ।

सात व्यक्तियों की जली हुई लाशों को देखकर दुर्योधन ने कल्पना कर ली कि पाण्डव आदि सभी जलकर समाप्त हो चुके हैं ।

दूसरे की मृत्यु में आनन्द पाना-यही तो अधमता की निशानी है ।

युधिष्ठिर को सन्तान

वारणावत नगर के महल में से सुरंग द्वारा सभी पाण्डव, कुन्ती व द्रौपदी द्वैतवन में आ पहुँचे । सुरंग पार होने के बाद वे द्वैतवन में आगे बढ़े । पथरीले मार्ग, कँटीले काँटों, ऊबड़खाबड़ रास्ते पर चलते-चलते द्रौपदी व कुन्ती थककर चूर हो गई ।

राजमहलों के सुखों में पली-पोषी कुन्ती व द्रौपदी की यह दशा देखकर युधिष्ठिर का मन दुःख से भर आया । वह सोचने लगा,

न जानाति प्रिया दुःखमेकस्मिन्नपि भर्तरि ।
पञ्चस्वपि प्रियेष्वेका क्लिश्यते द्रुपदात्मजा ।।

``अहो, एक पति के जीवित होने पर भी पत्नी किसी दुःख का अनुभव नहीं करती है, जबकि यहाँ पाँच पति होने पर भी द्रौपदी भयंकर दुःख का अनुभव कर रही है ।''

``एक ही सुपुत्र के अस्तित्व में माता सुख के सागर में मस्त रहती है, जबकि यहाँ पाँच पुत्र होने पर भी हम अपनी माता को सुख नहीं दे पा रहे हैं । अहो ! कर्म की कैसी विचित्र गति है, महलों में जन्मे हुए को जंगलों में भटका देता है और जंगल में उत्पन्न हुए को राजसिंहासन पर आरूढ़ कर देता है ।

``अहो ! इन सब की आपत्ति में कारण तो मैं स्वयं ही हूँ । एक जुए के व्यसन के अधीन बनकर मैंने इन सबको आपत्ति में डाल दिया ।'' युधिष्ठिर को अपनी भूल का भारी पश्चाताप हो रहा था, परन्तु अब उसके पास कोई उपाय भी तो नहीं था ।

भीम का पराक्रम

युधिष्ठिर को म्लानमुख देखकर भीम ने कहा-``भैय्या ! आप चिन्ता क्यों करते हो ? माताजी व द्रौपदी थकी हुई हैं तो मैं उन्हें अपने कन्धों पर उठा लेता हूँ । आप निश्चिन्त रहें, लेश भी खेद न करें ।''

इतना कहकर भीम ने अपने दाहिने कन्धे पर कुन्ती को और अपने बाएँ कन्धे पर द्रौपदी को बिठा लिया...और तेजी से आगे बढ़ने लगा । कुछ आगे बढ़ने पर नकुल और सहदेव भी थक गए । महाकाय भीम ने उन दोनों को भी अपनी दोनों भुजाओं पर उठा लिया और क्रमशः आगे बढ़ने लगा ।

भीम के दिल में कौटुम्बिक भावना थी । वनवासकाल में भीम ने कई रूपों में अनेक बार सभी भाइयों की सहायता की ।

रात्रि का समय हुआ । सभी ने विश्राम किया । दूसरे दिन सुबह अर्जुन कहीं से फल आदि ले आया । फलाहार आदि कर वे पुनः आगे बढ़े । भीम भी थक चुका था । कुछ समय के लिए उसने भी विश्राम किया । तत्पश्चात् पुनः वे सब वन की ओर आगे बढ़े । महाकाय भीम ने उस दिन भी कुन्ती व द्रौपदी को अपने कन्धों पर आरूढ़ कर मार्ग पार कराया ।

इस प्रकार आगे बढ़ते हुए वे एक वृक्ष के नीचे आ पहुँचे । भीम को छोड़कर सभी वृक्ष के नीचे शान्ति से सो गए । रात्रि में तृषातुर बनी कुन्ती ने पानी की याचना की । तृषा के कारण कुन्ती का गला सूख रहा था । कुन्ती को तृषाक्रान्त देखकर भीम पानी की शोध में निकल पड़ा । एक-दो मील चलने के बाद किसी सरोवर के किनारे पहुँचा । उस सरोवर में से पानी लेकर वह अपनी माँ कुन्ती के पास आया । जलपान से कुन्ती की तृषा शान्त हुई । शरीर अत्यन्त थका हुआ होने से उसे भी नींद आ रही थी । वह भी वहीं भूमि पर सो गई ।

चारों भाई और कुन्ती व द्रौपदी वृक्ष के नीचे सोये हुए थे । एकमात्र भीम प्रहरी बनकर जाग रहा था ।

जमीन पर सोए हुए अपने भाइयों की दयनीय स्थिति देखकर भीम की आँखें डबडबा आईं । वह सोचने लगा, ``अहो ! कहाँ महल और कहाँ जंगल ? कहाँ युधिष्ठिर को सोने के लिए मखमल की गद्दी और कहाँ आज भूमि-शयन ? कहाँ महलों में एक साथ अनेक सेवकों की उपस्थिति और कहाँ

आज कोई सेवक दिखाई नहीं दे रहा है ? कहाँ सुगन्धित धूप व दीप से युक्त महलों का मघमघायमान वातावरण और कहाँ आज का करुण जीवन।''

``कुन्ती व द्रौपदी की खुशहाली आज नष्ट हो चुकी है, जंगल के लेश भी कष्टों को कभी नहीं सहने वाली कुन्ती व द्रौपदी को हमारे साथ दर-दर भटकना पड़ रहा है, यह हमारे लिए कितने दुर्भाग्य की बात है ?

``अहो ! ये नकुल और सहदेव। कितने आनन्द से महलों में आनन्द-कल्लोल करते थे और कहाँ आज हमारे साथ इन्हें भी दरदर की ठोकरें खानी पड़ रही हैं।''

अपने सगे भाइयों और माता व पत्नी की इस दयनीय स्थिति को देखकर भीम की आँखों में आँसू आ गए।

हिडम्बा राक्षसी का आगमन

भीम का मन अत्यन्त शोकग्रस्त बना हुआ था। उसी समय सामने एक भयानक आकृति आती हुई दिखाई दी। भीम एकदम सावधान हो गया। भीम ने देखा–पीली आँखों वाली, भीषण आकार को धारण करने वाली एक स्त्री सम्मुख आ रही है...वह स्त्री ज्यों-ज्यों निकट आने लगी त्यों-त्यों वह अपने रूप का परिवर्तन करने लगी। भीम के निकट आते ही वह एक खूबसूरत नवयौवना के रूप में परिवर्तित हो गई। उसकी मुखाकृति अत्यन्त मनोहर और रमणीय बन गई। उसके अंग-प्रत्यंग से लावण्य बिखरने लगा। वह सुकुमारी भीम के एकदम निकट आ गई।

उसके रूप-परिवर्तन को देखकर भीम ने उससे पूछा-``तू कौन है ? और इस प्रकार तूने अपना रूप क्यों परिवर्तित किया है ?''

भीम के पूछने पर उस रूपवती कन्या ने कहा-``यहाँ पास में ही हिडम्ब नाम का वन है, उन वन में हिडम्ब नाम का राक्षस रहता है, जो मेरा भाई है। मैं उसकी बहिन हिडम्बा हूँ। मेरे भाई और मेरे पास राक्षसी विद्याएँ हैं।

``मैं अपने भाई के साथ अपने महल में वार्ता-विनोद कर रही थी, तभी मेरे भाई को मनुष्य की गन्ध आने लगी। उसे बड़ी कड़ी भूख भी लगी हुई थी, अतः उसने मुझे आदेश दिया कि आसपास से मनुष्य को मारकर उसे यहाँ ले आ।

``भाई का आदेश प्राप्त कर मैं महल से निकल पड़ी। मैंने दूर से ही

वृक्ष के नीचे सोए हुए मनुष्यों को देखा । मैने सोचा-मैं इन सब को मारकर अपने भाई को सौंप दूंगी, जिससे वह आनन्द से अपनी भूख मिटा सकेगा...परन्तु ज्योंही मैं निकट आई...मैंने आपका अद्‌भुत रूप देखा । आपके रूप ने मेरे मन को मोह लिया । मेरे दिल में कामवासना जागृत हो गई...अतः मैंने तुरन्त ही अपने विकृत रूप को बदल लिया...और रतिसुन्दरी जैसा रूप बना लिया । मैं निशाचरी हूँ, आप मुझे अपने जीवन की सहचरी बनायें, मैं आपके साथ लग्न करना चाहती हूँ...आप मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करें । आपके साथ मेरा लग्न हो जाने पर मेरा भाई भी आपको हैरान नहीं करेगा ।''

चाक्षुषी विद्या का स्वीकार

हिडम्बा राक्षसी के लग्न प्रस्ताव को सुनकर भीम ने कहा-``तेरी प्रार्थना ठीक है, लेकिन मेरे चारों भाई यहाँ सोए हुए हैं, मेरी माता भी सोई हुई है और पास में ही हम पाँच भाइयों की पत्नी द्रौपदी भी सोई हुई है । हम उससे सन्तुष्ट हैं, अतः दूसरी पत्नी की इच्छा भी नहीं करते हैं ।''

भीम की बात सुनकर हिडम्बा ने कहा, ``आप मुझे स्वीकारो या न स्वीकारो, यह आपके हाथ की बात है, परन्तु मैं आपको हृदय से वर चुकी हूँ । मैं आपकी आजीवन दासी बन चुकी हूँ । यह जीवन आप ही के चरणों में समर्पित है ।''

हिडम्बा की यह बात सुनकर भीम ने कहा-``तेरे दिल में यदि मेरे प्रति प्रेम का प्रकर्ष है तो तू मुझे अपनी चाक्षुषी विद्या प्रदान कर ।''

भीम की यह बात सुनते ही हिडम्बा ने वह चाक्षुषी विद्या भीम को प्रदान कर दी । इस विद्या-प्राप्ति के फलस्वरूप चारों ओर प्रकाश फैल गया ।

हिडम्ब राक्षस से युद्ध

हिडम्ब राक्षस अपनी बहिन की प्रतीक्षा कर रहा था । हिडम्बा के नहीं लौटने पर वह स्वयं भीम के सम्मुख आने लगा । कामातुर बनी हुई अपनी बहिन को देखकर हिडम्ब राक्षस के क्रोध का पार न रहा । वह अत्यन्त कुपित होकर अपनी बहिन को मारने के लिए तैयार हो गया ।

तभी भीम ने गर्जना करते हुए कहा-``अरे दुष्ट राक्षस ! निर्दोष ऐसी अपनी बहिन को मारते हुए तुझे शर्म नहीं आ रही है ? उसे मारने के पूर्व

तू मेरे सामने आ जा, मेरी यह गदा तेरी प्रतीक्षा कर रही है । मैं आँखों के सामने स्त्री-हत्या के पाप को नहीं देख सकता हूँ ।''

भीम की यह गर्जना सुनकर वह राक्षस भीम की ओर उछल पड़ा और उन दोनों के बीच भयंकर द्वन्द्व चालू हो गया ।

सत्य व शील का चमत्कार

सभी पाण्डव धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे । इसी बीच वनसौन्दर्य को देखने में लीन बनने के कारण द्रौपदी पीछे रह गई । सभी पाण्डव व कुन्ती काफी आगे निकल गए थे ।

तभी द्रौपदी ने गर्जना कर आते हुए सिंह को देखा । पहले तो वह घबरा गई, फिर साहस कर एक रेखा खींच कर बोली-**''यदि मेरे स्वामी युधिष्ठिर ने अपने जीवन में कभी सत्य की रेखा का उल्लंघन नहीं किया हो तो यह सिंह भी इस रेखा का उल्लंघन न करे ।''**

सचमुच यही हुआ, वह सिंह उस रेखा के भीतर न आ सका और युधिष्ठिर के सत्य-धर्म के प्रभाव से वह दूर से ही चला गया । द्रौपदी निर्भय बनकर आगे बढ़ने लगी ।

इसी बीच एक भयंकर सर्प सामने से आता हुआ दिखाई दिया । पहले तो द्रौपदी एकदम भयभीत हो गई...परन्तु फिर सावधान होकर बोली-**''यदि मैंने मन, वचन और काया से अपने शीलधर्म का पालन किया हो तो यह सर्प अपनी दिशा में वापस चला जाय ।''** द्रौपदी के इतना कहते ही वह सर्प अपनी दिशा में वापस चला गया ।

सती की महिमा का वर्णन तो बृहस्पति के लिए भी अगम्य है ।

इधर पाण्डवों ने जब द्रौपदी को नहीं देखा तो वे चारों ओर द्रौपदी की खोज करने लगे ।

भीम और हिडम्बा का लग्न

वनमार्ग में हिडम्बा ने अनेक बार द्रौपदी व कुन्ती की सहायता की थी । उसकी इस भक्ति से प्रसन्न होकर कुन्ती ने कहा-``अरे हिडम्बा ! तूने हमारा खूब-खूब उपकार किया है, अतः बोल, तेरी क्या इच्छा है ?''

हिडम्बा ने कहा-``मैं आपका क्या उपकार कर सकती हूँ ? फिर भी

आप कृतज्ञतावश कुछ देना चाहती हैं तो आप भीम को आदेश करें कि वह मुझे पत्नी रूप में स्वीकार करे ।''

माता की आज्ञा से भीम और हिडम्बा का लग्न हो गया । वे धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे ।

मुनिवर की देशना और हिडम्बा द्वारा मांसाहार-त्याग

सभी पाण्डव निरन्तर आगे बढ़ रहे थे । एक दिन वे एकचक्रानगरी के बाहर आ पहुँचे । नगर के बाह्य उद्यान में स्वर्ण-कमल पर बैठकर धर्मघोष नाम के केवली भगवन्त धर्मदेशना दे रहे थे । सभी पाण्डव धर्मदेशना सुनने लगे । केवली भगवन्त ने दयामय धर्म का उपदेश दिया । जीव-हिंसा से होने वाले अनर्थों की परम्परा समझाई, जिसे सुनते ही हिडम्बा ने आजीवन मांसाहार-त्याग का निर्णय कर लिया और गुरु भगवन्त की साक्षी में प्रतिज्ञा ले ली ।

कुन्ती की पृच्छा

देशना-समाप्ति के बाद कुन्ती ने भगवन्त से पूछा-``भगवन्त ! मेरे इन पुत्रों का दुःख कब दूर होगा ?''

भगवन्त ने कहा-``अल्प समय में ही तेरे पुत्र दुःख से मुक्त बन जाएंगे और राज्य-सुख का त्याग कर अन्त में संयम धारण कर शाश्वत पद के भोक्ता बनेंगे ।''

केवली भगवन्त के मुख से यह भविष्यवाणी सुनकर सभी पाण्डव हर्षित हुए ।

हिडम्बा गर्भवती हुई । कुन्ती ने कहा-``हिडम्बा ! अब हम इसी नगर में कुछ समय रहेंगे, अतः तू अभी अपने घर चली जा...गर्भ का सावधानीपूर्वक रक्षण करना और जब हम याद करें, तब तुम चली आना ।''

कुन्ती की आज्ञा से हिडम्बा आकाश-गामिनी विद्या से अपने घर चली आई और वहाँ जिनमन्दिर का निर्माण कर परमात्मा की भक्ति में अपना समय व्यतीत करने लगी ।

बकासुर राक्षस-वध

हिडम्बा को विदाई देकर सभी पाण्डव ब्राह्मण वेष धारण कर एकचक्रानगरी में प्रविष्ट हुए । नगर में प्रवेश करने के साथ ही देवशर्मा ब्राह्मण ने उनका हार्दिक स्वागत किया और उन सबको वह अपने घर ले गया ।

कहावत है-``पुण्यशाली के पगले निधान'' पुण्यशाली जहाँ पैर रखता है, वहाँ स्वतः निधान प्रगट हो जाता है ।

देवशर्मा ब्राह्मण ने पाण्डवों की खूब आवभगत की और उसने उन्हें अपने ही घर पर रोक लिया ।

समय बीतने लगा ।

एक दिन देवशर्मा ब्राह्मण की पत्नी जोर-जोर से रोने लगी । उसका रुदन सुनकर कुन्ती ने उसका कारण पूछा ।

ब्राह्मण पत्नी सावित्री ने कहा, ``इस नगर के बाहर बकासुर नाम का राक्षस है । वह एक दिन नगर के प्रजाजनों का संहार करने के लिए तैयार हो गया था; तो लोगों ने उसकी पूजादि की और उसे सन्तुष्ट किया । तत्पश्चात् उसकी माँग के अनुसार राजा ने यह निश्चित किया कि नगर में से प्रतिदिन एक व्यक्ति बकासुर के पास जाएगा । आज हमारे परिवार की बारी है । मेरा पति जब जाने के लिए तैयार हुआ तब मैंने कहा, आप यहीं रहकर परिवार का रक्षण करो, मैं चली जाती हूँ । मेरी बात सुनकर मेरा पुत्र जाने के लिए तैयार हो गया । राक्षस के पास जाने का समय हो चुका है, परन्तु अभी तक निर्णय नहीं हो पाया है कि कौन जाय ?''

सावित्री के मुख से यह सब सुनकर तुरन्त ही कुन्ती-पुत्र भीम राक्षस के पास जाने के लिए तैयार हो गया । उस ब्राह्मण ने भीम को रोकने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु भीम नहीं माना । पराक्रमी भीम उस राक्षस के पास पहुँच गया और उसने अपने पराक्रम से उस राक्षस का काम तमाम कर दिया ।

पाण्डवों का भव्य स्वागत

एकचक्रानगरी में कुछ समय पूर्व ही केवली भगवन्त ने कहा था कि हस्तिनापुर से राज्यभ्रष्ट बने पाण्डवों द्वारा इस राक्षस का वध होगा ।

इस बात को याद कर सभी ने निश्चय कर लिया कि ``बकासुर राक्षस का वध करने वाला अन्य कोई नहीं, किन्तु पाण्डव ही है ।'' इस बात का पता चलते ही ब्राह्मण वेष में रहे पाण्डव प्रगट हो गए । वहाँ के महाराजा ने पाण्डवों का भव्य स्वागत किया । चारों ओर पाण्डवों का मान-सम्मान बढ़ गया ।

एक दिन युधिष्ठिर ने सोचा ``हमारी यहाँ चारों ओर ख्याति और

प्रसिद्धि हो रही है, इस बात का ज्योंही दुर्योधन को पता चलेगा वह कुछ-न-कुछ अनिष्ट प्रवृत्ति किए बिना नहीं रहेगा, अतः क्यों न उसके पूर्व ही सावधान बनकर यहाँ से सुरक्षित निकल जाँय ।'' इस प्रकार विचार कर युधिष्ठिर ने अपना यह विचार अपने भाइयों के समक्ष रखा और भाइयों की सहमति के साथ ही एक रात्रि में सभी पाण्डवों ने उस नगरी का त्याग कर दिया । रात्रि-विहार दरम्यान भीम को प्राप्त चाक्षुषी विद्या अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुई ।

धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए वे सभी द्वैतवन में पहुँच गए । एक विशाल वृक्ष की छाया में झोंपड़ी बनाकर आनन्द से दिन व्यतीत करने लगे ।

कुन्ती माता परमात्मा के नामस्मरण में लीन रहती थी । भोजन-निर्माण आदि का कार्य द्रौपदी ने सँभाल लिया था । समय बीतने लगा ।

प्रियंवद दूत का आगमन

एक बार युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों के साथ आनन्द कल्लोल कर रहा था, तभी अर्जुन ने एक धनुर्धर को आते हुए देखा । ज्योंही वह धनुर्धर निकट आया, युधिष्ठिर ने उसे तुरन्त पहचान लिया ।

``अहो ! यह तो प्रियंवद है..अपने महल का रक्षक''

निकट आते ही प्रियंवद ने सर्वप्रथम युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम किया । तत्पश्चात् युधिष्ठिर की आज्ञा से वह भूमितल पर बैठा ।

इस भयंकर जंगल में प्रियंवद का आगमन देख युधिष्ठिर को भी भारी आश्चर्य हुआ ।

युधिष्ठिर ने पूछा-``प्रियंवद ! अचानक आगमन कैसे हुआ ? हस्तिनापुर में तातपाद पाण्डु, पितामह, विदुर, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य आदि कुशल तो हैं न ? मेरा भाई दुर्योधन भी कुशल है न ?''

प्रियंवद जवाब देता उससे पहले ही युधिष्ठिर ने आगे और पूछ लिया-``लाक्षागृह में आग लगने के बाद क्या हुआ ?'' ``हम यहाँ पर हैं । इस बात का तुझे कैसा पता चला ?''

युधिष्ठिर के ये सभी प्रश्न सुनकर प्रियंवद ने कहा-``राजन् ! ज्योंही पुरोचन ने आपके महल में आग लगाई, उस आग में 5 पुरूष व दो स्त्रियाँ भी जलकर भस्मीभूत हो गई थीं । वारणावत-नगरवासियों को जब इस बात का

पता चला, तब उन्होंने जोर-शोर से रुदन चालू कर दिया था। सम्पूर्ण नगर में हाहाकार मच गया था। उस महल में सात शवों को देखकर सभी ने अनुमान कर लिया कि सभी पाण्डव, कुन्ती व द्रौपदी आग में जल मर चुके हैं।''

वायुवेग से ये समाचार हस्तिनापुर पहुँच गए। मैं स्वयं उस जले हुए महल को देखने के लिए आया। जब मैंने पाँच पुरुष शवों और दो स्त्री शवों को देखा तो मेरे आघात का पार न रहा। मैंने सोचा-``अग्नि के धुएँ में सुरंग का मार्ग नहीं मिलने के कारण शायद पाण्डव ही जलकर मर गए होंगे।''

उन मृतदेहों के समाचार जब मैंने हस्तिनापुरवासियों को दिये, तब भीष्म पितामह, पाण्डु, माद्री आदि सभी करुण क्रन्दन करने लगे। प्रजाजनों में से जिन्होंने भी आपकी मृत्यु के समाचार सुने, वे सब बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़े।

हस्तिनापुर में सभी बहुत दुःखी थे। दुर्योधन के हृदय में आनन्द समा नहीं रहा था, परन्तु बाहर से तो वह भी शोक का नाटक कर रहा था।

आपकी मृत्यु के समाचार ज्योंही सत्यवती को मिले, उसे इतना अधिक आघात लगा कि तत्क्षण उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। पाण्डु आदि अत्यन्त करुण विलाप करने लगे। विदुर सोचने लगा-``अहो ! मैंने उन पाण्डवों को पहले से ही जागृत कर दिया था, फिर भी वे कैसे भूल कर बैठे ? मैंने कहलाया भी था-तुम किसी का विश्वास मत करना...परन्तु किसी के विश्वास के कारण ही उन्हें बेमौत मरना पड़ा।''

पाण्डु को अत्यन्त शोक-सन्तप्त देखकर विदुर ने कहा-``बड़े भाई ! आप सन्ताप न करें। जो भी सत्य होगा, वह प्रकट हुए बिना नहीं रहेगा।'' इस प्रकार शोकसागर में डूबे हुए पाण्डु ने कुछ दिन व्यतीत किए। तभी एक दिन एकचक्रानगरी से आए हुए व्यक्ति से समाचार मिले कि भीम ने बकासुर राक्षस का वध किया है और सभी पाण्डव एकचक्रानगरी में आनन्द-कल्लोल कर रहे हैं।

पाण्डवों के ये शुभ समाचार पाकर पाण्डु ने अपना शोक दूर किया और उस शोक ने दुर्योधन को चारों ओर से घेर लिया। पाण्डवों की कीर्ति की बात सुनकर दुर्योधन का हृदय ईर्ष्या से जलने लगा। पाण्डव जीवित हैं-इस प्रकार के समाचार सुनते ही दुर्योधन भयभीत हो उठा।

पाण्डवों को खत्म करने के लिए दुर्योधन ने भयंकर जाल रचा था और अपने षड्यंत्र की सफलता को जानकर मन ही मन वह खुश हो रहा था, परन्तु ज्योंही उसे पाण्डवों की जीवन्तता के समाचार मिले, उसके होश हवास उड़ने लगे । वह एकदम बेचैन हो उठा । उसकी इस दयनीय स्थिति को देख, उसके मामा शकुनि ने कहा-``दुर्योधन ! तुम्हारे शरीर में क्या कोई रोग है ? इस प्रकार चिन्ताग्रस्त होकर अपने शरीर को दुबला क्यों बना रहे हो ?''

दुर्योधन ने कहा-``मामाजी ! वारणावत नगरी में पाण्डवों के महल में आग लगाने पर भी वे जीवित बच गए...और उन पाण्डवों ने तो बकासुर राक्षस का भी वध कर दिया है । उनको मार डालने की मेरी सारी योजना निष्फल गई...इतना ही नहीं, चारों ओर उनकी कीर्ति फैल रही है, इस प्रकार के समाचार से मेरा हृदय टूट-फूट रहा है । अतः अब ऐसा कोई उपाय बताओ, जिससे पाण्डवों को यम का अतिथि बनाया जा सके ।''

दुर्योधन की यह बात सुनकर शकुनि ने कहा-``दुर्योधन ! तू व्यर्थ ही सन्ताप कर रहा है । वे पाण्डव तो दर-दर जंगल में भटक रहे हैं और तुम तो विशाल साम्राज्य के स्वामी हो । वे तो अपने भाग्य से ही मर चुके हैं, उनको मारने की चिन्ता क्यों करते हो ?'' ``तुम्हारे पास विशाल साम्राज्य है, लक्ष्मी का भण्डार भरपूर है, विशाल सेना है ।''

दुर्योधन ने कहा-``मैंने सुना है, वे पाण्डव अभी द्वैतवन में हैं ।''

शकुनि ने कहा-``तुम विशाल गोकुल व सैन्य को लेकर उस वन में जाओ और अपनी समृद्धि उन पाण्डवों को दिखाओ । तुम्हारी इस विशाल समृद्धि को देखकर वे बेचारे ईर्ष्या से जलकर ऐसे ही मर जाएंगे । इतना होने पर भी यदि भीम और अर्जुन तुम्हारे साथ लड़ने के लिए तैयार हो जाँय तो भी तुम्हारे सैन्य के आगे वे कैसे टिक सकेंगे !...उनकी मृत्यु के साथ ही यह पृथ्वी पाण्डवरहित हो जाएगी...उसके बाद तुम पृथ्वीतल पर निष्कंटक राज्य कर सकोगे ।''

शकुनि और दुर्योधन की इस गुप्त मंत्रणा का पता विदुर को चल गया । विदुर को पता चलते ही आपको सावधान करने के लिए उन्होंने मुझे आपके पास भेजने का निर्णय किया ।

भीम-अर्जुन से भयभीत दुर्योधन

दूत के मुख से हस्तिनापुर के सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर युधिष्ठिर ने पूछा-``दुर्योधन प्रजा का अच्छी तरह से पालन तो करता है न ! पितामह आदि की सेवा करता है न !''

प्रियंवद ने कहा-``इस बात में तो दुर्योधन ने कमाल ही किया है । वह सतत प्रजा के हित का ख्याल करता है और उसने अपने ज्येष्ठ पूर्वजों के दिल को भी जीत लिया है ।

इतना होने पर भी वह सतत भयभीत बना रहता है । उसे बारम्बार भीम और अर्जुन की प्रतिच्छाया दिखाई देती है, जिसे देखकर वह अत्यन्त काँप उठता है । कई बार तो स्वप्नावस्था में भी भीम व अर्जुन को देखकर यकायक चिल्लाने लग जाता है । भीम का स्मरण हो जाने से मृत्यु के भय से भोजन करते समय उसका हाथ वैसे ही स्थिर हो जाता है और कभी-कभी तो वह कवल भी नीचे गिर पड़ता है ।

शकुनि व दुर्योधन की आपको खत्म कर डालने की गुप्त मंत्रणा को जानकर, विदुरजी की आज्ञा से मैं आपकी खोज में एकचक्रानगरी गया था । परन्तु मेरे मन्द भाग्य से आप मुझे मिले नहीं । मैंने नगरवासियों को पूछा, परन्तु वे भी आपका सही स्थान न बता सके । आखिर आपकी खोज करता हुआ मैं द्वैतवन में आ पहुँचा और मेरे भाग्योदय से आपके दर्शन हो गए ।''

प्रियंवद दूत के मुख से इस प्रकार की समस्त घटनाओं का वर्णन सुनने के बाद युधिष्ठिर ने कहा, ``हे भद्र ! तुम हस्तिनापुर में जाकर मेरे पिता-पितामह आदि को प्रणाम कहना । उनकी सब आज्ञा मैं शिरोधार्य करता हूँ । उनके शुभाशीर्वाद से कोई भी शत्रु हमारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा । पितामह आदि को हम यहाँ बैठे हुए हृदय से नमस्कार करते हैं, वे हमारे नमस्कार को स्वीकार करें ।'' प्रियंवद ने पुनः युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम किया । युधिष्ठिर ने उसे आशीर्वाद दिया...और प्रियंवद ने हस्तिनापुर की ओर प्रयाण कर दिया ।

द्रौपदी का आक्रोश

प्रियंवद के मुख से दुर्योधन की दुष्टता भरी चेष्टाओं की जानकारी पाकर द्रौपदी भावावेश में आ गई । राजसभा में वस्त्रहरण से लेकर एक के

बाद एक प्रसंग उसकी आँखों के सामने आने लगे । वह एकदम गुस्से से लाल हो गई और युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए बोली ``अहो ! दुर्योधन की नीचता की सीमा नहीं है ? छल-कपट कर उसने आपका राज्य छीन लिया...राजसभा के बीच वह दुष्ट दुःशासन मुझे बालों से पकड़ कर ले आया...अपने महान् पूर्वजों के बीच उस दुष्ट दुर्योधन ने मुझे अपनी जंघा बतलाई । अरे ! उस कर्ण ने मुझे वेश्या कहा...इस प्रकार की निर्लज्ज प्रवृत्ति कुरु-वंश में हुई । उसके बाद भी आपको वन में भटकना पड़ा । वारणावत नगर के महल में उसने आग लगवाई...अब भी वह शान्त नहीं बैठा है...और आगे भी वह आपको मारने का षड्यन्त्र रच रहा है, फिर भी आश्चर्य है कि आप इस प्रकार हाथ पर हाथ धरकर क्यों बैठे हैं ?''

``ओ माता कुन्ती ! मुझे तो आप वंध्या ही प्रतीत हो रही हो । चारों ओर जिनके बाहुबल की सभी प्रशंसा करते हैं आज उनका वह बाहुबल कहाँ चला गया ?''

``राजसभा में मेरा भयंकर अपमान हुआ...उसके बाद भी एक जंगली पुरुष की भाँति जंगल में भटकना पड़ रहा है...ऐसी स्थिति में भी आपके पुत्रों का खून क्यों नहीं उबलता है ?''

``हाँ ! मुझे इसका पता चल गया है, क्योंकि आपके पुत्र धर्मपुत्र हैं...और धर्मपुत्र होने से वे पाप का आचरण कैसे कर सकते हैं ? उनकी क्षमा उचित ही है । अन्यथा वे इस प्रकार शत्रु का पराभव कैसे सहन करते ?''

``अरे ! मेरे पराभव की उन्हें चिन्ता भले न हो, परन्तु वे अपने माता-पिता के पराभव को भी भूल गए । माता कुन्ती की क्या हालत है ? राजमहलों में आनन्द से कल्लोल करनेवाली कुन्ती को आज चारों ओर जंगल में भटकना पड़ रहा है । आप कुछ तो विचार करो ।''

``अरे ! आपके ये भाई, जो देवदूष्य जैसे कीमती वस्त्र-आभूषणों से अलंकृत बनकर शोभते थे आज वे वल्कल के वस्त्र धारण कर रहे हैं...और बड़ी कठिनाई से जंगल के फल-फूल खाकर अपना जीवन-निर्वाह कर रहे हैं ! आप उन पर तो दया करो । ''

``हे प्राणेश ! यह सब करुण स्थिति देखते हुए भी आपको लज्जा क्यों नहीं आ रही है ? हाँ ! यदि प्रतिज्ञा-भंग के भय से आप सभा में शान्त

रहे हो तो भी अब तो आपको हाथ में हथियार उठाना चाहिए । इतना होने पर भी यदि आपको प्रतिज्ञा-भंग का ही भय लगता हो तो आप भीम और अर्जुन को आदेश करें । वे शत्रु के नाश के लिए सतत उत्साही हैं ।''

द्रौपदी की अन्तिम बात को सुनकर भीम ने कहा-``हे बन्धुवर्य ! आपके आदेश के कारण ही मैं राजसभा में दुर्योधन का वध नहीं कर पाया था, अब आप मुझे आज्ञा करें तो मैं अभी हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन को खत्म कर डालूँ ।''

भीम की इस बात में सहमति देते हुए अर्जुन ने कहा-``बड़े भैय्या ! भीम की बात एकदम सत्य है...बस, अब आप हमें आज्ञा प्रदान करो ।''

युधिष्ठिर का प्रत्युत्तर

द्रौपदी, भीम व अर्जुन की आक्रोशभरी बातें सुनकर अत्यन्त शान्त स्वर में युधिष्ठिर ने कहा-``बन्धुओ ! तुम्हारी बात एक दम सत्य है । तुम्हारे वचन क्षत्रियों के अनुरूप हैं...मैं तुम्हारे शौर्य को देखकर प्रसन्न बना हूँ, परन्तु जुए में हारने के कारण मैंने 13 वर्ष के वन-जीवन को स्वीकार किया है, अतः उस प्रतिज्ञा का पालन करना ही उचित है । तुम कुछ वर्ष ठहर जाओ...फिर उसके बाद तुम्हारी जो भावना है, उसे अवश्य साकार करेंगे । वनवास-जीवन की शर्त को पूर्ण किए बिना हस्तिनापुर में जाकर दुर्योधन के पास से राज्य हड़प लेना हम क्षत्रियों के लिए उचित नहीं है ।''

युधिष्ठिर ने कहा-**``दुर्योधन यदि अपनी दुर्जनता का त्याग नहीं करता हो तो हम अपनी सज्जनता क्यों छोड़ें ? हमें अपनी लक्ष्मणरेखा का उल्लंघन नहीं करना है । याद रखें...हमेशा सत्य की ही जीत होती है । अभी आप शान्त रहें, अवसर आने पर आपको युद्ध के लिए तैयार होना ही है ।''**

इस प्रसंग में युधिष्ठिर की महानता के साक्षात् दर्शन होते हैं । सभी पाण्डव एक ओर हो गए, जबकि युधिष्ठिर अकेला रह गया...फिर भी उसने बुद्धिमत्ता से सबको शान्त कर दिया । युधिष्ठिर ने क्षमाधर्म को आत्मसात् किया था ।

कोई आग बने तो हमें पानी बनना चाहिए । क्रोध आग है, क्षमा पानी है । पानी के आगे आग का अस्तित्व टिक नहीं सकता है, उसी प्रकार क्षमा के आगे क्रोध टिक नहीं सकता है ।

गन्धमादन पर्वत की ओर प्रयाण

सभी को शान्त कर युधिष्ठिर ने कहा-``दुर्योधन को इस बात का पता चल गया है कि हम द्वैतवन में हैं, वह व्यर्थ ही उपद्रव करेगा । इसके बजाय हम स्वयं ही यहाँ से निकल कर गन्धमादन पर्वत की ओर चलें ।''

सभी ने युधिष्ठिर की बात स्वीकार की और धीरे-धीरे सभी आगे बढ़े । मार्ग में आने वाले तीर्थों की यात्रा व परमात्मा की भक्ति करते हुए सभी पाण्डव गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे । गन्धमादन पर्वत के पास इन्द्रकील नाम का पर्वत था । उस पर्वत के प्राकृतिक सौन्दर्य को देख अर्जुन ने कहा-``बड़े भैय्या ! मैं इस पर्वत पर अपनी विद्याओं का पुनरावर्तन करना चाहता हूँ । आप मुझे आज्ञा प्रदान करें ।'' युधिष्ठिर ने अर्जुन को आज्ञा दी-वह उस पर्वत पर जाकर विद्या साधने लगा ।

अपने जीवन की रक्षा के लिए युधिष्ठिर आदि पाण्डव गन्धमादन पर्वत पर आ गए ।

युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन पास में रहे इन्द्रकील पर्वत पर अपनी विद्याओं का अभ्यास करने लगा । इन्द्रकील पर्वत पर रहकर उसने अनेक विद्याएँ सिद्ध कीं । रथनूपुर नगर के महाराजा `इन्द्र' के साथ उसकी गाढ़ दोस्ती हो गई ।

एक बार चित्रानंद आदि विद्याधर अर्जुन के पास धनुर्विद्या का शिक्षण लेने के लिए आये । अर्जुन ने कुछ ही समय में उन सबको धनुर्विद्या में निपुण बना दिया । गुरुदक्षिणा में वे अपना सर्वस्व देने के लिए तैयार हो गए, परन्तु अर्जुन ने कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया ।

परस्पर मिलन

इन्द्र राजा के साथ सम्मेतशिखर आदि तीर्थों की यात्रा कर अर्जुन गन्धमादन पर्वत पर आ गया । विद्याधरों के साथ आए हुए अर्जुन ने सर्वप्रथम माता के चरणों में प्रणाम किया । माता ने उसे हृदय से आशीर्वाद दिया । तत्पश्चात् युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम कर सभी विद्याधर विदा हुए ।

विद्याधरों के जाने के बाद अर्जुन ने युधिष्ठिर को पूछा, ``आपने इतना समय कहाँ और कैसे बिताया ?''

युधिष्ठिर ने कहा-हमने अपना अधिकांश समय तीर्थों की यात्रा में बिताया। अनेक शाश्वत-अशाश्वत तीर्थों की यात्रा कर हमने अपनी आत्मा को पावन किया।

एक बार द्रौपदी एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई थी, तभी पवन-वेग से उड़कर एक विलक्षण कमल उसकी गोद में आकर गिरा। उस कमल की दिव्य सुगन्ध और उसके सौन्दर्य को देख द्रौपदी के मन में ऐसे अन्य और कमल प्राप्त करने की इच्छा पैदा हो गई। उसने अपनी बात भीम को कही। युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त कर भीम उस कमल की शोध में निकल पड़ा।

भीम गायब हो गया

युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम कमल लेने के लिए निकल पड़ा। काफी समय बीतने के बाद भी जब भीम नहीं लौटा तो युधिष्ठिर ने सोचा-``हमें उसका पता लगाना चाहिए।'' तभी युधिष्ठिर को अनिष्ट-सूचक अपशकुन होने लगे। फिर भी युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ भीम की खोज में आगे बढ़ा।

मार्ग में एक भयंकर नदी आई। युधिष्ठिर ने कहा-``भीम के बिना यह नदी कौन पार कराएगा ?''

तभी अर्जुन ने कहा, ``आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए, मैं अपनी विद्या के बल से आप सबको नदी पार करा दूँ।''

युधिष्ठिर ने हिडम्बा का स्मरण किया। तत्क्षण हिडम्बा भीम जैसी आकृति वाले पुत्र को लेकर उपस्थित हो गई।

युधिष्ठिर ने पूछा-``यह भीम जैसी आकृति वाला बालक कौन है ?''

हिडम्बा ने कहा-``यह तो भीम का ही पुत्र है। एकचक्रानगरी से वन में जाने के बाद मैंने इस बालक को जन्म दिया था। इसका नाम **'घटोत्कच'** रखा है।'' पाण्डवों ने अत्यन्त स्नेह से उस बालक का आलिंगन किया। हिडम्बा की मदद से सभी पाण्डव उस सरोवर के किनारे आ गए, तत्पश्चात् उन्होंने हिडम्बा को विदाई दी।

पाण्डवों ने उस दिव्य सरोवर को देखा। उस सरोवर में अत्यन्त सुन्दर दिव्य पुष्प खिले हुए थे, जो मन को मोह लेते थे।

भीम ने उस सरोवर में प्रवेश किया । वह सुन्दर फूल तोड़-तोड़कर द्रौपदी की ओर फेंकने लगा । भीम उस सरोवर में आगे बढ़ने लगा...परन्तु यह क्या ? कुछ ही समय बाद भीम उस सरोवर में डूब गया । कहीं भी उसके चिह्न नजर नहीं आ रहे थे । भीम को अदृश्य हुआ देख कुन्ती ने अर्जुन को कहा-``अरे अर्जुन ! जरा देख । भीम दिखाई नहीं दे रहा है, सम्भव है, किसी जलचर ने उसे दबोच लिया हो ।''

माता की बात सुनते ही अर्जुन उस सरोवर में कूद पड़ा...और कुछ ही क्षणों में वह भी अदृश्य हो गया ।

तभी क्रमशः नकुल और सहदेव ने भी उस सरोवर में डुबकी लगाई...परन्तु वे भी अदृश्य हो गए ।

अपने चारों भाइयों पर आई हुई आपत्ति को देखकर युधिष्ठिर भी शान्त कैसे रह सकता था ? वह भी सरोवर में कूद पड़ा...और वह भी अदृश्य हो गया ।

कायोत्सर्ग-साधना की प्रचण्ड शक्ति

अपने पाँचों पतियों के इस प्रकार एकदम गायब हो जाने से द्रौपदी चिन्तातुर हो गई और वह एकदम विलाप करने लगी ।

द्रौपदी को आश्वासन देते हुए माता कुन्ती ने कहा-``बेटी ! तू क्यों व्यर्थ विलाप करती है, केवली भगवन्त की उस बात को तू याद कर, उन्होंने क्या कहा था ? ये पाण्डव तो दीर्घकाल तक राज्य का पालन कर संयम स्वीकार करेंगे । अतः तू व्यर्थ चिन्ता मत कर । पापोदय से उन पर कोई आपत्ति आई है तो उसके निवारण के लिए हमें कायोत्सर्ग की साधना करनी चाहिए ।''

इस प्रकार द्रौपदी को आश्वासन देकर कुन्ती ने उसे शान्त किया...तत्पश्चात् वे दोनों कायोत्सर्ग-ध्यान में लीन हो गईं ।

कायोत्सर्ग में विघ्ननाश, उपसर्गनाश और कर्मनाश की प्रचण्ड शक्ति रही हुई है ।

दैविक बल को जागृत करने के लिए कायोत्सर्ग एक अमोघ उपाय है । शर्त यह है कि यह साधना निष्काम भाव से और मन-वचन और काया की शुद्धिपूर्वक होनी चाहिए ।

विघ्न-नाश

कुन्ती व द्रौपदी के कायोत्सर्ग के प्रभाव से प्रातःकाल होते ही आकाशमार्ग से एक सुन्दर देदीप्यमान विमान का अवतरण हुआ । उस विमान में से पाँचों पाण्डव एक दिव्य पुरुष सहित बाहर आए ।

उस दिव्य पुरुष ने कहा-``हे कुन्ती ! आपके धर्म के प्रभाव से आपके पुत्र आपके समक्ष उपस्थित हैं ।''

कुन्ती ने कायोत्सर्ग पूर्ण कर मीठी नजर से अपने पुत्रों को देखा । उसने द्रौपदी को भी कायोत्सर्ग पूर्ण कराया ।

कुन्ती ने पूछा-``मेरे ये पुत्र सरोवर में कैसे गुम हो गए और विमान से कैसे बाहर आए ?''

उस दिव्य पुरुष ने कहा-``पास ही में नागराज का सरोवर है, उस सरोवर के कमलों को तोड़ने के लिए नागराज ने इन पाण्डवों को पकड़ लिया ।

``इधर किसी महर्षि को केवलज्ञान उत्पन्न होने से इन्द्र महाराजा विमान में बैठकर जा रहे थे । तभी अचानक उनका विमान स्खलित हुआ । विमान की स्खलना का कारण जानकर इन्द्र ने मुझे आज्ञा दी-``पुत्र व पति के वियोग में ये दोनों स्त्रियाँ कायोत्सर्ग में बैठी हुई हैं, अतः तुम नागराज के पास जाकर पाण्डवों को बन्धन-मुक्त कर उन्हें अपनी माता को सौंप दो ।''

इन्द्र की आज्ञा से मैं नागराज के पास गया और मैंने नागराज को इन्द्र की आज्ञा सुनाई । इन्द्र की आज्ञा सुनते ही नागपति ने पाण्डवों के बन्धन तोड़ दिये और उन्हें अपने आसन पर बिठाकर स्वागत किया ।

तत्पश्चात् नागपति ने युधिष्ठिर को एक मणिमाला तथा द्रौपदी के लिए कर्णाभूषण भेंट किये । वहाँ से विदा लेकर, आपके पुत्रों को लेकर मैं यहाँ आया हूँ । अब आप जो भी आज्ञा करना चाहें, खुशी से कीजिए ।''

तभी कुन्ती ने कहा-``हमें द्वैतवन में छोड़ दो ।'' उसी समय उस देव ने सभी पाण्डवों को द्वैतवन में छोड़ दिया...और अपने स्थान पर लौट गया ।

भानुमती की पति-भिक्षा

युधिष्ठिर आदि पाण्डव आनन्दपूर्वक द्वैतवन में अपने दिन बिता रहे थे । तभी एक दिन अत्यन्त करुण रुदन करती हुई एक स्त्री को युधिष्ठिर ने देखा । स्त्री के करुण रुदन को सुनकर युधिष्ठिर का हृदय दया से भर आया...ज्योंही वह स्त्री निकट आई, कुन्ती ने उसे तुरन्त पहचान लिया...``ओहो ! यह तो दुर्योधन की पत्नी भानुमती है । इसकी ऐसी दुर्दशा कैसे हो गई और यह जोर-जोर से रुदन क्यों कर रही है ?''

भानुमती ने आकर माता कुन्ती के चरणों में प्रणाम किया...तत्पश्चात् वह जोर-जोर से रोने लगी । माता कुन्ती ने उसे आश्वासन दिया । अपने पल्लू से उसके आँसू पोंछते हुए मधुर स्वर से बोली, ``बेटी भानुमती ! तू इतना रुदन क्यों कर रही है ?''

भानुमती ने अपना आँचल युधिष्ठिर के सामने फैला दिया ।

युधिष्ठिर ने इसका कारण पूछा । भानुमती ने कहा-``मैं अपने पति के प्राणों की भिक्षा मांगने के लिए यहाँ आई हूँ ।''

भानुमती की यह बात सुनते ही अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर युधिष्ठिर ने कहा-``अहो ! क्या मेरा भाई आपत्ति में है ? जल्दी बताओ, किसने उसे आपत्ति में डाला है ?''

दीन बनकर भानुमती ने कहा, ``आपका भाई दुर्योधन गोकुल को देखने के लिए द्वैतवन में आ रहा था । उसने अपने सैनिकों को आवास के लिए योग्य स्थान की खोज करने का आदेश दिया ।

``सैनिकों ने खोज करके दुर्योधन को कहा-``हे राजन् ! नन्दनवन के समान पास में सुन्दर वन है..उस वन में सुन्दर महल भी है, परन्तु वहाँ खड़े रक्षक किसी को भी भीतर प्रवेश नहीं करने देते हैं ।''

सैनिकों की यह बात सुनकर दुर्योधन ने कहा-``जाओ ! तुम्हें रोकने वाला कौन है ? जो रोके, उसे खत्म कर डालो ।''

बस, दुर्योधन की आज्ञा होते ही सैनिकों ने उन रक्षकों को बन्धनग्रस्त कर दिया...तभी दुर्योधन ने उस महल में प्रवेश किया । कर्ण, दुःशासन आदि के साथ दुर्योधन उस महल में रहने लगा । दुर्योधन स्वच्छन्दतापूर्वक उस उद्यान में घूमने लगा । उसके सैनिक उस वन के सौन्दर्य को नष्ट करने लगे ।

तभी एक दिन आकाशमार्ग से विद्याधर की श्रेणी नीचे उतरने लगी और दुर्योधन के सैन्य के साथ लड़ने लगी । विद्याधरों के पराक्रम के आगे दुर्योधन के सैनिक टिक न सके और वे दुम दबाकर युद्धभूमि से भागने लगे । तभी दुर्योधन की आज्ञा से सोमदत्त, जयद्रथ, भूरिस्त्रवा, कृतवर्मा आदि लड़ने लगे...परन्तु विद्याधरों के शस्त्र-प्रहार के सामने वे भी टिक न सके ।

``आखिर महापराक्रमी कर्ण युद्धभूमि में उतरा...परन्तु बलवान विद्याधरों ने उसे भी युद्धभूमि से भगा दिया ।

``अपने सैन्य के पराजय को देखकर दुर्योधन स्वयं शस्त्र सज्ज होकर युद्धभूमि में आ गया । दुर्योधन युद्धभूमि में अपनी पूरी ताकत से लड़ा...परन्तु विद्याधरों के आगे वह भी नहीं टिक सका । विद्याधरों के अधिपति ने उसे पैरों में बेड़ी डालकर बन्धनग्रस्त कर दिया ।

``अपने पति की यह दुर्दशा देखकर मैं भी युद्धभूमि में गई और इकट्ठे हुए राजाओं को कहने लगी...तुम्हारा बल और पराक्रम कहाँ गया ?''

दुर्योधन के कैद के समाचार सुनकर भीष्म, द्रोण तथा कृपाचार्य आदि भी धृतराष्ट्र को राज्य की धुरा सौंपकर जल्दी यहाँ आ गए । उनके चरणों में गिरकर मैं रोने लगी ।

आखिर भीष्म ने कहा-``बेटी रो मत ! जो होने वाला था, वह हो गया । दुर्योधन को छुड़ाने की ताकत हमारे में से तो किसी के पास है नहीं परन्तु हाँ ! इस कार्य के लिए एकमात्र युधिष्ठिर ही शक्तिशाली है, अतः तू उसके पास जा । युधिष्ठिर महान् है । अपने अपकारी के अपकार को भी भूलकर उसकी मदद करना, यह उसका स्वभाव है । अतः तू उसके पास जा ।''

``भीष्म की यह बात सुनकर मैं आपके पास अपने पति के प्राणों की भिक्षा माँगने के लिए आई हूँ, अब आपको जो उचित लगे, वह शीघ्र करें ।''

भीम का आक्रोश

दुर्योधन पर आई हुई आपत्ति को देखकर भीम तो खुश हो गया । ``जैसे को तैसा'' की नीति को मानने वाला भीम अत्यन्त नाराजगी बताते हुए बोला-**``राजसभा में द्रौपदी के केश खिंचवाने वाले और द्रौपदी को अपनी जंघा**

बताने वाले पापी को अपने पाप का फल मिल रहा है । ऐसे पापियों को तो सजा मिलनी ही चाहिए । यह पापी अपने पाप से ही नष्ट हो रहा है...तो इसकी कैसी सहायता की जाय ।''

भीम की यही इच्छा थी कि युधिष्ठिर भानुमती से सहायता करने की बात न करे और इसीलिए वह युधिष्ठिर को वारणावत नगर में दुर्योधन द्वारा आग लगवाने की बात याद कराने लगा ।

युधिष्ठिर की महानता

भानुमती की आपत्ति की बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा-``हे भानुमती ! मेरे भाई पर यह कैसी आपत्ति आ गई ? तू निश्चिन्त रह । मैं अपने भाई को बन्धन से मुक्त कराऊंगा ।''

इस प्रकार भानुमती को आश्वासन देकर, एकान्त में अर्जुन को बुलाकर कहा, ``अर्जुन ! अपना भाई दुर्योधन आपत्ति में है, आपत्ति में रक्षण करना भाई का कर्त्तव्य है, अतः तू जल्दी जा और दुर्योधन को बन्धन से मुक्त कराकर आ ।''

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर भीम को भारी दुःख हुआ । उसने युधिष्ठिर को दुर्योधन की दुष्टताभरी चेष्टाएँ पुनः याद दिलाईं ।

युधिष्ठिर ने कहा, ``भीम ! मेरे छोटे भाई का पराभव वास्तव में, मेरा ही पराभव है । कौरव और पाण्डवों के बीच भले ही अनबन हो; वे सौ हम पाँच भले ही रहें...परन्तु अन्य कोई दुश्मन हम पर आक्रमण करे, तब हम पाँच नहीं किन्तु एक सौ पाँच हैं ।''

''जब तक घर में मतभेद का प्रश्न हो, तब भले ही हम अलग रहें, परन्तु जब कोई बाहरी शक्ति आकर हम पर आक्रमण करे, तब तो हमें एक होना ही चाहिए । उस समय भी हम एकता धारण न करें तो हमारा अस्तित्व ही खतरे में समझना चाहिए ।''

दुर्योधन की मुक्ति

अपने ज्येष्ठ बन्धु युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त होते ही अर्जुन, दुर्योधन को बन्धनमुक्त कराने के लिए रवाना हो गया । अर्जुन ने उसी समय `इन्द्र'

का स्मरण किया। बस, उसी समय इन्द्र का सैन्य उपस्थित हो गया। विशाल सैन्य के साथ अर्जुन ने आकाशमार्ग से प्रयाण किया।

दुर्योधन को ज्योंही पता चला कि उसे बन्धनमुक्त कराने के लिए अर्जुन आया है, त्योंही लज्जा से उसका मुख नीचा हो गया। अर्जुन के बल से बन्धन-मुक्ति, उसे अत्यन्त ही अखरने लगी। वह मृत्यु की इच्छा करने लगा। दुर्योधन सोचने लगा, **``मौत आ जाय तो अच्छा, किन्तु जीवन भर अर्जुन के उपकार तले जीना मेरे लिए अत्यन्त ही असह्य है।''**

दुर्योधन इस प्रकार सोच रहा था कि उसके सामने ही वह विद्याधर अर्जुन के पैरों में गिर पड़ा। तभी अर्जुन ने उस विद्याधर को पूछा-``अरे चित्रानंद ! क्या बात है ? तूने मेरे भाई को कैद क्यों कर दिया ?''

चित्रांनंद ने कहा, ``अर्जुन ! आपके पास से विदाई लेकर जब मैं अपने नगर की ओर जा रहा था तभी मार्ग में मुझे नारदजी मिले। मैंने नारदजी को प्रणाम किया।''

नारदजी ने कहा-``चित्रांनंद ! अपने उपकारी के उपकार के बदले को चुकाने का अवसर आ गया है।''

मैंने पूछा-``नारदजी ! मैं कुछ भी समझा नहीं हूँ, आप स्पष्ट करें।''

नारदजी ने कहा-``चित्रांनंद ! दुर्योधन अपने भाइयों को खत्म करने के लिए द्वैतवन की ओर आ रहा है, अतः अर्जुन आदि का रक्षण करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।''

इधर नारदजी ने अपना वाक्य पूर्ण किया और उधर मेरे अनुचरों ने आकर कहा-``दुर्योधन ने आपके क्रीड़ावन को नष्ट कर दिया है।''

``बस, अनुचरों की यह बात सुनते ही मेरे क्रोध का पारा चढ़ गया। मैंने अपने सैन्य को दुर्योधन से लड़ने के लिए आज्ञा दे दी...मेरे सैन्य ने दुर्योधन के सैन्य को परास्त कर दिया और अन्त में मैंने दुर्योधन को कैद कर लिया।''

अपनी बात समाप्त करते हुए चित्रांनंद ने कहा, ``पूज्यवर ! आप ही बतलाइये, इसमें मेरा क्या दोष है ?''

अर्जुन ने कहा, ``तुम तो निर्दोष हो, तुमने अपना कर्त्तव्य अदा किया है, परन्तु ज्येष्ठ बन्धु की आज्ञा है कि भानुमती अपने पति की प्राण-भिक्षा मांग

रही है...तो हमें उस दुर्योधन को बन्धनमुक्त कराना ही चाहिए- अपने भाई की इस आज्ञा से ही दुर्योधन को छुड़ाने के लिए मैं आया हूँ ।'' अर्जुन की आज्ञा सुनकर चित्रांनंद ने दुर्योधन को बंधन-मुक्त कर दिया ।

अर्जुन व चित्रांनंद का यह वार्तालाप सुनकर दुर्योधन अत्यन्त दुःखी हो गया । उसे लगा कि मेरे षड्यंत्र का भेद खुल गया ।...अर्जुन के हाथों होने वाली बन्धन-मुक्ति उसे अत्यन्त अखरने लगी ।

युधिष्ठिर का सौजन्य

अर्जुन, चित्रांनंद तथा दुर्योधन आदि एक ही विमान में बैठकर युधिष्ठिर के पास आए ।

युधिष्ठिर के पास आने पर भी दुर्योधन ने किसी प्रकार का उचित व्यवहार नहीं किया । अन्य विद्याधरों ने युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम किया, परन्तु दुर्योधन ने युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम भी नहीं किया ।

कहा भी है-**''विष के भार को वहन करने पर भी सर्प कभी गर्जना नहीं करता है, जबकि बिच्छू तृणमात्र विष से गर्वित बनकर अपनी पूँछ के काँटे को खड़ा रखता है ।''**

इतना होने पर भी युधिष्ठिर ने अपनी सज्जनता का त्याग नहीं किया । उसने अत्यन्त प्रेम से दुर्योधन को गले लगाया और उसकी क्षेम-कुशलता की पृच्छा की ।

युधिष्ठिर ने कहा-``हे बन्धु ! तुम उद्विग्न क्यों दिखाई देते हो ? क्या तेजस्वी ऐसे सूर्य-चन्द्र भी कभी दुर्दशा को प्राप्त नहीं होते हैं ? उनको भी तो राहु ग्रसित करता है । हे दुर्योधन ! शूरवीर के साथ हुई हार के कारण पश्चात्ताप नहीं करना चाहिए ।''

``हे दुर्योधन ! तुम शीघ्र ही हस्तिनापुर पहुँच जाओ, तुम्हारे बिना प्रजाजनों की क्या हालत हो रही होगी ?'' इतना कहकर युधिष्ठिर ने फल-फूल व भोजन आदि से दुर्योधन का सत्कार कर उसे विदा दी ।

इस देश की संस्कृति की यही तो महानता है । भारत की महान् संस्कृति हमें अपकारी के प्रति भी उपकार करना सिखाती है । इस देश में युधिष्ठिर जैसे अनेक सत्पुरुष पैदा हो गए हैं, जिन्होंने थोड़ा-बहुत सहन करके अपने अपकारी का भी रक्षण किया है ।

द्रौपदी का अपहरण

एक बार जयद्रथ अपने सैन्य के साथ द्वैतवन में आ पहुँचा । दामाद समझकर कुन्ती ने जयद्रथ का हार्दिक स्वागत किया । किन्तु जयद्रथ ने द्रौपदी का अपहरण कर लिया ।

साँप को दूध पिलाया जाय तो वह जहर ही बनता है । बस, इसी प्रकार कुन्ती व पाण्डवों ने तो जयद्रथ का स्नेह से स्वागत किया था, परन्तु उसने अपनी दुष्टता का त्याग नहीं किया । द्रौपदी चिल्लाने लगी । द्रौपदी का करुण स्वर सुनकर भीम और अर्जुन ने जयद्रथ का पीछा किया और उसे पकड़ कर माता कुन्ती ने पास ले आए ।

कुन्ती की महानता

भीम और अर्जुन ने जयद्रथ को पकड़ लिया । वे उसे मारने के लिए तैयार हो गये...परन्तु उसी समय महासती कुन्ती ने कहा-``पुत्रो ! जयद्रथ को शिक्षा भले ही करो...परन्तु उसे मारना मत, अन्यथा तुम्हारी बहिन दु:शल्या को विधवापन का दु:ख सहन करना पड़ेगा ।''

माता का यह आदेश प्राप्त कर भीम और अर्जुन ने जयद्रथ को मारने का विचार छोड़ दिया । उसके मस्तक पर थोड़े से बाल रखकर उन्होंने उसका मुंडन कर दिया और उसे छोड़ दिया ।

नारदजी का आगमन, दुर्योधन की दुष्ट नीति

एक बार पाण्डव मस्ती से द्वैतवन में आनन्द-कल्लोल कर रहे थे, तभी अचानक वहाँ नारदजी का आगमन हुआ । युधिष्ठिर आदि पाण्डवों ने नारदजी का हार्दिक स्वागत किया । औपचारिक विधि हो जाने के बाद युधिष्ठिर ने पूछा, ``आपके आने का विशेष प्रयोजन ?''

नारदजी ने कहा-``मैं विशेष प्रयोजन से ही यहाँ आया हूँ । दुर्योधन की दुष्ट नीति से आपको सावधान करने के लिए ही आया हूँ ।''

युधिष्ठिर ने पूछा-``दुर्योधन यहाँ से किस प्रकार गया और उसने क्या योजना बनाई है ?''

नारदजी ने कहा-``आपने दुर्योधन को बन्धनमुक्त किया, परन्तु यहाँ

से जाने के बाद, आपके प्रति उसके दिल में वैर की भावना अधिक प्रज्वलित हुई है। यहाँ से वह बड़ी कठिनाई से दुःशासन के कन्धों पर हाथ रखकर चल रहा था। आगे बढ़ने पर उसने ज्योंही अपने भाइयों के शरीर पर लोहे की बेड़ियों के घाव देखे...उसके दुःख का पार न रहा। बीच मार्ग में ही उसने एक वृक्ष के नीचे दुःशासन को बिठाया। इसी बीच कर्ण भी वहाँ आ पहुँचा। कर्ण ने उसे आश्वासन देते हुए कहा- ``हे राजन् ! आप चित्रांगद के बन्धन से मुक्त हो गए। अच्छा हो गया, अन्यथा पता नहीं, आपकी क्या हालत होती।''

कर्ण की यह बात सुनकर कुपित हुए दुर्योधन ने कहा-``अरे सूतपुत्र कर्ण ! तुझे तो अपमान सहन करने की आदत पड़ गई है। तू अपमान को शान्ति से सहन कर सकता है, परन्तु मेरे लिए तो यह असह्य है।''

``हे कर्ण ! पराजय की अपेक्षा भी मुझे अर्जुन से हुआ छुटकारा अत्यन्त दुःख दे रहा है, इसके बजाय तो मेरी मृत्यु हो गई होती तो वह मुझे अधिक पसन्द पड़ती। ये पाण्डव तो मेरे लिए शत्रु समान ही हैं।''

कर्ण ने कहा-``इन पाण्डवों ने तो तुम्हें बन्धन से मुक्त कराया है, अतः उनके साथ विरोध मत करो।''

तभी वहाँ आए हुए धृतराष्ट्र ने कहा, **``हे दुर्योधन ! इन पाण्डवों ने तुझे चित्रांगद के बन्धन से मुक्त किया है, इन्होंने तो तुम्हारे साथ सौजन्य का व्यवहार किया है, अतः तुम दुर्जन मत बनो, अपनी दुर्जनता छोड़ दो, उनके साथ मैत्री का सम्बन्ध करो और हस्तिनापुर चलो।''**

तभी कर्ण ने कहा-``हे राजन् ! आप व्यर्थ ही खेद क्यों करते हो ? संग्राम में बहुत से शूरवीर जय प्राप्त करते हैं तो बहुत से पराजय भी प्राप्त करते हैं। अपने भाइयों से हुई बन्धन-मुक्ति का विचार छोड़ दो। वे तो आपके सेवक हैं और स्वामी की रक्षा करना सेवक का कर्तव्य है, अतः पाण्डवों के उपकार के तले दब जाने का विचार छोड़ दो।''

तभी आसपास छावनी में रहे सभी राजा वहाँ इकट्ठे हो गए। उन सबके साथ दुर्योधन हस्तिनापुर आ गया।

हस्तिनापुर के राज्य-वैभव को भोगते हुए भी दुर्योधन को कहीं शान्ति का अनुभव नहीं हो रहा था।

पाण्डव-नाश की उद्घोषणा

अत्यन्त कृतघ्न बने उस दुर्योधन ने एक बार अपने मंत्रियों के द्वारा नगर में उद्घोषणा करवाई-``जो कोई व्यक्ति अस्त्र-शस्त्र तथा मंत्र-तंत्र के बल से द्वैतवन में रहे पाण्डवों को सात दिन में समाप्त करेगा, दुर्योधन उसे अपना आधा राज्य प्रदान करेगा ।''

इस प्रकार की उद्घोषणा सुनकर दुष्ट पुरोचन के भाई सुरोचन ने यह बीड़ा उठाया । वह दुर्योधन के पास आया और उसने अपनी शक्ति का परिचय दिया ।

उसने कहा-``मेरे भाई पुरोचन की हत्या करने के कारण ये पाण्डव मेरे दुश्मन हैं, मैंने कुछ समय पूर्व ही कृत्या राक्षसी की साधना की है, वह कृत्या राक्षसी इन पाण्डवों को अवश्य समाप्त करेगी ।'' इतना कहकर दुर्योधन की आज्ञा से वह सुरोचन कृत्या राक्षसी को जागृत करने के लिए अपने घर चला गया ।

दुर्योधन का षड्यंत्र

दुर्योधन के षड्यंत्र का वर्णन पूर्ण करते हुए नारदजी ने कहा-``हे पाण्डवो ! कृत्या एक भयंकर राक्षसी है, अतः उस उपद्रव से सावधान करने के लिए ही मैं आपके पास आया हूँ ।'' इतना कहकर नारदजी वहाँ से चले गए ।

नारदजी के चले जाने के बाद भीम ने कहा-``बड़े भैया ! आने दो उस कृत्या राक्षसी को । मेरी गदा उसके मस्तक का चूरा कर देगी ।''

भीम की यह बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा-``भीम ! तुम्हारी बात ठीक है, परन्तु वह दिखाई दे तब न ! वह तो अदृश्य बनकर भी यहाँ आ सकती है । राक्षसी की जाति अत्यन्त भयंकर होती है । वह छल-कपट करने में निपुण होती है । जीवन में जो कुछ भी कष्ट आता है, वह अपने ही दुष्कर्मों के कारण आता है, अतः उन कर्मों के उन्मूलन के लिए हमें विशेष प्रकार की धर्माराधना में उद्यमवन्त बनना चाहिए ।

धर्म से पापनाश और पापनाश से दुःखनाश

जीवन में जो कुछ भी दुःख या कष्ट आता है, वह अपने ही भूतकाल में किये गये दुष्कर्म का फल है । अतः उस दुष्कर्म के फलभूत दुःख के निवारण

के लिए विशेषतः धर्माराधना करनी चाहिए । अज्ञानी व्यक्ति दुःख के निवारण के लिए नये पाप का ही आश्रय लेता है, इस प्रकार पापाचरण कर पुनः नये दुःख को आमन्त्रण देता है ।

◆ ***पूर्व के पापोदय से धन नहीं मिलता हो तो अज्ञानी व्यक्ति धनार्जन हेतु अन्याय-अनीति का आश्रय लेता है...जिसके फलस्वरूप वह भावी में भी दुःख को ही आमंत्रण देता है ।***

अज्ञानी व्यक्ति श्वानवृत्ति वाले होते हैं । दुःख आने पर वे दुःख के कारणभूत पाप-निवारण के लिए प्रयत्नशील नहीं बनते हैं, जबकि ज्ञानी व्यक्ति सिंहवृत्ति वाले होते हैं । सिंह पर कोई गोली छोड़े तो वह गोली की ओर नजर न कर, गोली छोड़ने वाले की ओर नजर करता है, जबकि श्वान पत्थर फेंकने वाले की उपेक्षा कर पत्थर को चाटने लगता है ।

अज्ञानी व्यक्ति दुःख आने पर, दुःख के बाह्य निमित्त को प्रधानता देता है, जबकि ज्ञानी, दुःख आने पर दुःख के कारणभूत कर्म को हटाने के लिए प्रयत्नशील बनता है ।

जप-साधना का आरम्भ

युधिष्ठिर ने कहा, ``भीम ! विघ्ननिवारण और कर्मक्षय के लिए तो तपपूर्वक जप का यज्ञ प्रारम्भ करना चाहिए । पंच परमेष्ठि-भगवन्तों के जाप के प्रभाव से अन्तर व बाह्य सभी विघ्न दूर हो जाते हैं । अतः 7 दिन तक आहार का त्याग कर हम जाप प्रारम्भ करें ।''

युधिष्ठिर की आज्ञा होते ही सभी पाण्डव अलग-अलग आसन में जाप में लीन हो गए ।

इस प्रकार जाप व ध्यान में लीन बने पाण्डवों ने छह दिन व्यतीत कर दिये ।

द्रौपदी का अपहरण

ध्यानमग्न पाण्डवों का आज सातवाँ दिन था । प्रातःकाल होते ही चारों ओर धूल उड़ने लगी और सम्पूर्ण आकाश-मण्डल धूल से भर गया । थोड़ी देर बाद वहाँ हाथियों और घोड़ों का आगमन होने लगा । क्रूर आकृति वाले सैनिकों ने आकर पाण्डवों को कहा-``अरे वनचरो ! यहाँ से भाग जाओ...अभी थोड़ी देर में 'धर्मावतंस' महाराजा का आगमन होने वाला है, अतः तुम यहाँ से दूर हट जाओ ।''

सैनिकों का यह कथन सुनकर अत्यन्त कुपित बने भीम ने कहा, ``हमें यहाँ से हटाने वाला कौन है ? किसके सिर पर काल-चक्र घूम रहा है ?'' इस प्रकार कहकर भीम ने उन सैनिकों को दूर हटा दिया। परन्तु थोड़ी देर में वहाँ चारों ओर से सैनिक आ गये और उन्होंने पाण्डवों को घेर लिया। पाण्डवों के साथ वे सब सैनिक लड़ने लगे। इस युद्ध में पाण्डव भी अपने स्थान से काफी दूर निकल चुके थे। उन्होंने उस सेना को तितर-बितर कर दिया।

इधर पाण्डवों के दूर चले जाने के बाद एक राजचिह्नयुक्त राजपुरुष द्रौपदी के पास आया। कुन्ती और द्रौपदी उसे देखकर घबरा गईं। वे दोनों जिनेश्वरदेव का स्मरण करने लगीं। इसी बीच राजपुरुष ने द्रौपदी को जबरन उठाया और उसे अपने साथ घोड़े पर बिठाकर भाग गया। द्रौपदी जोर-जोर से क्रन्दन करने लगी। उसके रुदन को सुनकर पाण्डव आ गए और उन्होंने उस घुड़सवार का पीछा किया। वह राजा तुरन्त ही उस सेना में घुस गया। अर्जुन ने सारी सेना पर बाणों की वृष्टि की।

पाण्डव मूर्च्छित हो गए

पाण्डव थक कर चूर हो गए थे। उन्हें अत्यन्त तृषा का अनुभव हो रहा था। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को कहा-``मुझे बहुत प्यास लगी है, तुम जल्दी जाकर कहीं से मेरे लिए पानी लाओ। पानी पीने के बाद द्रौपदी के अपहरणकर्त्ता को सबक सिखायेंगे।''

युधिष्ठिर की आज्ञा से नकुल और सहदेव पास के सरोवर से पानी लेने के लिए गए। सरोवर पर जाकर उन्होंने जलपान किया और कमल के दोने में पानी लेकर आने लगे। तभी बीच मार्ग में ही धड़ाम से नीचे गिर पड़े और बेहोश हो गए।

थोड़ी देर बाद युधिष्ठिर ने अर्जुन को भेजा। सरोवर का पानी पीने के बाद वह भी मार्ग में ही मूर्च्छित हो गया। उसके बाद भीम की भी यही हालत हुई।

चारों भाइयों को नहीं आते देखकर युधिष्ठिर स्वयं सरोवर के किनारे गया। अपने भाइयों को मूर्च्छित देखकर वह विलाप करने लगा। इसी बीच एक भील ने आकर युधिष्ठिर को कहा-``हे कायर पुरुष ! तुम्हारी स्त्री का

अपहरणकर्त्ता उसे चाबुक से मार रहा है और वह ``हे आर्यपुत्र ! हे आर्य-पुत्र !'' कहकर चिल्ला रही है, अतः पहले जाकर उसे छुड़ाओ ।''

युधिष्ठिर ने पानी पीकर उधर जाने का विचार किया, परन्तु ज्योंही उसने सरोवर का पानी पीया, वह भी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

कृत्या राक्षसी का आगमन

कुछ समय के बाद पाण्डवों की मूर्च्छा दूर हो गई । उन्होंने आँख खोलकर देखा तो पास में ही रत्नमाला के पवित्र जल को छाँटती हुई द्रौपदी दिखाई दी । पाण्डवों के आश्चर्य का पार न रहा ।

युधिष्ठिर ने पूछा-``प्रिये ! तेरा अपहरण हो गया था, वह अपहरण करने वाला राजा कहाँ गया ।''

द्रौपदी ने कहा-``स्वामिन् ! जब आप सरोवर के किनारे पानी पीने के लिए गए, तब वह राजा और सेना अदृश्य हो गई...जंगल में मैं अकेली थी...मैं एकदम घबरा गई और इधर-उधर भागने लगी । तभी हाथ में छह बाण व धनुष धारण किए हुए एक भील ने आकर मुझे कहा-``हे भद्रे ! तू इस निर्जन वन में अकेली क्यों है ?'' इतना कहकर उस भील ने मुझे और कुन्ती को यहाँ सरोवर के पास लाकर छोड़ दिया ।

इसी बीच चारों ओर से भयंकर आवाजें सुनाई देने लगीं । लम्बे-लम्बे दाँत, पीली-पीली आँखें, पीले-पीले बाल और अत्यन्त विकराल आकृति वाली राक्षसी को उन्होंने आकाशमार्ग से आती हुई देखा । वह भील भी किसी वृक्ष की ओट में छिप गया । वह कृत्या राक्षसी ही थी । उस राक्षसी ने आपके निस्पन्द देहों को देखा तो वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर दूसरी राक्षसी से बोली-``क्या उस दुष्ट ब्राह्मण ने मुझे मृत पाण्डवों को मारने के लिए भेजा है ? तू निकट जाकर देख, ये जीवित हैं या मृत ?''

वह दूसरी राक्षसी पाण्डवों के निकट आकर उन्हें देखने लगी । उसी समय उस भील ने कहा-**``मृतक का स्पर्श करना आपके लिए ठीक नहीं है । मुझे लगता है, सरोवर का जलपान करने से ये पाण्डव मर चुके हैं ।''**

तभी उस राक्षसी ने कृत्या राक्षसी से कहा-``ठगविद्या करने वाले उस ब्राह्मण को मार डालो, अन्यथा वह मंत्र-प्रयोग निष्फल चला जाएगा ।'' इस प्रकार बातचीत कर वे दोनों राक्षसियाँ वहाँ से चल पड़ीं ।

कृत्या राक्षसी के चले जाने के बाद मैं अत्यन्त करुण रुदन करने लगी। तभी उस भील ने मुझे कहा-``युधिष्ठिर के गले में से रत्नमाला निकाल कर, उसके जल का छिड़काव करो, ये सब अभी जागृत हो जाएंगे।''

मैंने वैसा ही किया और आप सब पुनः जागृत हुए।

युधिष्ठिर ने कहा-``वह परोपकारी भील कहाँ है ?''

द्रौपदी ने कहा-``इधर ही होगा।'' चारों ओर उस भील की खोज की गई, परन्तु वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया, यहाँ तक कि वह सरोवर भी गुम हो गया।

दिव्य पुरुष का आगमन

थोड़ी ही देर बाद युधिष्ठिर ने अपनी आँखों के सामने अत्यन्त तेजस्वी और अत्यन्त कान्तिमान दिव्य पुरुष के दर्शन किए। युधिष्ठिर को विस्मित देखकर उस दिव्य पुरुष ने कहा, ``यह सब कुछ आपकी धर्माराधना का ही चमत्कार है। मैं सौधर्मवासी इन्द्र का **'धर्मावतंस'** नाम का देव हूँ। आपकी धर्माराधना के प्रभाव से ही, उस कृत्या राक्षसी के उपद्रव को दूर करने के लिए यहाँ आया हूँ। मैंने ही माया से उस सेना का निर्माण और द्रौपदी का अपहरण करवाया था...और वह भील भी मैं स्वयं ही बना था। अब आपके दुष्कर्म लगभग क्षीण हो चुके हैं। आप आनन्द से रहें।'' इतना कहकर वह देव अदृश्य हो गया।

सुपात्र-दान

पाण्डवों ने वह रात्रि अत्यन्त ही सुखपूर्वक व्यतीत की। दूसरे दिन सुबह कुन्ती माता ने रसोई तैयार की। पारणे के पूर्व पाण्डवों ने सोचा-``इस समय किसी तपस्वी का आगमन हो जाय तो उन्हें आहारदान देकर फिर पारणा करें।'' पाण्डव इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उसी समय एक तपस्वी महामुनि का आगमन हो गया। वे महात्मा मासक्षमण के उग्र तपस्वी मुनि थे। पाण्डवों ने बहुत विनय एवं भक्तिपूर्वक उन महात्मा को आहार दान दिया।

मुनिदान से पाण्डव अपने आपको कृतार्थ समझने लगे। तभी मुनि-दान के प्रभाव से पंच दिव्य प्रगट हुए। आकाश में देव-दुन्दुभि का नाद हुआ। वस्त्र, धन, सुगन्धित जल तथा पुष्पों की भी वृष्टि हुई।

उसके बाद पाण्डवों ने भी पारणा किया । उसी समय आकाश में देववाणी हुई-**``मुनिदान के प्रभाव से आपको समस्त प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त होंगी...अब विराटनगर में गुप्तवेष में रहकर अपना अन्तिम वर्ष पूर्ण करो ।''**

देव-वाणी सुनकर सभी पाण्डव अत्यन्त खुश हुए ।

युधिष्ठिर की सलाह

युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को सलाह देते हुए कहा-``बन्धुओ ! यह एक वर्ष हमें गुप्त रूप में बिताना है, अतः सर्वप्रथम तो मेरी सलाह है कि हमें अपने मालिक के प्रति पूर्ण वफादार रहना होगा और अपनी शक्ति का लेश भी अभिमान किए बिना अपने मालिक के प्रेम को सम्पादित करना होगा । इतने समय तक भीम-अर्जुन ने अपनी शक्ति का खूब-खूब परिचय दिया है, परन्तु अब तो गुप्त रूप में रहकर ही हमें यह एक वर्ष व्यतीत करना है, अतः अपने नाम-काम आदि सब गुप्त रखने होंगे ।

``इस बीच यदि कोई संकट आ जाय तो परस्पर-सहायता के लिए मैं सबके सांकेतिक नाम रख देता हूँ । उन नामों का पता अन्य किसी को नहीं लगना चाहिए ।''

युधिष्ठिर ने कहा-``मेरा नाम जय, भीम का नाम जयन्त, अर्जुन का नाम विजय, सहदेव का नाम जयसेन और नकुल का नाम जयबल रहेगा ।''

``हमें यह एक वर्ष विराटनगरी के महाराजा विराट की सेवा में रहकर व्यतीत करना है । अपने मूल रूप का परिवर्तन कर हमें अलग-अलग नौकरी करनी होगी । अतः अपने मूल स्वरूप के परिचायक रूप इन हथियारों का हमें त्याग करना होगा ।''

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर अर्जुन सभी हथियारों को लेकर एक घटादार शमीवृक्ष के निकट पहुँच गया और उस वृक्ष की (कोटर) पोल में उसने अपने सभी शस्त्र छिपा दिए । शस्त्र छिपाकर अर्जुन युधिष्ठिर के पास आ गया ।

ब्राह्मण के वेष में युधिष्ठिर का राजसभा में आगमन

सर्वप्रथम युधिष्ठिर ने अपना रूप बदला, उसने ब्राह्मण का वेष धारण किया । शरीर के बारह अंगों पर तिलक, बायें स्कन्ध पर जनेऊ, हाथ में दर्भ

और अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्रों को धारण कर युधिष्ठिर विराटनगर में राज-दरबार की ओर आगे बढ़ा ।

राजदरबार के द्वार पर पहुँचने के बाद युधिष्ठिर ने द्वारपाल को कहा- ``आप जाकर महाराजा को विज्ञप्ति करो कि एक ब्राह्मण आपके दर्शन के लिए उत्सुक है ।''

द्वारपाल ने जाकर महाराजा को निवेदन किया । महाराजा की स्वीकृति मिलते ही युधिष्ठिर ने राजदरबार में प्रवेश किया ।

ब्राह्मण-वेष में रहे युधिष्ठिर को देखकर महाराजा सोचने लगे, **``अहो ! इस ब्राह्मण के रूप में धर्म का ही साक्षात् अवतरण हुआ लगता है । क्या इस भू-लोक को पवित्र करने के लिए स्वर्गलोक में से साक्षात् बृहस्पति का तो अवतरण नहीं हुआ है ? अहो ! ब्राह्मण की ऐसी आकृति तो मैंने कहीं नहीं देखी है ?''**

ब्राह्मण-वेष में रहे युधिष्ठिर ने महाराजा को प्रणाम किया और एक ब्राह्मण के आचरण के अनुरूप महाराजा को आशीर्वाद दिया ।

महाराजा ने भी उसका अभिवादन किया और उसके बाद उसे योग्य आसन प्रदान कर बोले-``आप कौन हैं ? और कहाँ से आ रहे हैं ?''

उसने कहा-**``मेरा नाम कंक ब्राह्मण है । मैं हस्तिनापुर के महाराजा युधिष्ठिर का अत्यन्त ही प्रिय पुरोहित हूँ । द्यूत-क्रीड़ा में मैं अत्यन्त ही कुशल हूँ । मैं हमेशा उनके साथ ही रहता था ।''**

विराट राजा ने पूछा-``विप्रवर ! आप यदि द्यूत-क्रीड़ा में कुशल हैं तो वह युधिष्ठिर जुए में दुर्योधन से हार कैसे गया ?''

कंक ने कहा-``राजन् ! सच बात तो यह है कि जिस दिन दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए आमंत्रण दिया, उस दिन मैं आवश्यक कार्यवश नगर से बाहर गया था । दुर्योधन ने मेरी गैरहाजिरी का लाभ उठा लिया...और इस कारण युधिष्ठिर जुए में हार गए । आज उस बात को बारह वर्ष व्यतीत हो गए हैं । दुर्योधन मायावी और कपटी होने से मैंने उसके पुरोहित पद पर रहना उचित न समझा । महाराजा युधिष्ठिर के पुनः राज्य-प्राप्ति की आशा से मैंने बारह वर्ष व्यतीत किए हैं...और इधर, पृथ्वीतल पर घूमता हुआ, आपके राज्य में आ पहुँचा हूँ । जब तक युधिष्ठिर पुनः हस्तिनापुर के

अधिपति न बनें, तब तक मैं आपकी यश-कीर्ति सुनकर आपकी सेवा में एक वर्ष व्यतीत करने की इच्छा रखता हूँ। आगे आप महाराजा की जैसी आज्ञा।''

विराट राजा ने कहा-``आपके जैसे मित्रों का योग पुण्य के उदय से ही प्राप्त होता है, आप यहाँ आनन्द से रहें। सचमुच, युधिष्ठिर को मैं भाग्यशाली मानता हूँ, जिन्हें आपके जैसे मित्र का योग प्राप्त हुआ। आप मेरी राजसभा में पुरोहित का पद स्वीकार करें और मेरी राजसभा को अलंकृत करें।''

महाराजा की आज्ञा प्राप्त कर युधिष्ठिर ने राज-पुरोहित के रूप में राजसभा में नियमित आकर, अपने कर्तव्य का पालन करने की जवाबदारी स्वीकार कर ली।

'वल्लव' रसोइये के रूप में भीम का आगमन

हाथ में रवैये और चम्मच लेकर आगे बढ़ते हुए भीमकाय भीम को महाराजा ने राजमार्ग से निकलते हुए देखा। भीम के विशाल शरीर को देखकर महाराजा ने उसे अपने राजभवन में बुलाया और पूछा-``तुम कौन हो और कहाँ से आ रहे हो ?''

भीम ने कहा-**``मेरा नाम वल्लव है, मैं हस्तिनापुर से आ रहा हूँ। मैं युधिष्ठिर महाराजा के यहाँ रसोइये का काम करता था। साथ में मल्लविद्या में भी निष्णात हूँ। पाण्डवों के वन में चले जाने के बाद मैंने इतने वर्ष तो जहाँ-तहाँ भटक कर पूर्ण किए हैं। आपकी प्रसिद्धि सुनकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ, आप मेरे योग्य सेवाकार्य सौंपकर मुझे कृतार्थ करें।''**

विराट राजा ने कहा-``तुम्हारी बलिष्ठ काया को देखते हुए तो ऐसा लगता है कि तुम युद्ध के मोर्चे पर सैनिक होने के लायक हो...अतः तुम्हें रसोई का काम कैसे सौंपा जाय, हाँ...मैं तुम्हें रसोईघर का अधिकारी बना देता हूँ...वह काम तुम्हें करना है।''

राजाज्ञा होते ही भीम की रसोईघर के अधिकारी के रूप में नियुक्ति हो गई।

'बृहन्नट' के रूप में अर्जुन का आगमन

तीसरे दिन मस्तक पर वेणी, वक्षस्थल पर कंचुक, कानों में कुण्डल और आँखों में अंजन धारण कर अर्जुन राजभवन की ओर आगे बढ़ा। विचित्र

वेष वाले अर्जुन को देखकर कुछ लोग हँसने लगे । झरोखे में बैठे हुए महाराजा की दृष्टि उस पर पड़ी । महाराजा ने द्वारपाल को सूचना कर अर्जुन को राजभवन में बुलवाया और पूछा-``तुम्हारे वक्षस्थल पर स्त्री चिह्न का अभाव दिखाई दे रहा है, फिर तुमने यह स्त्री-वेष क्यों धारण किया है ?''

उसने कहा-**``हे राजन् ! मैं न तो स्त्री हूँ, न पुरुष । मैं तो नपुंसक हूँ । मैं नृत्य और नाट्यकला में निपुण हूँ । मैं काफी वर्षों से युधिष्ठिर के राजभवन में नाट्याचार्य का काम करता था । मेरा नाम बृहन्नट है । माता सरस्वती की मुझ पर महती कृपा है । युधिष्ठिर के वन-गमन के बाद मैं जहाँ-तहाँ भटकता रहा । आपकी कीर्ति व प्रसिद्धि सुनकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ इस आशा से कि आप मुझे मेरे योग्य सेवाकार्य प्रदान करेंगे ।''**

राजा ने सोचा-``पुत्री उत्तरा को संगीत और नृत्यकला का शौक भी है, अतः उसके शिक्षक के रूप में इसकी नियुक्ति कर दी जाय ।'' इस प्रकार विचार कर राजा ने उसे आदेश देते हुए कहा, ``बृहन्नट ! तुम मेरी पुत्री उत्तरा को नृत्यकला आदि की शिक्षा दो, उसके शिक्षक के रूप में मैं तुम्हारी नियुक्ति करता हूँ ।''

``जी महाराज ! जैसी आपकी आज्ञा ।'' कहकर बृहन्नट ने राजा की आज्ञा शिरोधार्य की ।

तेतिपाल के रूप में नकुल का आगमन

दूसरे ही दिन सूर्य के घोड़े के समान अत्यन्त तेजस्वी घोड़े पर बैठकर, हाथ में चाबुक लिये हुए मजबूत स्कन्ध वाले नकुल को महाराजा ने देखा । द्वारपाल के माध्यम से महाराजा ने उसे अपने पास बुलाया और पूछा-``तुम कौन हो और कहाँ से आ रहे हो ?''

उसने कहा, **``मेरा नाम तेतिपाल है । मैं हस्तिनापुर से घूमते हुए आ रहा हूँ । मैं युधिष्ठिर महाराजा के यहाँ अश्व-परीक्षक के रूप में नौकरी करता था । घोड़े के लक्षण, चाल, वेग, उम्र तथा रोगादि को जानने में मैं कुशल हूँ । महाराजा युधिष्ठिर के वनवास चले जाने के बाद मैं जहाँ-तहाँ नौकरी की शोध में भटकता रहा हूँ । आपकी ख्याति सुनकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । आपको उचित लगे तो आप मेरे योग्य कार्य मुझे सौंप सकते हैं ।''**

राजा ने उसकी योग्यता देखकर उसे अश्वशाला का अधिपति बना दिया ।

'ग्रन्थिक' के रूप में सहदेव का आगमन

एक बार महाराजा स्वयं गोकुल का निरीक्षण कर रहे थे । तभी उनकी नजर हृष्ट-पुष्ट काया वाले और हाथ में लम्बी लाठी लिये हुए सहदेव पर पड़ी । महाराजा ने उसे अपने पास बुलाया और पूछा-``तुम कौन हो ?''

उसने कहा-``मेरा नाम ग्रन्थिक है । मैं हस्तिनापुर से घूमता-फिरता आ रहा हूँ । मैं महाराजा युधिष्ठिर के गोपालकों का अधिपति था । मैं गायों के गर्भाधान, गर्भमोचन समय, रोग, लक्षण, चिकित्सा आदि विषयों में कुशल हूँ । नौकरी की खोज में ही मैं यहाँ आया हूँ ।''

ग्रन्थिक की यह बात सुनकर राजा ने तुरन्त ही उसे गोकुल के अधिपति के रूप में नियुक्त कर दिया ।

'सैरन्ध्री' के रूप में द्रौपदी का आगमन

एक दिन अपने रूप और लावण्य से सबको विस्मित करनेवाली कामदेव की पत्नी रति की अवतार-समा द्रौपदी ने विचित्र वेष धारण कर महाराजा विराट की महारानी सुदेष्णा के महल में प्रवेश किया । आगन्तुक स्त्री के अद्‌भुत रूप को देखकर राजभवन की दासियाँ तो क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गईं । वे दासियाँ उसे महारानी के पास ले गईं । द्रौपदी के अंग-अंग से बहते हुए सौन्दर्य को देख महारानी सोचने लगी, ``अरे यह कौन है ? स्वर्गलोक की अप्सरा तो नहीं है न ? यह इस धरती पर कहाँ से आ गई ?''

रानी सुदेष्णा ने उसे सम्बोधित कर कहा-``हे भद्रे ! तू शारीरिक लक्षणों से तो राज-रानी प्रतीत हो रही है । तेरे लिए भूमि पर चलना, इस प्रकार भटकना उचित नहीं है । सच कहो, तुम किस महाराजा की महारानी हो ?''

द्रौपदी ने कहा-``महारानीजी ! मैं न तो राजरानी हूँ और न ही राज-पत्नी । मैं तो हस्तिनापुर के महाराजा पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी की दासी हूँ । मेरा नाम सैरन्ध्री मालिनी है । कृष्ण महाराजा की पत्नी सत्यभामा के साथ भी मेरी गाढ़ प्रीति है । पाण्डवों के वनगमन के साथ द्रौपदी वन में चली गई । अतः मैं उसके वियोग में जैसे-तैसे दिन व्यतीत कर रही हूँ । मैं आपके पास रहना चाहती हूँ ।''

सुदेष्णा ने कहा-``तू भले मेरे पास रह, परन्तु मुझे एक बात की चिन्ता है कि तेरे रूप-दर्शन के बाद राजा मुझे एकदम भूल जायेगा और तुझे राज-रानी बना देगा ।''

सैरन्ध्री ने कहा-``महारानीजी ! आप इस बात की लेश भी चिन्ता न करें । मेरे पाँच गन्धर्वपति हैं । वे अपने विद्याबल से सतत मेरा रक्षण करते रहते हैं, जो कोई मुझे खराब नजर से देखता है, उसका वे तुरन्त विनाश कर देते हैं ।''

सैरन्ध्री की यह बात सुनकर महारानी खुश हो गई । उसने उसके वहाँ रहने की सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी ।

पाँचों पाण्डव और द्रौपदी अपने स्वामी का प्रेम सम्पादन करते हुए अत्यन्त ही आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे । पाण्डवों ने माता कुन्ती की उसी नगर में किसी के घर सुरक्षित रहने की व्यवस्था कर दी थी । पाण्डव कई बार गुप्त रूप से अपनी माता से मिल लेते थे । इस प्रकार धीरे-धीरे समय बीतने लगा और ग्यारह महीने अत्यन्त ही आनन्दपूर्वक बीत गए ।

कीचक की कामवासना

एक बार महारानी सुदेष्णा के भाई कीचक की नजर सैरन्ध्री पर टिक गई । सैरन्ध्री के अद्‌भुत रूप-लावण्य को देखते ही वह उसके रूप का पिपासु बन बैठा । किसी भी प्रकार से सैरन्ध्री को पाने के लिए वह उपाय सोचने लगा । कीचक काम-ज्वर से पीड़ित था ।

काम का ज्वर अत्यन्त भयंकर होता है । आत्मा के छह अन्तरङ्ग शत्रु हैं । उनमें सबसे पहला नम्बर 'काम' का आता है । काम का अतिरेक मनुष्य को अन्धा बना देता है । कामान्ध व्यक्ति के विवेक-चक्षु पर पर्दा आ जाता है । हिताहित को सोचने-समझने की उसकी दृष्टि लुप्त हो जाती है ।

कामवासना के पाप से आत्मा को बचाने के लिए काम के निमित्तों से सदैव दूर रहना चाहिए । आग के सामीप्य को पाकर मोमबत्ती जैसे पिघलने लगती है, वैसे ही वासनाओं के निमित्तों को पाकर कामी व्यक्ति पिघलने लगता है ।

आँख के अन्धत्व से भी काम का अन्धत्व अधिक भयंकर है । आँख से अन्धा व्यक्ति तो सद्‌भूत वस्तु को नहीं देख पाता है, जबकि कामी व्यक्ति तो वस्तु के अभाव में वस्तु की कल्पना करता है । स्त्री-देह मल-मूत्र से भरा होने

पर भी कामी व्यक्ति स्त्री के मुख में चन्द्रमा की कल्पना करता है, स्त्री की आँखों में कमलिनी की कल्पना करता है। स्त्री के पैर आदि में कदली-स्तम्भ आदि की कल्पना करता है।

कीचक की दुष्ट चालबाजी

सैरन्ध्री के रूप का भ्रमर बने कीचक ने एक दासी को तैयार कर सैरन्ध्री के पास भेजा। दासी ने जाकर सैरन्ध्री से कहा-``कीचक का शरीर अत्यन्त अस्वस्थ है, अन्य कोई उपचार लागू नहीं पड़ रहा है। आप पतिपरायणा हो, अतः आपके हस्तस्पर्श से कीचक रोग-मुक्त हो जाएगा, अतः आप कीचक के भवन में पधारें।''

दासी के मुख से यह बात सुनकर सैरन्ध्री को कीचक की दुष्ट वृत्ति का स्पष्ट ख्याल आ गया, अतः उसने अत्यन्त तिरस्कार व अपमानपूर्वक कीचक की दासी को बाहर निकाल दिया।

दासी ने जाकर सब घटना कीचक को सुना दी। दासी की बात सुनकर भी कीचक की कामवासना शान्त नहीं हुई...बल्कि अधिक प्रज्वलित हुई।

एक बार सैरन्ध्री किसी कार्यवश बाहर जा रही थी, तभी एकान्त देखकर कीचक ने सैरन्ध्री का हाथ पकड़ लिया। सैरन्ध्री ने एक झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया और जोर से आवाज करती हुई राजसभा की ओर आगे बढ़ी और राजा को कहने लगी-``आप जैसे प्रतापी राजाओं के शासन में भी मुझ जैसी दासियों पर अत्याचार क्यों हो रहे हैं ? अब मैं किसकी शरण में जाऊ ?'' इतना कहकर सैरन्ध्री ने आदि से अन्त तक की सारी घटना राजा को सुना दी।

आगे बढ़कर उसने कहा-``सत्यवादी और महापराक्रमी ऐसे मेरे पाँच गन्धर्वपति हैं, परन्तु वे अभी यहाँ उपस्थित नहीं हैं। यदि वे उपस्थित होते तो कीचक का वध ही कर डालते।''

सैरन्ध्री की यह बात सुनकर वल्लव (भीम) तत्काल कीचक का वध करने के लिए तैयार हो गया...परन्तु कंक (युधिष्ठिर) ने इशारा कर उसे नीचे बैठा दिया।

सैरन्ध्री की दीनता भरी प्रार्थना सुनकर भी महाराजा कुछ नहीं बोले। तभी कंक पुरोहित ने कहा-``हे सैरन्ध्री ! तेरे पति बलवान हैं तो वे कीचक की दुष्ट चेष्टा को सहन नहीं करेंगे। पापी व्यक्ति तो अपने पाप से ही मरता है, अतः तू अपने स्थान पर चली जा।''

कंक की बात सुनकर सैरन्ध्री अपने स्थान पर चली गई।

भीम द्वारा कीचक का वध

वल्लव भोजन करके भोजन खण्ड में सोया हुआ था, तभी सैरन्ध्री ने उसके खण्ड में प्रवेश किया और वल्लव (भीम) को जगाकर बोली-**``हे नाथ ! यह दुष्ट कीचक मेरे साथ कैसा दुर्व्यवहार कर रहा है, फिर भी आश्चर्य है कि आप मस्ती से सो रहे हो। मुझे लगता है कि राज्य व धन चले जाने के साथ-साथ आपकी बुद्धि भी नष्ट हो गई है। अन्यथा इस प्रकार मेरा अपमान होते हुए भी आप मौन कैसे रहते ? पशु और पंखी भी अपनी स्त्री का पराभव सहन नहीं करते हैं तो फिर मानव की तो क्या बात करें ?''**

सैरन्ध्री (द्रौपदी) की यह आक्रोश और उपालम्भ भरी वाणी सुनकर वल्लव (भीम) ने कहा, ``प्रिये ! मैं तो उसी समय राजसभा में कीचक का वध करने के लिए तैयार हो गया था, परन्तु मैं क्या करूँ ? बड़े भैय्या ने मुझे इशारे से चुप कर दिया था।''

``खैर ! अभी कुछ ज्यादा देर नहीं हुई है, मैं कल ही इस कीचक को यमराज का अतिथि नहीं बनाऊँ तो तुम मुझे पुरुष मत समझना।''

``हे प्रिये ! वह दुष्ट कीचक कल पुनः तुम्हारे पास आएगा। उस समय तुम उसे अर्जुन की नाट्यशाला में रात्रि के दूसरे प्रहर में आने का संकेत कर देना... उसी समय मैं तुम्हारा वेष धारण कर वहाँ रहूंगा...बस,उसी समय मैं उसे यमराज का अतिथि बना दूंगा।'' इतना कहकर भीम ने सैरन्ध्री के पास से उसके वस्त्र ले लिये और उसे विदाई दी।

दूसरे दिन पुनः सैरन्ध्री के रूप-लावण्य को देख कीचक ललचाया और वह सैरन्ध्री के पास काम की प्रार्थना करने लगा। कीचक की यह मांग सुनकर सैरन्ध्री ने उसे रात्रि के द्वितीय प्रहर मैं बृहन्नट की नाट्यशाला में आने का संकेत किया।

सैरन्ध्री की यह बात सुनकर कीचक के आनन्द का पार न रहा। वह

रात्रि के समय की प्रतीक्षा करने लगा । रात्रि का एक प्रहर व्यतीत होने के बाद वह बृहन्नट की नाट्यशाला की ओर आगे बढ़ा ।

बृहन्नट की नाट्यशाला में वल्लव (भीम) पहले से ही सैरन्ध्री का वेष धारण कर कीचक के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था । कीचक ने नाट्यशाला में प्रवेश किया और सैरन्ध्री के वेष में रहे भीम ने उसका हार्दिक स्वागत किया ।

भीम ने प्रथम आलिंगन में ही उसे ऐसा दबोच दिया कि तत्क्षण उसके प्राण पखेरू उड़ गए ।

उसी समय भीम ने कीचक के मृत देह को झरोखे में से राजमार्ग पर फेंक दिया और स्वयं रसोईघर में आकर सो गया ।

सैरन्ध्री को जलाने का प्रयास

प्रातःकाल होते ही नगर में चारों ओर कीचकवध के समाचार फैल गए । कीचकवध के समाचार मिलते ही उसके सौ भाई आकर जोर-शोर से क्रन्दन करने लगे और कीचक के हत्यारे की खोज करने लगे । आखिर उन्हें पता चला कि कीचक को सैरन्ध्री के प्रति अत्यन्त राग था, अतः उसी ने कीचक को मरवाया होगा । इसके गन्धर्वपति तो दिखाई नहीं दे रहे हैं, अतः अपने भाई के साथ इसे भी चिता में जला दिया जाय । इस प्रकार विचार कर उन्होंने सैरन्ध्री का हाथ पकड़ा और उसे बलात्कार से श्मशान घाट की ओर ले जाने लगे । उसी समय सैरन्ध्री जय, विजय, जयन्त, जयसेन और जयबल का नाम लेकर जोर-जोर से रुदन करने लगी और कहने लगी-``आप जहाँ भी हो, मेरी रक्षा करो ।''

द्रौपदी के करुण रुदन को सुनकर भीम तुरन्त ही रसोईघर में से बाहर आया और कीचक के भाइयों को कहने लगा-``अरे ! तुम लोग इस स्त्री को खींचकर कहाँ ले जा रहे हो ?''

वे बोले-``यह हमारे भाई के वध में निमित्त बनी है, अतः इसे भाई की चिता के साथ जीवित जलाने के लिए ले जा रहे हैं । इसे जलाने के बाद ही हमारा क्रोध शान्त होगा ।''

उनकी यह बात सुनकर वल्लव (भीम) ने कहा-``तुम्हारे भाई ने परस्त्रीगमन की इच्छा की थी...तो उसके उस पाप से वह मारा गया है, अब

तुम लोग स्त्री-हत्या का पाप क्यों कर रहे हो ? तुम्हारे भाई को तो अन्याय का फल मिल गया है, अब तुम क्यों अन्याय करने के लिए तैयार हुए हो ?''

भीम की बात सुनकर कीचक के भाइयों ने कहा-``जिसकी भुजाओं में बल हो वह आकर इसे बचा ले ।''

कीचक के भाइयों की यह बात सुनकर भीम गुस्से से भर आया । उसने पास ही में खड़े एक विशाल वृक्ष को उखाड़ लिया और उससे उसने कीचक के सभी सौ भाइयों का वध कर डाला ।

``वल्लव ने कीचक के अन्यायी सौ भाइयों को मार डाला है ।'' इस प्रकार के समाचार चारों ओर नगर में फैल गए ।

सुदेष्णा का आक्रोश

अपने सभी भाइयों की हत्या के समाचार सुनकर सुदेष्णा एकदम करुण कल्पान्त रुदन करती हुई महाराजा के पास जा पहुँची । महाराजा ने उसे आश्वासन दिया ।

सुदेष्णा ने कहा-``स्वामिन् ! आपके नौकर वल्लव ने मेरे सभी भाइयों को मार डाला है, आप उसे खत्म क्यों नहीं करते हैं ? यदि आप उसे सजा नहीं करेंगे तो मैं आत्महत्या कर लूंगी ।''

रानी को समझाते हुए राजा ने कहा-``प्रिये ! वल्लव अत्यन्त ही बलवान है, उसके अद्‌भुत पराक्रम को मैंने जान लिया है, अतः उसके साथ विरोध करेंगे तो वह अपनी सेना को भी मार डालेगा, अतः उसका वध, बल से नहीं किन्तु छल से करना होगा ।

``प्रिये ! वल्लव के वध के लिए मुझे एक दूसरा उपाय मिल गया है । हस्तिनापुर के महाराजा दुर्योधन का महामल्ल वृषकर्पर यहाँ आया हुआ है, वह जरूर इस वल्लव को खत्म कर सकेगा ।'' इस प्रकार महारानी को आश्वासन देकर राजा ने उसे विदा किया ।

वृषकर्पर की मृत्यु

महाराजा की आज्ञा से वृषकर्पर और वल्लव के बीच मल्लयुद्ध का आयोजन किया गया । एक विशाल मैदान में राजा आदि अधिकारी वर्ग तथा दर्शकों के बैठने की व्यवस्था कर दी गई ।

वल्लव और वृषकर्पर दोनों अखाड़े में उतर गए । वृषकर्पर की अलमस्त पहाड़ी काया को देखकर लोग सोचने लगे-``राजा ने कीचक का बदला लेने के लिए ही इस वृषकर्पर को युद्ध के मैदान में उतारा है ।'' कुछ ही क्षणों बाद दोनों मल्ल सिंह की भाँति गर्जना कर एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे ।

वृषकर्पर को खत्म करना भीम के लिए बाएँ हाथ का खेल था, फिर भी वह लोकरंजन के लिए अनेक प्रकार के दावपेच खेलने लगा । दोनों मत्त हाथियों की भाँति लड़ रहे थे । जय-पराजय का पता नहीं चल रहा था । इसी बीच वल्लव ने वृषकर्पर को एकदम नीचे गिरा दिया और उसकी छाती पर चढ़कर जोर से मुष्टि का-प्रहार करने लगा । मुष्टि के प्रहार के साथ ही वृषकर्पर के प्राणपखेरू उड़ गए । सभा में चारों ओर जयजयकार की ध्वनि होने लगी । सारा वातावरण आनन्द से गूँज उठा ।

अन्त में राजा ने सुदेष्णा को समझाया, ``प्रिये ! ऐसा बलवीर अन्य कोई नहीं मिलेगा, अतः उसके प्रति कोप करना उचित नहीं है ।'' इस प्रकार कहकर राजा ने रानी को शान्त किया ।

दुर्योधन की दुष्ट योजना

इधर वृषकर्पर के वध के समाचार गुप्तचरों के द्वारा दुर्योधन को मिल गए । वृषकर्पर की मृत्यु से उसे अत्यन्त आघात लगा । उसने दुःशासन, कर्ण आदि को बुलाकर कहा-``अरे ! यह तो भारी समस्या आ खड़ी हुई । इस धरती को पाण्डवरहित बनाने के लिए मैंने जो-जो प्रयत्न किये, उन सब में मुझे एकान्त निष्फलता ही प्राप्त हुई है । मेरे सब प्रयोग निष्फल हो गए । वारणावत नगर में उनको जीवित जला डालने की योजना की...तो वह बेचारा पुरोचन ही मारा गया । उसके बाद सुरोचन ने उन पाण्डवों पर कृत्या राक्षसी का प्रयोग किया...तो उस प्रयोग में भी उस सुरोचन को अपने प्राण खोने पड़े...उसके बाद उन पाण्डवों के गुप्तवास को प्रकट करने के लिए मैंने वृषकर्पर मल्ल को भेजा तो उसे भी मौत के घाट उतरना पड़ा । मुझे लगता है, इस जगत् में भीम के सिवाय वृषकर्पर को मारने वाला और कोई नहीं हो सकता । अतः अब इन पाण्डवों को खत्म करने के लिए दूसरा उपाय सोचना चाहिए ।''

दु:शासन ने कहा-``पाण्डव हमारे आजन्म वैरी हैं, उन्हें खत्म किए बिना हम सुखपूर्वक जी नहीं सकेंगे, इसके लिए आपने क्या विचारा है ?''

दुर्योधन ने कहा-``बन्धु ! मेरा तो विचार है कि दो विभाग में विराट-राज्य पर आक्रमण करना चाहिए । एक ओर से हमला कर विराट के गोकुल का अपहरण करना चाहिए । विराट राजा अपने सैन्य के साथ लड़ने आएगा, तब दूसरी ओर से भी आक्रमण किया जाय । उस समय पाण्डव गुप्त नहीं रह सकेंगे...और उस समय अपनी सेना पाण्डवों को खत्म कर सकेगी । दुर्योधन की बात में सबने हामी भर दी ।

सुशर्मा का आक्रमण

दुर्योधन ने अपनी चतुरंगिणी सेना तैयार करने का आदेश दे दिया । उसने अपने सैन्य के दो विभाग किए । प्रथम विभाग की सेना का अधिपति पद सुशर्मा को प्रदान किया ।

विशाल सैन्य के साथ सुशर्मा ने विराटनगरी की ओर प्रयाण किया । कुछ ही दिनों में वह विराटनगर में पहुँच गया और उसने विराटराजा के गोकुल का अपहरण चालू कर दिया । अपने गोकुल के अपहरण के समाचार ज्योंही विराट महाराजा को मिले, वे भी शीघ्र लड़ने के लिए तैयार हो गए और उन्होंने युद्ध के लिए प्रयाण कर दिया । युधिष्ठिर को इस बात का पता चलते ही उसने अर्जुन के सिवाय अन्य भाइयों को युद्धभूमि में चलने का आदेश दिया ।

सर्वप्रथम सुशर्मा और विराट के सैन्य के बीच घमासान युद्ध हुआ । आपस में तलवारें टकराने लगीं । अनेक वीरों के मस्तक धड़ से नीचे गिरने लगे और देखते-ही-देखते युद्धभूमि रक्तरंजित हो गई । चारों ओर रक्त की धारा बहने लगी । कुछ समय बाद दोनों सेनाओं के शस्त्र समाप्त होने लगे । शस्त्र समाप्त होने पर विराट और सुशर्मा रथ से उतर कर मल्लयुद्ध करने लगे । बलवान सुशर्मा ने विराट को उठाकर अपने रथ में फेंक दिया ।

तभी युधिष्ठिर ने भीम को इशारा किया-``अपने उपकारी का रक्षण करना हमारा कर्त्तव्य है ।'' संकेत मिलते ही भीम आगे आया । भीम की विशाल काया देख कर और उसकी सिंह-गर्जना सुन कर ही सुशर्मा की सेना इधर-उधर भागने लगी ।

भीम ने अपनी गदा उठाई और उसने सुशर्मा का रथ वहीं तोड़ दिया। भीम के अद्‌भुत पराक्रम को देख सुशर्मा एकदम काँप उठा। उसने अपने मुख में अंगुली डाल दी और वह अपने जीवन की भिक्षा मांगने लगा। दयालु भीम ने उसे जीवन-दान देकर मुक्त किया। सुशर्मा जान बचाकर भागा।

भीम ने विराट राजा के बन्धन खोल दिए और उन्हें अपने रथ में बिठाकर नगर की ओर आगे बढ़ा।

वल्लव की पेट भरकर प्रशंसा करते हुए विराट ने कहा-``यदि आज वल्लव नहीं होता तो मेरा जीवन भी नहीं रहता।'' बाद में विराट ने कंक से कहा-``आज से यह राज्य और मेरा जीवन आपके चरणों में समर्पित करता हूँ...आपकी सहायता से ही मुझे जीवन मिला है।''

विराट राजा ने पाण्डवों की प्रशंसा की। परन्तु पाण्डवों ने कहा, ``राजन्! यह सब आपका ही प्रभाव है, हम तो आपके सेवक हैं।''

इस प्रसंग में हमें पाण्डवों की नम्रता और निरभिमानता के साक्षात् दर्शन होते हैं। पाण्डव हर तरह से समर्थ और सशक्त होते हुए भी अभिमानग्रस्त नहीं बने। पाण्डव अपने राजा विराट के साथ गोकुल को लेकर विराटनगर लौटे।

सुदेष्णा का रुदन

विराट राजा ने अपने नगर में प्रवेश किया, परन्तु नगर में चारों ओर शून्यता दिखाई दे रही थी। महाराजा ने अन्तःपुर में प्रवेश किया। महाराजा ने देखा-``महारानी सुदेष्णा का मुख अत्यन्त म्लान है।''

राजा ने पूछा-``तेरा मुख इतना श्याम क्यों हो गया है ? तू इतनी उदास और दुःखी क्यों है ? और मेरा पुत्र उत्तरकुमार कहाँ है ?''

सुदेष्णा ने कहा-``स्वामिन्! आपके युद्ध-भूमि में चले जाने के बाद उत्तर दिशा से गोपालक आकर पुकार करने लगे। उन्होंने कहा, ``उत्तर दिशा में दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि हमारे गोकुल का अपहरण कर रहे हैं।''

गोपालकों की यह बात सुनकर उत्तरकुमार एकदम आवेश में आ गया और युद्धभूमि में जाने के लिए तैयार हो गया...परन्तु ``रथ का सारथी कौन

बनेगा ?'' यह उसकी समस्या थी । उत्तरकुमार की समस्या जानकर सैरन्ध्री ने कहा-``आपकी बहन उत्तरा को नृत्यकला का शिक्षण देने वाले बृहन्नट को आप सारथी बना दो । वह रथ को हाँकने में अत्यन्त ही कुशल है । मैं उसकी इस कला को अच्छी तरह से जानती हूँ ।''

``बृहन्नट नपुंसक है'', यह जानते हुए भी उत्तरकुमार ने उसे अपने रथ का सारथी बना लिया और वह युद्धभूमि की ओर चल पड़ा ।

महारानी ने कहा-``यह अकेला उत्तरकुमार दुर्योधन आदि पराक्रमी योद्धाओं के आगे कैसे टिक सकेगा ? इसी की चिन्ता मुझे सता रही है ।''

महारानी की बात सुनकर विराटराजा भी चिन्तातुर हो गए । वे सोचने लगे-``अहो ! कहाँ भीष्म-दुर्योधन व द्रोणाचार्य जैसे महारथी...और कहाँ मेरा फूल सा कोमल बेटा उत्तरकुमार । जरूर आज वह बेमौत मारा जायेगा ।'' इस प्रकार सोचते हुए महाराजा अत्यन्त चिन्तातुर होकर बैठे हुए थे, तभी उन्हें राजभवन के द्वार पर कोलाहल सुनाई दिया । महाराजा ने अपना ध्यान उस ओर खींचा । जोर-शोर से उत्तरकुमार के जय-जयकार के नारे सुनाई दे रहे थे । महाराजा के आश्चर्य का पार न रहा । `यह उत्तरकुमार युद्ध-भूमि में विजयी बनकर आया है' इस बात से महाराजा को खूब-खूब आश्चर्य हो रहा था ।

उत्तरकुमार ने आकर पिता के चरणों में प्रणाम किया । महाराजा की आँखों में हर्ष के आँसू आ गए ।

सत्य घटना का घट-स्फोट

विराट ने कहा-``बेटा ! तूने तो अद्‌भुत पराक्रम दिखला दिया ?''

``पिताजी ! पिताजी ! `युद्ध में विजय' यह मेरा पराक्रम नहीं, यह तो अर्जुन का पराक्रम था । अपनी नाट्यशाला में रहा बृहन्नट वास्तव में नपुंसक नहीं है, वह तो बलवीर पाण्डव अर्जुन है, उसी के बल से युद्धभूमि में विजय की वरमाला प्राप्त हुई है ।''

उत्तरकुमार की यह बात सुनकर महाराजा विराट के आश्चर्य का पार न रहा । **``अहो ! क्या बृहन्नट के वेष में विश्व का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन है ?''**

``पिताजी ! युद्धभूमि के उसके पराक्रम को ध्यान से सुनें ।''

``पिताजी ! सैरन्ध्री का कथन सुनकर मैं बृहन्नट को अपना सारथी बनाकर युद्धभूमि में गया ।''

``युद्धभूमि में सामने दुर्योधन, कर्ण, द्रोणाचार्य, शकुनि, भीष्म, कृपाचार्य आदि खड़े थे । बृहन्नट क्रमशः अपने एक-एक शत्रु का परिचय देता गया । भीष्म-दुर्योधन आदि के अद्‌भुत पराक्रम और उनके युद्ध-शौर्य की बातों को सुनकर मैं थर-थर काँपने लगा । मैंने सोचा, ``इस युद्धभूमि में आकर मैंने भयंकर भूल कर दी है, किसी भी उपाय से मुझे यहाँ से बच निकलना है, इन महायोद्धाओं के आगे लड़ना मेरे वश की बात नहीं है ।''

मैंने अपने दिल की बात बृहन्नट को कही और उसे रथ को मोड़ने के लिए आदेश दिया ।

मेरी इस कमजोरी को देख बृहन्नट ने कहा-``क्षत्रियवीर ! ऐसी कायरता की बात क्यों करते हो ? क्षत्रियवीर विराट के पुत्र होकर ऐसी कायरताभरी बातें करना, तुम्हारे लिए शोभास्पद नहीं है । क्षत्रिय पुरुष युद्धभूमि में या तो विजय की वरमाला पहनते हैं या फिर अपने जीवन का बलिदान देते हैं । युद्धभूमि से पीछे हटने के बजाय शहीद हो जाना अधिक बेहतर है । मैं इन शत्रुओं को मारने में समर्थ हूँ, तुम मेरे सारथी बनो ।'' इस प्रकार कहकर बृहन्नट ने अपना स्त्री-वेष दूर कर दिया और हाथ में गाण्डीव धनुष धारण किया ।

अर्जुन की यह बात सुनकर मैंने सारथी का पद संभाला । उसने हाथ में धनुष धारण किया । अर्जुन की दिव्य-प्रतिभा को देखकर मैं तो एकदम दंग रह गया । यह साक्षात् विद्याधर है ? साक्षात् वीरमूर्ति है ? मैं तो उसे देखता ही रह गया ।

एक ओर महापराक्रमी अर्जुन अकेला था तो दूसरी ओर शत्रुओं की विशाल सेना थी । परन्तु सूर्य के आगे तारों की क्या कीमत होती है ? अर्जुन के पराक्रम के आगे वे टिक न सके...और देखते-ही-देखते युद्धभूमि में रुधिर की नदियाँ बहने लगीं ।

अर्जुन के अद्‌भुत पराक्रम को देखकर भीष्म व द्रोण आदि तो युद्ध-भूमि को छोड़कर चले गए । तत्पश्चात् दुर्योधन, कर्ण को युद्धभूमि में नियुक्त कर स्वयं गोकुल को लेकर भागने लगे । कर्ण और अर्जुन दोनों आमने-सामने लड़ने लगे । विजय की वरमाला किसके गले में गिरेगी ? कोई निर्णय नहीं हो पा रहा था । तभी अर्जुन ने अपने बाण-प्रहार से कर्ण को घायल कर दिया ।

घायल हुए कर्ण ने अपने सारथी को कहा-``अपना मित्र दुर्योधन गायों को लेकर काफी दूर निकल गया है, अब हमें लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, अतः तू अपने रथ को मोड़ दे ।'' कर्ण को भागते देखकर अर्जुन ने मुझे प्रोत्साहित किया और मैंने तेजी से रथ को हंकारा । अर्जुन को देखकर दुर्योधन की सेना भागने लगी । अर्जुन ने अपने शस्त्र प्रहार से दुर्योधन के रथ की ध्वजा उड़ा दी और **'प्रस्वप्नास्त्र'** फेंककर दुर्योधन आदि को निद्राधीन बना दिया । तभी अर्जुन की आज्ञा से मैंने अनेक वीरों के वस्त्र आभूषण उतार दिए । कुछ समय बाद अर्जुन के बाण से पुनः सभी होश में आ गए । लज्जित बने सभी युद्धभूमि को छोड़कर भाग गए ।

अर्जुन ने अपनी समस्त गायें अपने नगर की ओर रवाना कर दीं । युद्ध में विजय-प्राप्ति के बाद अर्जुन ने पुनः बृहन्नट का वेष धारण कर लिया और मुझे कहा-``युद्ध में मिली विजय की बात करते समय महाराजा से मेरे पराक्रम की बात मत करना ।'' ``परन्तु पिताजी ! मैं इतना यश-चोर नहीं हूँ कि उसके पराक्रम की अपने खाते में खतौनी कर दूँ ।''

उत्तरकुमार के मुख से अर्जुन के महापराक्रम की बातें सुनकर महाराजा के आश्चर्य का पार न रहा । तत्क्षण महाराजा ने अर्जुन को बुलावा भेजा । उसके नर्तक-वेष को उतरवा दिया गया और उसे कीमती वस्त्राभूषण आदि से अलंकृत कर उसका सत्कार किया गया । अर्जुन को प्राप्त कर महाराजा अपने आपको धन्य समझने लगे ।

राजा ने कहा-``आपने युद्धभूमि में विजय दिलाकर मुझ पर खूब उपकार किया है, साथ में मेरी पुत्री को सुयोग्य शिक्षण देकर भी आपने महान् उपकार किया है । वल्लव आदि के उपकार को भी मैं कभी भूल नहीं सकता ।''

अर्जुन ने तभी हँसते हुए कहा, ``किसी के दुःख में सहभागी बनना, यह तो पाण्डवों का स्वभाव है ।''

अर्जुन की यह बात सुनकर आश्चर्यचकित हुए विराट ने पूछा-``तो क्या आप सभी पाण्डव हैं ?'' विराट के इस प्रश्न के उत्तर में अर्जुन ने अपने सभी भाइयों व द्रौपदी आदि का परिचय दिया, जिसे सुनकर विराटराजा अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ ।

विराट राजा ने युधिष्ठिर को प्रणाम कर अपने सिंहासन पर बिठाया और कहा-**``इतने दिनों में मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ ।''**

क्षमामूर्ति युधिष्ठिर ने कहा-``आपने हमें खूब-खूब सहायता की है ।''

``हे पूज्य पाण्डवो ! इतने दिनों तक मैं आपको पहिचान नहीं पाया, आप राजवंशीय-वेष में आए होते तो मुझे भी आपकी सेवा का लाभ प्राप्त होता। अब आप यह राज्य स्वीकार करो।'' ``अर्जुन ने मेरी पुत्री को शिक्षण देकर खूब उपकार किया है, अतः वह उसे स्वीकार करे।''

अर्जुन ने कहा-``मैंने उत्तरा को शिक्षण दिया है, अतः वह मेरे लिए पुत्री तुल्य है, अतः मैं उसे ग्रहण नहीं कर सकता। परन्तु हाँ, आपकी बहुत भावना है तो यह मेरे पुत्र अभिमन्यु के लिए सुयोग्य है। अतः उसके साथ इसका विवाह कर दिया जाय।'' तुरन्त ही महाराजा ने अपनी सहमति दे दी।

अर्जुन के आदेश से सुभद्रा, अभिमन्यु, कृष्ण आदि को द्वारका से बुला लिया गया और उनके आने के बाद अभिमन्यु का उत्तरा के साथ लग्न हो गया।

पाण्डव द्वारका गए

अभिमन्यु और उत्तरा के लग्न के बाद श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को द्वारका चलने का आग्रह किया। श्रीकृष्ण का आग्रह देखकर सभी पाण्डव रथारूढ़ होकर द्वारका नगरी की ओर आगे बढ़ने लगे। क्रमशः आगे बढ़ते हुए सभी पाण्डव द्वारका पहुँच गए।

सभी पाण्डव द्वारका में सुखपूर्वक अपने दिन व्यतीत करने लगे। एक दिन भीम और द्रौपदी ने अपने वनवास काल की सभी घटनाएँ श्रीकृष्ण को सुना दीं। वनवास-काल दरम्यान दुष्ट दुर्योधन के षड्यंत्रों को जानकर श्रीकृष्ण बहुत कुपित हुए। उन्होंने तुरन्त ही एक दूत को तैयार किया और उसे व्यवस्थित समझा-बुझाकर हस्तिनापुर रवाना कर दिया।

श्रीकृष्ण के दूत ने हस्तिनापुर की राजसभा में प्रवेश किया। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, भीष्म, शल्य, जयद्रथ, शकुनि, शिशुपाल और दुःशासन आदि भाइयों से दुर्योधन की राजसभा सुशोभित थी।

दूत ने हाथ जोड़कर दुर्योधन को कहा-``हे राजन् ! श्रीकृष्ण ने मुझे आपके पास भेजा है। उन्होंने कहलाया है कि पाण्डवों ने तेरह वर्ष वनवास की प्रतिज्ञा का अच्छी तरह से पालन किया है। उन पाण्डवों को आमंत्रण देकर मैं द्वारका ले आया हूँ। अतः आप अपने भाइयों को आमंत्रण देकर

हस्तिनापुर बुला लो और उन्हें अपना राज्य प्रेमपूर्वक सौंप दो । यदि आप इच्छापूर्वक उनको राज्य नहीं दोगे तो वे जबरन आपके पास से राज्य ले ही लेने वाले हैं, आप उनके पराक्रम को अच्छी तरह से जानते ही हो । वे अत्यन्त पराक्रमी हैं, अतः बलवान के साथ विरोध करना उचित नहीं है ।''

दूत की यह बात सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध बने दुर्योधन ने कहा-**''अरे ब्राह्मण ! सचमुच, बदरी (बेर) के फल की भाँति तेरे वचन ऊपर से कोमल और अन्दर से कठोर हैं । मैं अपनी भुजाओं के बल से इस पृथ्वी को धारण कर रहा हूँ, अतः मेरे पास से मेरे राज्य को ग्रहण करने की हिम्मत करने वाले श्रीकृष्ण मेरे आगे कौन हैं ? और पाण्डवों की तो क्या ताकत है कि वे मेरे पास से अपना राज्य ग्रहण कर लें ?**

''सूर्य के प्रकाश के आगे चन्द्र और ताराओं के प्रकाश की क्या कीमत है ? जब मैं युद्धभूमि में आऊंगा, तभी उन्हें पता चलेगा कि दुर्योधन की कितनी ताकत है ?''

दुर्योधन की यह बात सुनकर दूत ने कहा-''सूर्य के साथ पतंगे का संघर्ष उचित नहीं है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के साथ आपका संघर्ष योग्य नहीं है ।''

''श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में ही अरिष्ट केशी, चम्पक हाथी और चाणूरमल्ल का वध कर दिया था और उसके साथ ही दुष्ट कंस का भी उन्होंने ही वध किया था ।''

''अरे दुर्योधन ! श्रीकृष्ण की बात तो जाने दो, युद्ध में पाण्डवों को भी कौन जीत सकता है ? भीम के पराक्रम को क्या आप एकदम भूल गए ? किर्मीर, हिडम्ब, कीचक, राक्षस और वृषकर्परमल्ल को अपने मुष्टि-प्रहार से खत्म करने वाले भीम के पराक्रम से भला कौन अपरिचित है ? चित्रांगद की कैद से आपको मुक्त करने वाले अर्जुन के पराक्रम को भी आप भूल गए ? विराटनगर में गायों के अपहरण के समय अर्जुन ने आपकी जो दुर्दशा की थी, उसे भी आप भूल गए ?''

इस प्रकार दूत के वचनों को सुनकर अत्यन्त कुपित दुर्योधन ने कहा-''अरे ब्राह्मण ! तू दूत है, इसलिए अवध्य है । अन्यथा अभी तेरे जीवन को समाप्त कर देता । तू यहाँ से जल्दी बाहर निकल जा और श्रीकृष्ण और पाण्डवों को कुरुक्षेत्र में भेज दे ।'' इस प्रकार कहकर, दूत को धक्का देकर बाहर निकलवा दिया ।

भीम का आक्रोश

हस्तिनापुर से प्रयाण कर वह दूत द्वारका आ पहुँचा । उसने आकर कृष्ण और पाण्डवों को आदि से अन्त तक की सभी घटना सुना दी ।

दूत ने कहा-``दुर्योधन अत्यन्त ही गर्विष्ठ बना हुआ है । साम-दाम की नीति से वह समझने वाला नहीं है, बल्कि उसको समझाने का प्रयास आग में घी डालने का ही काम करता है ।''

दूत की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा-``मैं तो पहले से ही जानता था कि दुर्योधन दंड से ही समझने वाला है, फिर भी लोकापवाद के भय से मैंने साम नीति का प्रयोग किया था ।''

युधिष्ठिर ने कहा-``भाई के साथ लड़ने की मेरी लेश भी इच्छा नहीं है, परन्तु अब तो कोई दूसरा विकल्प ही नहीं बचा है । युद्ध के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं है ।''

तभी भीम ने कहा-``दुर्योधन ने राज्य देने से जो इन्कार किया है, वह अच्छा ही किया है, क्योंकि अब मैं अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण कर सकूंगा । द्रौपदी के वस्त्र खींचते समय मैंने दुःशासन की भुजाओं को छेद डालने की प्रतिज्ञा की थी और द्रौपदी को जंघा दिखाने वाले दुर्योधन की जंघा पर गदा प्रहार करने की मैंने जो प्रतिज्ञा की थी...वह मेरी प्रतिज्ञा अब अवश्य पूर्ण होगी ।''

इस प्रकार युद्ध की अनिवार्यता जानकर, श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर ने अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार होने की सूचना कर दी ।

संजय दूत का आगमन

एक दिन धृतराष्ट्र का सारथी संजय दूत बनकर युधिष्ठिर के पास आया और धृतराष्ट्र की ओर से निवेदन करने लगा ।

दूत ने कहा-``हे युधिष्ठिर ! धृतराष्ट्र ने कहलाया है कि आप ही न्याय-नीति, विनय और विवेक के भण्डार हो...मैंने दुर्योधन को खूब समझाया है, परन्तु वह किसी भी तरह मेरी बात मानता ही नहीं है...वह मेरी सलाह को सुनने के लिए तैयार ही नहीं है...अतः मेरी तुमसे प्रार्थना है कि तुम किसी भी उपाय को अजमाकर अपने भाई के साथ होने वाले युद्ध को टाल दो ।

``हे युधिष्ठिर ! भाइयों के साथ विरोध करने से लोक में भी कुरुवंश

की अपकीर्ति होगी । **नीतिशास्त्र में कहा गया है-वन में वास करना, भिक्षा के आधार पर जीवित रहना श्रेष्ठ है किन्तु भाई के साथ परस्पर युद्ध करना उचित नहीं है ।**

``युद्ध में किसकी जीत होगी ? और किसकी हार ? यह भी निश्चित नहीं है अतः आपको राज्य के लिए परस्पर युद्ध नहीं करना चाहिए ।''

संजय की यह बात सुनकर हँसते हुए युधिष्ठिर ने कहा-``हे संजय ! पिता पाण्डु और धृतराष्ट्र ने दुर्योधन और मुझको आधा-आधा राज्य दिया था । जुए में मैं अपना राज्य हार गया था । जुए की शर्त के अनुसार तेरह वर्ष का वनवास-काल पूर्ण कर हम द्वारका में आए हैं । दुर्योधन को हमारा राज्य अब छोड़ देना चाहिए, वह राज्य नहीं छोड़े तो इसमें हमारा क्या दोष है ?

``हे संजय ! जब तक शत्रु की ओर से पराभव न हो तभी तक क्षमा अलंकार रूप है, परन्तु शत्रु की ओर से पराभव होने पर तो पराक्रम ही अलंकार समान है । अतः हमें अपना राज्य प्रदान कर दुर्योधन सुखपूर्वक रहे, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है । शान्ति के मार्ग का अनुसरण कर यदि मैं अपना राज्य छोड़ दूँ, तो भी भीम आदि मेरे छोटे भाई राज्य छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं । हे संजय ! तुम जाकर हमारी बात धृतराष्ट्र को कह देना ।''

...तभी भीम ने कहा, ``हे संजय ! अब तो बिना युद्ध के दुर्योधन के साथ सन्धि करना भी नहीं चाहते हैं । हमारे लिए तो यह युद्ध महोत्सव के समान है । इस संग्राम में दुःशासन की भुजाओं को छेदकर और दुर्योधन की जंघा को नष्ट करके रहूंगा ।''

अर्जुन ने भी कहा-``अब तो युद्ध के सिवाय हमारे पास दूसरा कोई विकल्प नहीं है ।''

संजय का हस्तिनापुर आगमन

श्रीकृष्ण और पाण्डवों से विदा लेकर संजय हस्तिनापुर आ गया । धृतराष्ट्र के चरणों में प्रणाम कर संजय ने युधिष्ठिर का सन्देश सुना दिया । तत्पश्चात् संजय ने कहा-``हे महाराज ! तेजस्वी पाण्डवों का तिरस्कार करने से, अब दुर्योधन आदि तुम्हारे पुत्रों का जीवन मुझे भयग्रस्त दिखाई दे रहा है । पराक्रमियों के साथ वैर-भाव रखने वालों के लिए गुफा ही एकमात्र शरणभूत बनती है ।

``आप अपनी कुशलता चाहते हो तो अब भी पाण्डवों का राज्य उन्हें सौंप दो । आप यह न समझें कि जंगल में रहने से पाण्डव कृश बन गए हैं, वे तो अत्यधिक तेजस्वी बने हैं । वर्षा के बाद सूर्य का तेज अधिक खिलता है, उसी प्रकार जंगल में रहकर आने के बाद पाण्डव अब अधिक तेजस्वी बने हैं ।''

दुर्योधन का रोष

दुष्ट व्यक्ति कभी शत्रुपक्ष की प्रशंसा सहन नहीं कर पाता है । दुर्योधन के दिल में पाण्डवों के प्रति ईर्ष्या, द्वेष और घृणा की आग सुलग रही थी, अतः संजय के मुख से पाण्डवों की प्रशंसा सुनकर वह एकदम आग बबूला हो उठा और बोला, ``अरे संजय ! मुझे लगता है तू भी पाण्डवों के यहाँ जाकर उनका ही हो गया है । शत्रुओं के पक्ष का वर्णन कर तू मुझे भयभीत करना चाहता है ?''

``अरे संजय ! तू इतना भी नहीं जानता है कि ये पाँच पाण्डव तो मेरे अस्त्र रूप राक्षस के प्रथम कवल बनने वाले हैं । पाण्डवों और श्रीकृष्ण की समस्त सेना का युद्ध-भूमि में संहार कर इस पृथ्वी पर मैं अपना शासन चलाऊंगा । मेरी राज्य-लक्ष्मी को छीनने की ताकत किसमें है ? अरे ! सिंह के मुख से मांस को खींचने की कौन हिम्मत करता है ? अरे ! सभी शक्तिशाली राजा मेरे पक्ष में हैं, जबकि पाण्डवों के पक्ष में तो एकमात्र द्रुपद, विराट और श्रीकृष्ण ही हैं ।

``तू शत्रुपक्ष की प्रशंसा क्यों करता है ? तेरी तो जीभ छेद देनी चाहिए...फिर भी पिता के दाक्षिण्य से मैं तुझे मुक्त करता हूँ ।''

दुर्योधन की इतनी कठोर वाणी सुनकर संजय राज-सभा का त्याग कर अपने घर चला गया ।

वह सोचने लगा-``सचमुच, दुर्योधन को अब मौत ही पुकार रही है।'' **'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'** के नियमानुसार अब इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और इसी कारण इसे नेक सलाह भी पसन्द नहीं पड़ रही है ।

मृत्यु के चार द्वार

संजय सोचने लगा-

अनुचितकर्मारम्भः स्वजनविरोधो, बलीयसा स्पर्धा ।
प्रमदाजनविश्वासो, मृत्योर्द्वाराणि चत्वारि ।।

अनुचित कर्म का आरम्भ, स्वजन के साथ विरोध, बलवान के साथ स्पर्धा और स्त्रीजन पर पूर्ण विश्वास, ये चार मृत्यु के द्वार हैं ।

राज्य के लोभ में आसक्त बने दुर्योधन ने औचित्य-व्यवहार का सर्वथा त्याग कर दिया है । अपने बन्धुओं के साथ ही वैर-विरोध पैदा कर लिया है और अत्यन्त पराक्रमी ऐसे पाण्डवों के साथ वह स्पर्धा करने जा रहा है । इन तीन दोषों से दुर्योधन ग्रस्त बना हुआ है...इस प्रकार की प्रवृत्ति से वह मौत को ही आमंत्रण दे रहा है ।

इधर दुर्योधन ने भी अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार रहने का आदेश दे दिया । दुर्योधन की लड़ने की तैयारी को जानकर हस्तिनापुर की प्रजा शोक-मग्न हो गई ।

विदुर की सलाह

दूसरे दिन धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाकर एकान्त में पूछा-``कुल का कल्याण कैसे हो सकता है ?''

विदुर ने कहा-``इस अनर्थ के कारण आप स्वयं ही हैं । मैंने तो इस दुर्योधन को जन्म के साथ ही फेंक देने की सलाह दी थी । परन्तु उस समय मेरी बात आपको पसन्द नहीं आई...अब मैं क्या कहूँ ? **गृह-आँगन में उत्पन्न हुए विषवृक्ष को तुरन्त ही उखाड़ देना चाहिए, बड़े होने के बाद तो वह अनेक के प्राण ही लेता है । घर के एक कोने में आग लगने के साथ ही उसे बुझाने का प्रयत्न करना चाहिए, उस समय उसकी जो उपेक्षा करता है, उसे फिर पछताना ही पड़ता है । सम्पूर्ण घर में आग लग जाने के बाद घर को बचाना अशक्य हो जाता है । घर में आग लग जाने के बाद कुआ खोदना, जैसा ही अब आपका प्रयास है ।**

``हे धृतराष्ट्र ! आपका पुत्र तो कुलांगार है, अतः लोभ का त्याग कर धर्म का विचार करो और दुर्योधन को राज्य-लोभ से निवृत्त कर कुरुकुल का रक्षण करो ।''

दुर्योधन को हित-शिक्षा

विदुर की प्रेम भरी सलाह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा-``बन्धु ! आपकी बात बिल्कुल सत्य है । आपके सिवाय हितकारी बात और कौन कहेगा ? हे बन्धुवर्य ! मैंने इस दुर्योधन को समझाने का अनेक बार प्रयास किया है, परन्तु

वह मेरी बात मानता ही नहीं है । अतः हम दोनों उसके पास चलें और एक बार पुनः उसे समझाने का प्रयास करें ।''

विदुर ने धृतराष्ट्र की बात स्वीकार कर ली और वे दोनों दुर्योधन के पास गए और बोले-``हे दुर्योधन ! ये पाण्डव अपनी वनवास की अवधि पूर्ण करके यहाँ आ रहे हैं, अतः जुए में जीता हुआ इनका राज्य इन्हें वापस सौंप दो और सत्य-प्रतिज्ञ बनो । **क्योंकि जो व्यक्ति अपने वचन से भ्रष्ट बनता है, उसका पुरुष-व्रत चला जाता है । पुरुष-व्रत से भ्रष्ट बना व्यक्ति जीवित होते हुए भी मरे हुए के समान ही होता है । ऐसे व्यक्ति का स्वजन भी त्याग कर देते हैं ।**

``हे दुर्योधन ! पाण्डवों से ग्रहण की गई पृथ्वी अब इन्हें सौंप दो और कुटुम्ब-कलह को दूर करो । ये पाण्डव तो सत्यप्रतिज्ञ हैं...अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके ही आए हैं ।

``कर्ण, गांगेय, द्रोण, दुःशासन आदि के बल पर तुम जीना चाहते हो तो भी बराबर नहीं है । यदि तुम पाण्डवों को उनका राज्य नहीं दोगे तो वे जबरन लिये बिना नहीं रहेंगे । गन्धर्वराज चित्रांगद और विराट राजा की लड़ाई में तुमने पाण्डवों का पराक्रम नहीं देखा ?

``यदि अर्जुन नहीं आया होता तो तुझे चित्रांगद के बन्धन से कौन मुक्त कर सकता था ? विराट के साथ हुई लड़ाई में अर्जुन ने मोहनास्त्र छोड़ तेरे वस्त्र-अलंकार आदि ले लिये थे । वह तो तेरे प्राण लेने में भी समर्थ था, परन्तु दया से उसने तुझे जीवित छोड़ दिया था, अतः अब पाण्डवों से ईर्ष्या का त्याग कर, उन्हें उनका राज्य अर्पित कर कुरुवंश का रक्षण करो ।''

दुर्योधन का आक्रोश

विदुर और धृतराष्ट्र की प्रेम भरी और हितकारी सलाह भी दुर्योधन को पसन्द नहीं पड़ी । वह क्रोधपूर्वक बोला-``पिताजी ! आप ऐसी कायरता की बातें क्यों करते हो ? हाथ में आए हुए राज्य को छोड़ने के लिए कौन क्षत्रिय तैयार होता है ? इस प्रकार राज्य छोड़ देने से तो लोक में भी अपनी कीर्ति पर कलंक ही लगता है । वह अन्याय भी न्याय ही है, जो तेजस्वी पुरुषों के द्वारा आदृत है ।

अतः हे पिताजी ! आप इस प्रकार भयभीत न बनें । ये पाण्डव तो

मेरे क्रोध रूपी दावानल में भस्मीभूत हो जायेंगे । अतः आप इस प्रकार की कायरपने की बातें कर मुझे हैरान क्यों करते हैं ?''

विदुर की दीक्षा

दुर्योधन की उक्त बात सुनकर खिन्न बने विदुर व धृतराष्ट्र वहाँ से उठ खड़े हुए । विदुर अपने खण्ड में आ गए । उनका मन संसार के वैषयिक-सुखों से विरक्त बन गया था । उन्हें भावी में होने वाला कौरव-कुल का विनाश आँखों के सामने दिखाई देने लगा ।

वे सोचने लगे-**''संसार की इन क्षणिक सम्पत्तियों को धिक्कार हो...राज्य के स्वामित्व को धिक्कार हो...संसार के वैषयिक-सुखों को धिक्कार हो...अहो ! इस संसार में राज्य, सम्पत्ति व विषयसुखों के लिए पिता पुत्र को मारता है और पुत्र पिता को खत्म करता है । भाई भाई को मारता है और मित्र मित्र को मारता है । इस संसार में चारों ओर स्वार्थ की ही लड़ाई चल रही है, अतः उस समस्त संसार को धिक्कार हो । जीवन क्षणिक है और क्षणिक जीवन को अज्ञानी मनुष्य व्यर्थ ही गँवा देता है । इस जीवन की सफलता त्याग-मार्ग अपनाने में ही है । भोग में नहीं, किन्तु त्याग में ही सच्चा सुख रहा हुआ है ।''**

विदुरजी इस प्रकार के विचारों में तल्लीन बने हुए थे, तभी उद्यान-पाल ने आकर उन्हें सूचना दी-``चार ज्ञान के धारक विश्वकीर्ति नाम के महामुनि उद्यान में पधारे हैं ।''

महात्मा का आगमन सुनकर विदुरजी अत्यन्त ही खुश हुए । अनुकम्पा दान आदि करते हुए वे अपने परिवार के साथ उद्यान में पधारे । उन्होंने महात्मा के चरणों में भावपूर्वक प्रणाम किया । महात्मा ने उन्हें धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया ।

विदुरजी योग्य स्थान पर बैठ गए । महात्मा ने संसार की असारता बतलाने वाली धर्मदेशना दी- ***''इस अनन्त संसार में अनन्त काल से अपनी आत्मा चार गतियों के चक्कर में भटक रही है और सतत जन्म, जरा, मरण, आधि-व्याधि और उपाधि की पीड़ा का अनुभव कर रही है । राग-द्वेष और मोह के कारण आत्मा नए-नए कर्मों का बन्ध करती रहती है और उन बन्धों के कारण उसका संसार-भ्रमण अविरत चलता रहता है ।***

''आत्मा के संसार-परिभ्रमण का अन्त लाने के लिए तारक तीर्थंकर भगवन्तों ने रत्नत्रयी की साधना रूप मोक्षमार्ग बतलाया है। इस मोक्षमार्ग की आराधना कर अनेक आत्माएँ भव-बन्धन से मुक्त बनी हैं।

''अतः हे भव्यात्माओ ! यदि आपको संसार भयंकर लगा हो...हृदय में मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा पैदा हुई हो तो आप अपने जीवन में रत्नत्रयी को स्वीकार करें। सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्र की आराधना आपको भव से मुक्त बना देगी।''

महामुनि के मुख से इस प्रकार की वैराग्य-गर्भित धर्मदेशना का श्रवण कर विदुर का मन वैराग्य के रंग से रंजित हो गया। उन्होंने तत्क्षण खड़े होकर महामुनि से चारित्र-धर्म प्रदान करने की प्रार्थना की। विदुर ने अपनी दीक्षा के लिए ज्येष्ठ बन्धु व माता आदि की सहमति प्राप्त कर ली। सहमति मिलते ही विदुर ने विश्वकीर्ति महामुनि के पास चारित्र-धर्म स्वीकार किया। वे भोगी मिटकर योगी बन गए। संसारी मिटकर साधु बन गए और अगारी मिटकर अणगार बन गए।

कुछ ही दिनों बाद विश्वकीर्ति महामुनि के साथ राजर्षि विदुर ने वहाँ से विहार कर दिया।

श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर आगमन

एक दिन श्रीकृष्ण कुछ सामन्तों को लेकर हस्तिनापुर आए। दुर्योधन आदि को कृष्ण के आगमन के समाचार मिलते ही उन्होंने श्रीकृष्ण का भव्य स्वागत किया और उन्हें अत्यन्त आदर और बहुमानपूर्वक राजसभा में ले आए। भीष्म, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन आदि से सुशोभित राज-सभा के रत्न-मणिमय सिंहासन पर श्रीकृष्ण आरूढ़ हुए। ताराओं के बीच शोभते हुए चन्द्र की भाँति श्रीकृष्ण राजसभा में शोभने लगे।

धृतराष्ट्र ने विनयपूर्वक श्रीकृष्ण को कहा-``आपके आगमन से मेरी राजसभा पावन बनी है, अतः आप हमें हितकारी बात सुनाओ।''

धृतराष्ट्र का यह कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा-``हे धृतराष्ट्र ! सर्वप्रथम मैंने द्रुपद के पुरोहित को दूत के रूप में भेजा था, परन्तु उसकी बात आपने नहीं मानी। उसके बाद आपकी ओर से संजय नाम का दूत आया था। उसके साथ युधिष्ठिर ने अपना सन्देश कहलाया था, उसका भी दुर्योधन ने

पालन नहीं किया । युधिष्ठिर के भाइयों ने तो अब लड़ने का निश्चय ही कर लिया है, परन्तु इस युद्ध में मुझे कौरव-कुल का विनाश नजर आ रहा है । इस भावी विनाश को टालने के लिए ही मैं युधिष्ठिर को पूछे बिना ही आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ, अतः मेरी बात सुनने की इच्छा हो तो मैं कहूँ ?''

दुर्योधन ने कहा-``आप अवश्य फरमाएँ ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-``पाण्डवों ने अपनी प्रतिज्ञा का अच्छी तरह से पालन किया है, अतः उनका राज्य अब उन्हें सौंप दिया जाय, यदि तुम राज्य उन्हें नहीं सौंपोगे तो वे तुम्हारे प्राण सहित राज्य को ले लेंगे । बन्धुओं के साथ विरोध करना उचित नहीं है, अतः अच्छी तरह सोच-समझकर निर्णय कर लो । यदि सम्पूर्ण राज्य देने की इच्छा न हो तो कम-से-कम कुशस्थल, वृकस्थल, माकन्दी, वारणावत और हस्तिनापुर ये पाँच गाँव दे दोगे तो भी मैं उन पाण्डवों को समझा दूंगा और इस प्रकार कौरववंश का विनाश रुक जाएगा ।''

श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर दुर्योधन ने कहा-

सूच्यग्रेण सुतीक्ष्णेन, या सा भिद्यते मेदिनी ।
तदर्धं न प्रदास्यामि, विना युद्धेन केशव ! ।।

``हे कृष्ण ! तीक्ष्ण सुई के अग्र भाग से जो भूमि भेदी जाती है, उसका अर्द्ध भाग भी मैं युद्ध के बिना देने के लिए तैयार नहीं हूँ ।''

दुर्योधन की बात सुनकर कुपित हुए श्रीकृष्ण ने कहा-``हे दुर्योधन ! अब तुझे मौत ही पुकार रही है । तुझ पर मैं कुपित हूँ...और पाण्डव कुपित हैं, अब तू जीवन की आशा छोड़ दे ।''

कर्ण ने कहा-``हे राजन् ! श्रीकृष्ण की वाणी से पाण्डवों को पाँच गाँव दे दो ।''

दुर्योधन ने कहा-``मैं सुई के अग्र भाग जितनी भी भूमि देने के लिए तैयार नहीं हूँ । जो होना हो सो हो, उसकी मुझे लेश भी परवाह नहीं है ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-``यह अपना राज्य अपने मस्तक के साथ ही देगा, अब तो कौरव-पाण्डवों का निर्णय कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में ही होने दो ।''

दुर्योधन ने कहा-``उस कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में ही मैं पाण्डवों को भूमि दूंगा...मैं उनका वहीं सत्कार करूंगा ।''

श्रीकृष्ण का आक्रोश

श्रीकृष्ण की बात सुनकर दुर्योधन और कर्ण सभा से बाहर निकल गए और उन्होंने कृष्ण को ही कैद कर डालने का षड्यंत्र रच दिया, परन्तु सात्यकी के संकेत से श्रीकृष्ण को इस बात का पता चल गया और वे अत्यन्त ही आवेश में आकर बोले,...**``अरे दुर्योधन ! मैं तो तुम सबको पाप और भय से मुक्त कराने के लिए आया था और तू मुझे ही कैद करने का षड्यंत्र रचता है ? उपकारी का अपकार करते हुए तुझे लेश भी लज्जा का अनुभव नहीं हो रहा है ? लगता है विनाशकाल निकट आने से तेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई है । खैर, मैं तो अभी तुझे मार डालने में समर्थ हूँ, परन्तु पाण्डवों ने तुझे खत्म करने की जो प्रतिज्ञा की है, वह प्रतिज्ञा भंग न हो, इसलिए तुझे जीवित छोड़ देता हूँ ।''** इस प्रकार अत्यन्त कुपित होकर श्रीकृष्ण सभा से बाहर निकल गए ।

भीष्म पितामह की प्रार्थना

श्रीकृष्ण ने आवेश में आकर ज्योंही सभा का त्याग किया, त्योंही भीष्म, धृतराष्ट्र आदि भी उनके पीछे-पीछे आए और श्रीकृष्ण को शान्त करते हुए बोले-``महान् पुरुष दुर्जन के वचनों को सुन कर भी कोप नहीं करते हैं, अतः आप दुर्योधन पर कोप न करें ? क्या चन्द्रमा में से अग्नि की वृष्टि होती है ? अतः आप नाराज न हों । अरे ! पाण्डव तो दूर रहे, आप अकेले के सामने भी ये दुर्योधन आदि कौरव युद्ध में टिक नहीं सकते हैं । केसरी सिंह के आगे हाथी की क्या ताकत है ? अथवा सूर्य के प्रकाश के आगे अन्धकार कब तक रह सकता है ? अतः आपके आगे भी ये कौरव क्या चीज हैं । ये पापी दुर्योधन आदि तो अपने पाप से स्वयं ही क्षीण हो जायेंगे । गुरुजनों की अवज्ञा करने वाले कब तक जीवित रह सकते हैं ।

``हे कृष्ण ! पाण्डव तो आपके बिना भी युद्ध में विजयी बन जायेंगे, अतः आप कौरव-पाण्डवों के युद्ध में बीच में न आएँ ।''

भीष्म पितामह की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा-**``पूज्यवर ! आपकी बात मैं स्वीकार करता हूँ । मैं पाण्डवों की ओर से युद्ध में उतरूंगा तो भी मैं किसी प्रकार का शस्त्र नहीं उठाऊंगा । मैं केवल युद्धभूमि में अर्जुन का सारथी बनूंगा ।''** इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण ने भीष्म-पितामह आदि को विदा किया ।

दुर्योधन और अर्जुन की अपनी-अपनी पसन्दगी

कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में श्रीकृष्ण का अर्जुन का सारथी बनने की घटना का वर्णन व्यासकृत महाभारत में अलग ढंग से है ।

कौरव और पाण्डवों के बीच युद्ध आरम्भ होने के पहले दुर्योधन और अर्जुन दोनों श्रीकृष्ण के पास सहायता मांगने के लिए आए ।

श्रीकृष्ण आराम कर रहे थे । सर्वप्रथम दुर्योधन आया और वह श्रीकृष्ण के मस्तक के पास आकर बैठ गया । उसके बाद अर्जुन आया और वह श्रीकृष्ण के पैरों के पास बैठ गया ।

थोड़ी देर बाद श्रीकृष्ण ने आँखें खोलीं और पहले उनकी नजर अर्जुन पर पड़ी, उसके बाद उन्होंने दुर्योधन को देखा ।

श्रीकृष्ण अर्जुन से पहले बात करने लगे, तब दुर्योधन बोला-``आपके पास पहले मैं आया हूँ, अतः पहले मुझे युद्ध में सहायता का वचन दें ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-``भले ही तुम पहले आए हो परन्तु मेरी दृष्टि तो पहले अर्जुन पर पड़ी है, अतः पहले उसी को बोलने का अधिकार है और वह तुम्हारा छोटा भाई भी है, अतः उसी को माँगने का अवसर देता हूँ ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-``तुम दोनों युद्ध में मेरी सहायता माँगने के लिए आए हो । मेरे पास दो वस्तुएँ हैं । एक ओर मेरा सैन्य है और दूसरी ओर शस्त्ररहित मैं अकेला हूँ । इन दो में से तुम जो चाहो, एक माँग लो ।''

श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर दुर्योधन सोचने लगा-``अभी यह अर्जुन विशाल सैन्य माँग लेगा तो फिर मुझे क्या मिलेगा ?'' शस्त्ररहित श्रीकृष्ण का मूल्य भी तो क्या है ? परन्तु ज्योंही अर्जुन ने सैन्य के बजाय निःशस्त्र कृष्ण की माँग की, दुर्योधन के आश्चर्य का पार न रहा । उसका मन-मयूर नाच उठा । बस, मुझे विराट् सैन्य मिल जाएगा और दूसरे ही क्षण उसने विराट् सैन्य की माँग कर ली और श्रीकृष्ण ने उसकी मांग स्वीकार कर दी ।

अर्जुन की नजर गुणवत्ता (Quality) पर है, जबकि दुर्योधन की नजर (Quantity) संख्या पर है । दुर्योधन संख्या में विश्वास करता है ।

अर्जुन ने अपने पक्ष में श्रीकृष्ण को लिया । इस कारण उसकी जीत हुई । जबकि दुर्योधन केवल संख्या का ही पुजारी बना रहा-इस कारण उसे मुँह की हार खानी पड़ी ।

हे कर्ण ! तू राधेय नहीं, कौन्तेय है !

हस्तिनापुर से रथ में बैठते समय श्रीकृष्ण ने कर्ण को उठाकर अपने रथ में बिठा लिया और बोले-``हे कर्ण ! तुम्हारे बल पर ही यह दुर्योधन कूद रहा है । दुर्योधन तो दुष्ट है, दुरात्मा है, उस खल के साथ तुम्हारी मैत्री उचित नहीं है, तुम्हारी मैत्री तो युधिष्ठिर के साथ होनी चाहिए, क्योंकि हे कर्ण ! तू राधेय नहीं किन्तु कौन्तेय है । कुछ दिन पूर्व ही माता कुन्ती ने मुझे तुम्हारे जन्म की आदि से अन्त तक की सारी घटना सुनाई थी ।

``तू कुन्ती का पुत्र है'' यह बात सुनते ही कर्ण के आश्चर्य का पार न रहा । तो क्या युधिष्ठिर आदि मेरे सगे भाई हैं ?

कर्ण ने कहा-``दुर्योधन के साथ मैत्री उचित नहीं है, परन्तु प्रारम्भ से ही उसने मुझे आश्रय दिया है । सर्वप्रथम उसी ने मुझे चम्पा का राजा बनाया था और मैंने दुर्योधन को आजीवन मैत्री का वचन भी दिया है, अतः अपनी इस प्रतिज्ञा-पालन के लिए मुझे दुर्योधन के पक्ष में ही रहना चाहिए । अतः आप मुझे युधिष्ठिर का पक्ष लेने का आग्रह न करें ।''

माता कुन्ती के प्रति अपना सद्भाव बताते हुए कर्ण ने श्रीकृष्ण को कहा-``आप कुन्ती को जाकर कहना कि कर्ण अर्जुन को छोड़ किसी पर भी शस्त्र नहीं चलाएगा । इस युद्ध में मैं अर्जुन से ही लडूंगा । या तो मैं मरूंगा या मैं उसे खत्म करूंगा । हम दोनों में से एक की भी मृत्यु होने पर पाण्डव तो पाँच ही रहने वाले हैं ।'' इस प्रकार वार्तालाप कर श्रीकृष्ण ने कर्ण को रथ से उतार दिया ।

श्रीकृष्ण पाण्डु के महल की ओर आगे बढ़े और उन्हें द्वारका चलने के लिए आग्रह करने लगे ।

पाण्डु ने कहा-``तुम युधिष्ठिर को जाकर कहना, वह युद्ध में कमजोर न बने ।'' द्वारका आने की मेरी इच्छा नहीं है । मैं तो उन पाण्डवों को विजेता के रूप में ही देखना चाहता हूँ ।''

पाण्डु की आज्ञा से श्रीकृष्ण ने द्वारका की ओर प्रस्थान किया ।

श्रीकृष्ण ने द्वारका में आकर हस्तिनापुर की सब घटना पाण्डवों को सुना दी । भीम आदि उत्साह में आ गए और जोर-शोर से युद्ध की तैयारी करने लगे ।

दुर्योधन ने श्रीकृष्ण की एक न सुनी और बिना युद्ध के सुई की नोक मात्र भी भूमि पाण्डवों को देने से इन्कार कर दिया ।

सोमक दूत का द्वारका में आगमन

एक दिन जरासन्ध का सोमक दूत द्वारकानगरी में आया । द्वारकानगरी की भव्यता देखकर वह दाँतों तले अँगुली दबाने लगा । नगर के राजमार्गों को पार कर वह राजभवन में पहुँचा । राजसभा की दिव्य शोभा को देखकर उसके आश्चर्य का पार न रहा ।

समुद्रविजय को प्रणाम कर उस दूत ने कहा-``हे राजन् ! अखण्ड कीर्तिशाली और जगत् में अद्वितीय पराक्रमी जरासन्ध ने आपको कहलाया है कि गाय का दूध पीकर हृष्ट-पुष्ट का वध किया था । उससे मेरे दिल में यदुवंश के संहार के लिए क्रोधाग्नि भड़क उठी थी...तब जीवयशा के आँसुओं ने घी का काम किया था । उसी समय मैं स्वयं युद्ध के लिए आने वाला था, परन्तु कालकुमार ने मुझे कहा,-``पिताजी ! मेरे रहते हुए आपका युद्ध में जाना उचित नहीं है-'' इस प्रकार कहकर काल-कुमार स्वयं अपने विराट् सैन्य के साथ यदुवंश को खत्म करने के लिए निकल पड़ा था ।

कालकुमार का आगमन सुनकर तुम सब भाग गए थे । उस समय कालकुमार ने तुम्हारा पीछा किया था । उसने आगे मनुष्यों से रहित एक छावनी देखी, उस छावनी के पास ही अनेक चिताएँ सुलग रही थीं । उन चिताओं के पास ही एक वृद्धा करुण स्वर से विलाप कर रही थी ।''

कालकुमार ने उससे पूछा-``हे भद्रे ! तू क्यों रो रही है ?''

कालकुमार की बात सुनकर उस वृद्धा ने कहा-``हे महानुभाव ! कालकुमार के भय से समुद्रविजय, वसुदेव, बलराम और श्रीकृष्ण आदि यादव इस चिता में जल रहे हैं । मैं श्रीकृष्ण की बहिन हूँ, अतः मैं भी इस चिता में प्रवेश करूंगी ।''

वृद्धा की ऐसी बात सुनकर कालकुमार ने कहा-``मैंने अपने पिताजी के सामने यह प्रतिज्ञा की है कि शत्रु जहाँ भी होगा, वहाँ से उसे खींचकर मैं लाऊंगा, अतः मैं भी चिता में प्रवेश कर उन्हें खत्म करूंगा'' इतना कहकर क्रोधावेश में रहे कालकुमार उस चिता में प्रवेश कर गए और थोड़ी ही देर में भस्मसात् हो गये ।

``कालकुमार की मृत्यु के समाचार से मुझे (जरासंघ को) दुःख हुआ, किन्तु उसके साथ शत्रु भी नष्ट हो गए हैं, इस समाचार से मुझे शान्ति मिली। उसके बाद मेरी पुत्री जीवयशा, अपने पति, भाई व तुम सबको जलांजलि देकर सुखपूर्वक रहने लगी।''

``कुछ समय के बाद रत्नकम्बलों का एक व्यापारी हमारे नगर में आया। उसने जीवयशा को रत्नकम्बल दिखाया। जीवयशा ने उसे कीमत कम करने के लिए कहा, तब उस व्यापारी ने कहा-``हे राजपुत्री !'' द्वारका में तो मुझे इसकी आठ गुनी कीमत मिलती है।''

जीवयशा ने पूछा-``द्वारका कौनसी नगरी है ? वह कहाँ आई हुई है ? वहाँ कौन राज्य करता है ?'' उस व्यापारी ने कहा-``पश्चिम समुद्र तट पर देवों द्वारा निर्मित द्वारका नाम की नगरी है। इन्द्र के अभिमान को भी तोड़ने वाले समुद्रविजय वहाँ के राजा हैं। उनके छोटे भाई वसुदेव हैं। उनके अनेक पुत्र हैं। उन पुत्रों में बलराम और श्रीकृष्ण सूर्य और चन्द्र की भाँति अत्यन्त तेजस्वी हैं। श्रीकृष्ण ने केशी, चाणूर और कंस आदि को भी यमराज का अतिथि बनाया है। श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण राज्यभार सौंपकर समुद्रविजय निवृत्तिमय जीवन बिता रहे हैं।''

व्यापारी की यह बात सुनकर अत्यन्त गहरे श्वासोच्छ्वास लेती हुई जीवयशा बोली-``अरे ! मेरे पति के हत्यारे वे पापी अभी भी जीवित हैं ?'' इस प्रकार कहकर वह राजसभा में आई और करुण क्रन्दन करने लगी।

``उसने मुझे कहा, ``हे पिताजी ! आप मेरे शत्रुओं का वध करने में असमर्थ हो...तो मैं आग में जलकर समाप्त हो जाऊंगी'' उसके ये वचन सुनकर मुझे लगा कि उस दूत ने आकर मुझे जो बात कही थी कि सभी यादव मर गए हैं-क्या यह बात झूठी थी ? अथवा उस वृद्धा ने माया करके मेरे पुत्र को चिता में प्रवेश करा दिया।

इतनी बात करने के बाद उस सोमक दूत ने कहा-``हे राजन् ! जरासन्ध ने आपको यह कहलाया है कि कंस के हत्यारे उन दोनों गोपालों को सौंप दो, इसी में आपका कल्याण है।''

दूत के मुख से यह बात सुनकर कोपायमान बने समुद्रविजय ने कहा, **``मित्रता के नाते जरासन्ध यदि प्राण माँगे तो प्राण देने के लिए हम तैयार हैं, परन्तु सौजन्य का त्याग कर बलात्कार से बलराम-श्रीकृष्ण की जो मांग करते**

हो, वह एकदम अनुचित ही है। राजधर्म के सम्बन्ध से बलवान श्रीकृष्ण ने, नवजात शिशुओं के हत्यारे कंस को खत्म किया, इसमें उसने क्या अनुचित किया है ? इससे तो तुम्हारे स्वामी को खुश होना चाहिए। इसके बजाय तुम्हारा स्वामी उन्हें खत्म करने की इच्छा रखता है, क्या उन्हें श्रीकृष्ण के अद्भुत पराक्रम का ख्याल नहीं है ? क्या जरासन्ध भी कालकुमार की भाँति यमराज का अतिथि बनना चाहता है ?''

जरासन्ध के दूत ने कहा-``राजन् ! क्या आप इतने समय तक जरासन्ध की आज्ञा नहीं मानते थे ? अब यह अहंकार कहाँ से पैदा हो गया ? आप इन दो बालकों पर इतना झूठा अभिमान क्यों करते हो ? जरासन्ध के आगे आपका बल क्या है ? उन गोपाल बालकों की क्या शक्ति है ? अपने शत्रुओं का विनाश करने के लिए दस अक्षौहिणी सेना के साथ कौरवेन्द्र दुर्योधन भी उनके पास आ गया है। मेरे स्वामी के परम मित्र दुर्योधन के शत्रुभूत पाण्डवों को आश्रय देकर भी आपने दूसरा अपराध किया है...अतः आप अपना श्रेय चाहते हों तो तुरन्त ही उन गोपालों को सौंप दो।''

वाचाल दूत की बातें सुनकर गुस्से में आकर श्रीकृष्ण ने कहा-``अरे दूत ! तेरा स्वामी बारंबार `गोप ! गोप !' कहकर मुझे बुलाता है, वह ठीक ही है, क्योंकि गो अर्थात् पृथ्वी का पालन करने में मैं ही समर्थ हूँ। अर्धभरतेश जरासन्ध भी मेरे आगे क्या चीज है ? विजय पाने के लिए संख्या की नहीं, बल की जरूरत रहती है। क्या एक छोटा सा कुल्हाड़ा विशाल वृक्ष को काट नहीं डालता है ? कोमल नवजात शिशु के हत्यारे कंस के पक्षपाती दुर्योधन को भी खत्म करना आवश्यक है। हम कौरवों का नाश करने के लिए निकल पड़े हैं, तेरे स्वामी की भी ताकत हो तो वह युद्ध के मैदान में आ जाय, जिससे हमारा कार्य पूरा हो सके।''

श्रीकृष्ण के इन आक्रोश भरे शब्दों को सुनकर दूत ने वहाँ से विदा ली और उसने जाकर सब बातें जरासन्ध को सुना दीं।

शल्यराज का समाधान

जरासन्ध राजा के दूत को विदा देकर श्रीकृष्ण ने सब बातें पाण्डवों को सुना दी, जिसे सुनकर पाण्डव भी खुश हो गए।

अनुकूल शुभमुहूर्त में माता कुन्ती से आशीर्वाद प्राप्त कर श्रीकृष्ण व

सेना सहित पाण्डवों ने कुरुक्षेत्र युद्धभूमि की ओर प्रयाण करने की भेरी बजा दी ।

पाण्डवों में हजारों नरवीर योद्धा थे जिनकी पत्नियों ने उनके मस्तक पर विजय का तिलक किया था ।

श्रीकृष्ण व युधिष्ठिर की आज्ञा से विराट-सेना ने प्रयाण प्रारम्भ कर दिया । हजारों-लाखों सैनिकों के प्रयाण से चारों ओर आकाश में धूल उड़ रही थी । क्रमशः आगे बढ़ते हुए वे रैवताचल पर्वत के निकट आए और वहाँ डेरे-तम्बू डालकर विश्राम करने लगे ।

मध्याह्न के समय में युधिष्ठिर आराम कर रहे थे । तभी द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि मद्र देश के अधिपति राजा शल्य पधार रहे हैं ।

युधिष्ठिर की स्वीकृति मिलते ही द्वारपाल शल्यराज को लेकर युधिष्ठिर के सामने उपस्थित हो गया ।

औपचारिक स्वागत-विधि और वार्तालाप के बाद शल्य राजा ने कहा, ``युधिष्ठिर ! आपने मुझे युद्ध में लड़ने के लिए निमंत्रित करने हेतु दूत भेजा था... परन्तु मुझे इस बात का दुःख है कि आपके दूत के आगमन के पहले दुर्योधन का दूत मेरे पास आ गया था और मैंने उसके आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया था, अतः मैं आपके आमंत्रण को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ । क्योंकि मैंने उसे एक बार वचन दे दिया है, अब यदि मैं उसके वचन का पालन न करूँ तो यह बात क्षत्रिय के लिए कलंक रूप हो जाएगी ।''

युधिष्ठिर ने कहा-``मामाजी ! इसमें आपने कुछ भी अनुचित नहीं किया है । दुर्योधन भी आपका दामाद है, अतः आपको संकोच रखने की आवश्यकता नहीं है, आप शीघ्र प्रयाण करो । दुर्योधन आपकी सहायता प्राप्त कर सन्तोष धारण करेगा ।'' युधिष्ठिर के पास से शल्य राजा ने विदा ली । वे ज्योंही आगे बढ़े कि नकुल और सहदेव भी उनके पीछे-पीछे चले । कुछ दूर जाने के बाद नकुल ने कहा-``मामाजी ! आपने बहुत ही अनुचित किया है, जब माता माद्री को इस बात का पता चलेगा, तब उसे कितना अधिक दुःख होगा ?''

शल्य राजा ने कहा-``नकुल ! तुम्हें जो पसन्द हो वह माँग लो, मैं अपने वचन का पालन कर जो कुछ शक्य होगा, वह करने के लिए तैयार हूँ ।''

नकुल ने कहा-``आप हमें वचन देते हैं तो इतना काम करें-युद्ध में कर्ण के उत्साह को मन्द करने का उत्तरदायित्व आपका रहे ।''

शल्य राजा ने नकुल-सहदेव की बात स्वीकार कर ली ।

नदी किनारे पड़ाव

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही श्रीकृष्ण और पाण्डवों की सेना आगे बढ़ने लगी । क्रमशः आगे बढ़ते हुए वे कुरुक्षेत्र के निकट रही सरस्वती नदी के किनारे पहुँच गए । वहाँ डेरे डालकर पाण्डव-सेना विश्राम करने लगी ।

इसी बीच राजगृही नगरी से शेखरक नाम का दूत श्रीकृष्ण के पास आया और चरणों में प्रणाम कर बोला-``आपके पास से जाकर सोमक दूत ने जरासन्ध राजा के कान भंभेरे और उसे युद्ध के लिए उत्साहित किया । जरासन्ध स्वयं शस्त्र-सज्ज बनकर युद्ध-प्रयाण की तैयारी करने लगा, तभी पास में रहे किसी कौरव ने कहा-``हे राजन् ! क्या सिंह कभी हिरण से युद्ध करता है ? सूर्य की शक्ति से उसकी किरणें ही अन्धकार को भेद डालती हैं, अतः आप भी हमारे पीछे ही रहो । आपके पीठबल से हम इन पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण का अवश्य नाश करेंगे ।'' उसी समय छींक आदि अपशकुन होते हुए भी जरासन्ध ने कुरुक्षेत्र की ओर प्रयाण के लिए आदेश दे दिया । सेना के प्रयाण समय राजगृही नगरी की भूमि भी काँप उठी । दिशाएँ श्याम हो गईं । आकाश से चारों ओर उल्कापात होने लगा । इतना होने पर भी जरासन्ध ने इन अपशकुनों की लेश भी परवाह नहीं की और उसने कौरवसैन्य के साथ कुरुक्षेत्र की ओर प्रयाण कर दिया । धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए जरासन्ध के सैन्य ने कुरुक्षेत्र की सरस्वती नदी के किनारे अपना पड़ाव डाला ।

सन्ध्या समय जरासन्ध ने अपने पक्ष के सभी राजाओं के समक्ष उद्घोषणा की कि मेरी सेना श्रीकृष्ण और पाण्डवों को खत्म करेगी । जरासन्ध की इस उद्घोषणा को सुनकर दुर्योधन ने खड़े होकर कहा-``हे राजेन्द्र ! आप मेरी प्रार्थना सुनने की कृपा करें । मैं जानता हूँ कि आपके सामने इन्द्र भी तुच्छ है । फिर भी पाण्डव-संहार का यश मुझे ही लेने दें । जब तक कौरव पाण्डव का युद्ध चले, तब तक आप प्रेक्षक बनने की ही कृपा करें । सेवक के हाथों से प्राप्त विजय से स्वामी का ही यश बढ़ता है ।''

दुर्योधन की यह प्रार्थना सुनकर जरासन्ध खुश हो गया और उसने दुर्योधन को लड़ने के लिए सहमति दे दी ।

भीष्म कौरव-सेना के सेनापति बने

सन्ध्या समय दुर्योधन ने भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शकुनि, शल्य, दुःशासन आदि सभी को इकट्ठा किया और बोला-``पाण्डवों के साथ युद्ध के लिए मैंने जरासन्ध से सहमति प्राप्त कर ली है, अतः अब निर्णय किया जाय कि अपनी सेना में अतिरथी, महारथी, अर्द्धरथी आदि कितने हैं ? और किसे सेनाधिपति बनाया जाय ?''

भीष्म ने कहा-``दुर्योधन ! यह सब पूछने की क्या जरूरत है ? ये बातें तो तू सब जानता ही है । हाँ ! कर्ण दयालु और प्रमादी होने से उसकी गणना महारथी में नहीं, किन्तु अर्धरथी में होनी चाहिए ।''

पितामह की बात सुनकर कर्ण को एकदम गुस्सा आ गया और वह आवेश में आकर बोला, ``दुर्योधन ! जब तक पितामह युद्ध में अतिरथी के रूप में सेना का नेतृत्व करेंगे तब तक मैं युद्ध में शस्त्र धारण नहीं करूंगा'' इस प्रकार कहकर कर्ण नाराज होकर सभा से बाहर चला गया ।

कर्ण के चले जाने से दुर्योधन उदास हो गया । उसे उदास देखकर भीष्म ने कहा-``जब तक मैं बैठा हूँ, तब तक तू क्यों चिन्ता करता है ?''

दुर्योधन ने कहा-``यदि ऐसा ही है तो आप इस युद्ध में मेरे सेनापति बनना स्वीकार कीजिए ।''

दुर्योधन के आग्रह से भीष्म ने सेनाधिपति पद स्वीकार लिया ।

पाण्डवों का सेनाधिपति धृष्टद्युम्न बना

इधर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को युद्ध का नेतृत्व सँभालने के लिए निवेदन किया । श्रीकृष्ण ने कहा, ``युधिष्ठिर ! आप पाण्डव ही इन कौरवों को आसानी से जीतने का सामर्थ्य रखते हो, अतः मेरी सहायता की कोई जरूरत नहीं है । फिर भी पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार मैं इस युद्ध में अर्जुन का सारथी अवश्य बन सकूंगा ।'' युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की बात स्वीकार की । तत्पश्चात् अनेक राजाओं के साथ विचार-विमर्श कर द्रुपद राजा के पुत्र धृष्टद्युम्न को सेनाधिपति बना दिया गया ।

युधिष्ठिर ने अपनी समस्त सेना को सुसज्ज बनने के लिए आदेश दे दिया । तभी अनेक वीर माताओं ने अपने पुत्रों के मस्तक पर तिलक किया । वीर स्त्रियों ने अपने-अपने पति के मस्तक पर तिलक किया और इस युद्ध में विजयी बनने की कामनाएँ कीं ।

युद्ध की आचार-संहिता का स्वीकार

रात्रि व्यतीत हुई और पूर्व दिशा में सूर्यनारायण अपनी सहस्त्र किरणों के साथ प्रकट हुए । सैनिकों की छावनी में चारों ओर आनन्द की लहर फैल गई । युद्ध तो क्षत्रिय के लिए महोत्सव समान होता है, अतः सभी क्षत्रिय वीर सज-धजकर अपने-अपने शस्त्रों के साथ युद्ध-भूमि में प्रयाण करने के लिए सुसज्ज बन गए ।

दोनों सेनाएँ कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में आमने-सामने आकर खड़ी हो गई । सर्वप्रथम दोनों सेनाओं ने इस मर्यादा को स्वीकार किया कि कोई भी सैनिक छावनी में रहे व्यक्ति पर, शस्त्ररहित व्यक्ति पर और स्त्री पर प्रहार नहीं करेगा ।

महाभारत के युद्ध का दिन उग चुका था । सूर्यनारायण ने अपनी रक्त-किरणों के बहाने अठारह अक्षौहिणी सेना पर लाल आँख फेंक दी ।

दोनों सेनाएँ सुसज्ज थीं । रथ के घोड़े रथपति को वहन करने के लिए जोर-जोर से हेषारव कर रहे थे । मदोन्मत्त हाथी शत्रुओं की शोध करते हुए अपनी सूंड को इधर-उधर हिला रहे थे । हजारों-लाखों क्षत्रिय वीरों में से कोई गदा घुमा रहा था तो कोई तलवार घुमा रहा था । कोई युद्धभूमि में मरकर स्वर्ग में जाने के लिए उत्साही था...तो कोई कौरवों के प्रति रोष से आँखें लाल कर रहा था । कोई प्रतिष्ठा के लोभ से तो कोई धर्म-अधर्म के विवेक से...तो कोई मित्र की प्रेरणा से...तो कोई स्वजन के मोह से तो कोई यौवन के उत्साह में आकर युद्धभूमि में घूम रहा था ।

कौरव सेना की ओर से भीष्म पितामह आगे आए । उनकी विशाल छाती पर बर्फ के समान श्वेत-दाढ़ी फर-फर कर रही थी । उनके मस्तक पर मुकुट शोभायमान था । उनके हाथों में धनुष था । उनके रथ के आसपास द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, दुःशासन आदि महारथी अपने-अपने रथों में सज्ज थे ।

अर्जुन का विषाद

पाण्डव सेना का अधिपति धृष्टद्युम्न था, परन्तु पाण्डवसेना की विजय का आधार तो अर्जुन ही था । अर्जुन रथ में आरूढ़ होकर युद्धभूमि में आ चुका था, उसके रथ को श्रीकृष्ण स्वयं हाँक रहे थे ।

दोनों सेनाओं में शंख फूँके जाने लगे ।

रथ में बैठे अर्जुन ने श्रीकृष्ण को पूछा-``मुझे किसके साथ लड़ना है, उनको मैं आसानी से देख सकूँ, अतः रथ को दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दो ।''

तुरन्त ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को दोनों सेनाओं के बीच लाकर खड़ा कर दिया । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण बोले-**``अर्जुन ! जरा सामने देख, ये जो सामने दिखाई दे रहे हैं, ये कौरव कुल के पितामह भीष्म हैं, इनके घोड़े सफेद वर्ण के हैं और इनकी ध्वजा में ताड़ का चिह्न है ।''**

इधर कलश के चिह्न से युक्त ध्वजा वाले रथ में आरूढ़ द्रोणाचार्य हैं, इनके रथ में लाल रंग के घोड़े हैं ।

इधर सामने कृपाचार्य का रथ है, इनके रथ में चन्दनवर्णीय घोड़े हैं और ध्वजा में कमंडल का चिह्न है ।

इधर नीलवर्ण के घोड़ों से युक्त रथ में दुर्योधन बैठा है, इसकी ध्वजा में नाग का चिह्न है ।

इधर शकुनि का रथ है, इधर दुःशासन शस्त्र-सज्ज बनकर खड़ा है...उधर अश्वत्थामा है...उधर शल्य राजा है...उधर जयद्रथ खड़ा है...इधर भूरिस्त्रवा है...उधर भगदत्त है ।

इस प्रकार अपने स्वजन, कुटुम्बीजन व गुरुजन को युद्धभूमि में सामने खड़े देखकर अर्जुन का उत्साह एकदम भंग हो गया...वह बोला-``हे कृष्ण ! जिनकी गोद में मैं बालपन से बैठा हूँ...जिन्होंने मुझे प्रेम का अमृतपान कराया...ऐसे पितामह पर ही शस्त्र उठाना ? ओहो ! यह तो मेरे लिए असम्भव है ।''

``अरे ! जिन्होंने मुझे दिल देकर धनुर्विद्या का अभ्यास कराया है... और जिन्होंने मुझे श्रेष्ठ धनुर्धर बनाया है...ऐसे मेरे उपकारी गुरुदेव पर ही मुझे बाण चलाने पड़ेंगे ? ''

``ओहो ! ये कृपाचार्य तो मेरे विद्यादाता हैं, उनका वध मैं कैसे कर सकता हूँ ?''

``अहो ! यह दुर्योधन ! जिसके साथ मैं वर्षों तक गंगा नदी के किनारे नदी की रेत में खेला हूँ, उसी का वध मेरे हाथों से ?''

``मेरी बहिन दुःशल्या का पति जयद्रथ ! उसका वध करके अपनी बहिन को ही मैं विधवा बनाऊँ ? ओहो ! यह युद्ध मुझसे कैसे हो सकेगा ?''

``अहो ! इन सबको युद्धभूमि में देखकर मुझे तो पसीना छूट रहा है... मेरा मुख सूख रहा है । गाण्डीव धनुष मेरे हाथ में से नीचे गिर रहा है ।''

``हे कृष्ण ! इन सबके रक्त से कलंकित बनी इस पृथ्वी का राज्य मुझे नहीं चाहिए । ऐसे राज्य को प्राप्त करने के बजाय तो मुझे वन का जीवन पसन्द पड़ रहा है । मैं इस युद्ध में लड़कर विजयी बनना नहीं चाहता हूँ ।''

श्रीकृष्ण का प्रेरणा बल

युद्ध के मैदान में अर्जुन के मुख से इस प्रकार की कायरता भरी बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा-``अरे अर्जुन ! तेरे मुख में पण्डित की भाषा है, किन्तु तेरे हृदय में पण्डित की विशुद्धि नहीं है ।...मात्र पामरता और कमजोरी ही है । तेरी यह पामरता और कमजोरी ही इन मनोहर शब्दों के लिबास में बाहर आई है । यदि तू थोड़ी देर गहराई से विचार करेगा तो तेरे ही ये शब्द तुझे विचित्र प्रतीत होंगे ।''

``अर्जुन ! भीष्म के साथ तुझे लड़ना है, इस बात की तुझे आज खबर पड़ी ? युद्ध में द्रोणाचार्य आदि आने वाले हैं, क्या इस बात को तू पहले नहीं जानता था ?...यह सब कुछ जानते हुए भी तूने युद्ध के लिए आह्वान किया था, वह सब एक पल में कहाँ चला गया ?''

अर्जुन ने कहा-``श्रीकृष्ण ! जब मैंने युद्ध के लिए आह्वान किया था, तब युद्ध प्रत्यक्ष नहीं था, आज इस युद्ध का कटु परिणाम मेरी आँखों के सामने घूम रहा है ।''

श्रीकृष्ण हँसकर बोले-``अरे ! अर्जुन ! युद्ध के परिणाम की कल्पना तुझे आज आई ? विराट का राजकुमार ऐसे शब्द बोले तो चले...किन्तु कुन्तीपुत्र के लिए ये शब्द शोभास्पद नहीं हैं ।''

``अर्जुन ! युद्ध के मैदान में खड़े होने के बाद ऐसी कायरता की बातें उचित नहीं हैं । तेरी यह दया क्षत्रिय के लिए उचित नहीं है । केवल दया से क्षत्रिय धर्म की वृद्धि नहीं होती है । गुरु, पिता, पुत्र और बन्धु भी यदि अपने हाथ में हथियार धारण कर लें तो उन्हें निःशंक खत्म करना चाहिए, यही तो क्षत्रिय का धर्म है ।''

``बन्धु तभी तक बन्धु है, जब तक वह पराभव नहीं करता है...यदि वह पराभव करने लगे तो उसका तो शिरोच्छेद ही करना चाहिए ।''

''पितामह आदि के प्रति तेरे दिल में भक्तिभाव उभर रहा है...परन्तु उनके दिल में तेरे प्रति कहीं वात्सल्य का भाव उमड़ता दिखाई दे रहा है तुझे !''

''अतः तू दया की बातें छोड़ दे और हाथ में बाण उठा और शत्रुवर्ग का क्षय कर ।''

''हे अर्जुन ! तू इन पापियों को मारने वाला कौन ? ये पापी तो अपने ही पाप से नष्ट होने वाले हैं ?''

''द्रौपदी के अपहरण के प्रसंग में भीष्म-द्रोण आदि ने मौन धारण कर और दुर्योधन-दुःशासन आदि ने द्रौपदी का घोर अपमान कर जो पाप अर्जित किया है, उस पाप का फल उन्हें भोगने दे । तू तो इस युद्ध में निमित्त मात्र है ।''

''तेरे जैसा महापराक्रमी होते हुए भी यदि कौरवों का वध नहीं किया गया...तो यह राज्य-लक्ष्मी तेरे भाइयों के हाथ से चली जाएगी और इस समस्त पृथ्वी पर अन्यायी दुर्योधन का एकछत्र साम्राज्य रह जाएगा । इस प्रकार युद्ध से विराम लेकर तू अन्यायी साम्राज्य के प्रचार में निमित्त तो नहीं बन रहा है न ? हे अर्जुन ! तू इन बातों पर ध्यान देकर विचार कर ।''

''प्रजा के भावी अहित को प्रत्यक्ष जान कर भी उसकी उपेक्षा करना क्षत्रिय का धर्म नहीं है ।''

''हे अर्जुन ! तू इस मोह के वस्त्र को उतार दे...और युद्ध के लिए तत्पर होकर पृथ्वी पर से अन्याय को दूर भगा दे । तेरा यह युद्ध व्यक्ति के साथ नहीं है, किन्तु अधर्म के साथ है । अधर्म के नाश और धर्म की रक्षा के लिए युद्ध भी करना पड़े तो युद्ध करना-यही तो क्षत्रियव्रत है ।''

श्रीकृष्ण की शौर्यभरी वाणी ने अर्जुन के हृदय पर जादुई असर पैदा किया । अर्जुन का मोह नष्ट हो गया । इस घटना को कवि के शब्दों में भी देख लें-

पार्थ को कहो चढ़ाए बाण । अब तो युद्ध ही कल्याण ।।

बस ! तुरन्त ही अर्जुन ने गाण्डीव धनुष अपने हाथों में उठा लिया और एक महापराक्रमी योद्धा की भाँति युद्ध-भूमि में दिखाई देने लगा ।

युधिष्ठिर का विनय

कुरुक्षेत्र का मैदान लाखों वीर योद्धाओं से भरा हुआ था । दोनों पक्षों में युद्ध की तैयारी हो चुकी थी । युद्ध प्रारम्भ होने में अब थोड़ी देर थी । इसी

बीच युधिष्ठिर अपने रथ से नीचे उतर गए और शत्रुपक्ष की ओर आगे बढ़े। युधिष्ठिर की इस चेष्टा को देखकर भीम को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे युधिष्ठिर का यह व्यवहार विचित्र सा लगा। ``कहीं युधिष्ठिर युद्ध के मैदान में समझौता न कर लें ?'' भीम इन विचारों में एकदम डूब गया।

युधिष्ठिर आगे बढ़ता हुआ भीष्म पितामह के रथ के पास आया और उसने पितामह के चरणों में अत्यन्त ही आदर और सद्भावपूर्वक प्रणाम किया।

भीष्म ने युधिष्ठिर का मस्तक सूंघा और बोले-``बेटा ! युधिष्ठिर ! चिरंजीव ! अब कुछ ही क्षणों बाद भयंकर युद्ध होने वाला है। मुझे तो इस युद्ध में कौरववंश का विनाश ही नजर आ रहा है।''

``बेटा युधिष्ठिर ! आज भारतवर्ष में धर्मसंकट है। कुरुक्षेत्र जैसे धर्मक्षेत्र में आज युद्ध होगा, इससे समस्त भारत के वातावरण में खलबली मच जाएगी; परन्तु हे युधिष्ठिर ! तू निःशंक बन। इस युद्ध के बाद ही भारत में धर्म की स्थापना होगी।''

``पितामह ! अब कुछ ही समय बाद हमें तो इस कुरुक्षेत्र की भूमि में चिरनिद्रा में ही सोना होगा।'' युधिष्ठिर ने कहा।

``बेटा युधिष्ठिर ! ऐसी दीनता की बातें क्यों कर रहा है ?'' भीष्म ने कहा।

``पितामह ! आपके दिव्य तेज के सामने सम्पूर्ण जगत् का क्षात्रतेज भी निस्तेज बन जाता है तो हमारी तो क्या हिम्मत है ?''

भीष्म एकदम बोल उठे-``युधिष्ठिर ! यदि काले केश का मानव यह मानता हो कि इस युद्ध में दुर्योधन की जीत होगी, तो यह उसकी भयंकर भूल है। युधिष्ठिर ! इस युद्ध में तो तेरी ही जीत होने वाली है।''

``पितामह ! मुझे आप आशीर्वाद दीजिए।'' युधिष्ठिर ने कहा।

``बेटा युधिष्ठिर ! जा, तुझे मेरे अन्तर से आशीर्वाद है। इस युद्ध में तू विजेता बनेगा, क्योंकि धर्म तेरे पक्ष में है। जिधर धर्म होता है, उधर ही जीत होती है। यतो धर्मस्ततो जयः। मैं दुर्योधन की दुष्टता को अच्छी तरह से जानता हूँ...परन्तु मेरी कमजोरी है...मैं उसका त्याग नहीं कर पाता हूँ।''

``युधिष्ठिर ! जा...अर्जुन को कहना-वह मेरी दया न खाये। हाँ, वृद्धजन सेवा के अधिकारी जरूर हैं, परन्तु प्रतिपक्ष में बैठ जायें तो वे दया के नहीं वध के ही पात्र हैं। जा, कुन्तीपुत्र ! ईश्वर तेरा कल्याण करे।''

युधिष्ठिर ने पितामह के चरणों में पुनः प्रणाम किया और वहाँ से विदा ली । पितामह को प्रणाम कर युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के पास गया और उसने उनको भी भावपूर्वक प्रणाम किया ।

पितामह को पाप का भय

कौरव-पाण्डवों के इस युद्ध-प्रसंग में हम जानते हैं कि पितामह कौरवपक्ष में रहे । इतना होने पर भी उनके दिल में सत्य का ही पक्ष था और दुर्योधन के पक्ष में रहने में वे अपनी लाचारी समझते थे ।

महर्षियों की यह आर्षवाणी है-**यदि शक्ति व सामर्थ्य हो तो जीवन में पाप का सर्वथा त्याग करना चाहिए, इतना न हो सके तो जीवन में कम-से-कम पाप का भय तो अवश्य होना चाहिए । जिसके दिल में पाप का भय नहीं है अथवा किए हुए पापों का पश्चाताप भी नहीं है, ऐसे व्यक्ति का कल्याण कभी सम्भव नहीं है ।**

उत्तरकुमार की मृत्यु

कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध की भेरियाँ बज उठीं...और दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया । परस्पर तलवारें टकराने लगीं । दोनों सेनाओं से बाणों की वृष्टि प्रारम्भ हो गई । अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष उठाया और उसने जोर से टंकार किया । रथ वाले रथ वालों के साथ, तलवार वाले तलवार वालों के साथ और हाथी पर सवार, हाथी पर सवार के साथ लड़ने लगे । देखते-ही-देखते कुरुक्षेत्र की भूमि मानव-रक्त से रंजित बनने लगी । स्थान-स्थान पर अनेक मस्तक धड़ से नीचे गिरते दिखाई देने लगे ।

धृष्टद्युम्न और भीष्म पितामह दोनों अपनी-अपनी सेना को पानी चढ़ा रहे थे । अभिमन्यु, उत्तरकुमार और पाँचों पांचाल भी युद्धभूमि में अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखा रहे थे । पहले दिन के युद्ध में कौरव सैन्य में से अनेक पराक्रमी सैनिक मारे गए ।

पाण्डवसेना में से भी युद्ध के पहले ही दिन मद्रराजा शल्य ने विराटपुत्र उत्तरकुमार को मार डाला । उत्तरकुमार की मृत्यु से पाण्डवसेना में हाहाकार मच गया ।

सूर्यास्त का समय हुआ और दोनों सेनाओं ने अपनी युद्धनीति के अनुसार युद्ध-विराम की घोषणा कर दी ।

उत्तरकुमार की मृत्यु से विराट राजा की पत्नी सुदेष्णा को अत्यन्त आघात लगा । युधिष्ठिर ने उसे आश्वासन दिया और कहा-**``हे सुदेष्णा ! इतने दिन तक तू वीरपत्नी ही थी...परन्तु उत्तरकुमार के युद्ध में बलिदान देने से अब तू वीर-माता भी बनी है, अतः तू शोक का त्याग कर दे ।''**

इस प्रकार पाण्डव और कौरव सेना के बीच आठ दिन तक भयंकर युद्ध चलता रहा । इन आठ दिनों में कौरव व पाण्डव सेना में से अनेक युद्धवीर-नरवीर सैनिक मारे गए, परन्तु एक भी पक्ष विजेता नहीं बन सका ।

दुर्योधन की दीनता

महाभारत के युद्ध के आठ दिन व्यतीत हो चुके थे । इन आठ दिनों में तो भीम और अर्जुन ने कौरव सेना के होश उड़ा दिए थे ।

आज युद्ध-विराम का दिन था । दुर्योधन अत्यन्त ही अस्वस्थ नजर आ रहा था । उसके दिल में शान्ति नहीं थी । उसकी नींद हराम हो चुकी थी । रात्रि में अपनी शय्या से खड़ा होकर वह एकदम भीष्म पितामह की छावनी की ओर बढ़ा ।

``दुर्योधन ! इतनी देर रात को ?'' पितामह ने पूछा ।

``पितामह ! आपके पास नहीं आऊँ तो कहाँ जाऊँ ?'' दुर्योधन ने जवाब दिया ।

``आने का विशेष प्रयोजन ?''

``पितामह ! पितामह !'' कहते हुए दुर्योधन पितामह के निकट आकर बैठ गया और बोला-``पितामह ! मुझे इस बात का पता होता तो मैं युद्ध प्रारम्भ ही नहीं करता और हस्तिनापुर का राज्य छोड़कर वन में चला जाता ।''

``आखिर तू क्या कहना चाहता है ? पूरी बात तो कर ।'' पितामह ने कहा ।

``पितामह ! मैं सच-सच कह दूँ ? फिर आप बुरा नहीं मानेंगे न ? आप पाण्डवों के साथ दिल देकर नहीं लड़ रहे हो, यही मेरी आपसे शिकायत है । आप रहे हमारे पक्ष में और पक्ष पाण्डवों का कर रहे हो, यह आपकी नीति मुझे पसन्द नहीं है ।'' दुर्योधन ने कहा ।

``अरे दुर्योधन ! मैं युद्ध में बराबर नहीं लड़ रहा हूँ, क्या यह तेरा आक्षेप सत्य है ?''

``हाँ ! हाँ ! हाँ ! एकदम सत्य है । भीष्म ने तय किया होता तो लड़ाई पहले ही दिन समाप्त हो जाती । आज आठ दिन बीत चुके हैं, फिर भी ये पाण्डव नहीं मर रहे हैं और अपना मस्तक ऊँचा करके घूम रहे हैं'' दुर्योधन ने कहा ।

``अरे दुर्योधन ! तेरी आँखों पर ऐसे चश्मे चढ़े हुए हैं कि मैं तेरे लिए कितना भी करूँ तो भी तुझे कम ही दिखने वाला है ।''

``दुर्योधन ! तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है । अर्जुन को हराना तो इन्द्र को भी भारी पड़ता है, तू इस बात को नहीं जानता है । उसके रथ को हाँकने वाले श्रीकृष्ण के पराक्रम को तू नहीं जानता है ?'' भीष्म बोले ।

``आप यह सब प्रपंच छोड़ दो और पाण्डवों को खत्म करो, यही एक मेरी इच्छा है''-दुर्योधन ने कहा ।

``दुर्योधन ! पाण्डव तो अजेय हैं, उनको खत्म करने की ताकत किसी में नहीं है । उनके पक्ष में न्याय है-सत्य है, अतः आखिर जीत तो उन्हीं की होने वाली है । मैं तेरे पक्ष में बैठा हूँ, यही तो मेरी कमजोरी है । मैं तेरी भक्ति से आवर्जित हो गया था, इसीलिए तेरी ओर से लड़ रहा हूँ । फिर भी जिस पक्ष में अर्जुन है, उसको जीतना आसान बात नहीं है । इस समरांगण में हमारी जय तो संदिग्ध है । फिर भी कल मैं युद्ध-भूमि में अपना पराक्रम दिखला दूंगा ।''

भीष्म के शब्दों से दुर्योधन को कुछ आश्वासन मिला और वह अपनी छावनी में आ गया ।

भीष्म का अद्‌भुत पराक्रम

प्रातःकाल होते ही नौबत की ध्वनियों से सम्पूर्ण आकाश मंडल गूँज उठा ।

धड्‌ड्‌ड्‌ड्‌....ढीम....धड्‌ड्‌ड्‌ड्‌...ढीम...धड्‌ड्‌ड्‌ड्‌...ढीम... इन ध्वनियों को सुनकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जागृत करते हुए कहा-``लगता है आज भीष्म पितामह अपना सम्पूर्ण पराक्रम दिखला देना चाहते हैं ।''

दोनों सेनाएँ आमने-सामने आकर खड़ी हो गईं । भीष्म पितामह ने आज अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखलाया । उनके अद्‌भुत पराक्रम को देख अनेक पाण्डव-सैनिक मौत के मुँह में घुस गए...अनेक सैनिक दुम दबाकर युद्ध-भूमि को छोड़कर भाग गए । पितामह की बाणावली का कोई प्रतिकार न कर सका और संध्या होते-होते तो पाण्डव-सेना का कचूमर निकल गया ।

पाण्डव-कृष्ण की मंत्रणा

सूर्यास्त के बाद सभी पाण्डव और श्रीकृष्ण मंत्रणा के लिए इकट्ठे हुए । युधिष्ठिर ने कहा-``आज देखा न पितामह का पराक्रम ! मुझे लगता है पितामह इसी प्रकार लड़ते रहे...तो हमारी विजय की आशा तो दूर रही...हमें अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ेगा ।''

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा-``युधिष्ठिर ! भीष्म को खत्म करने के लिए मेरी भुजाएँ उछल रही हैं, कल ही मैं उन्हें खत्म कर दूँ, परन्तु मेरी प्रतिज्ञा मुझे रोक रही है । युधिष्ठिर ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो कल ही इस पृथ्वी को गांगेय रहित बना दूँ ।''

युधिष्ठिर ने कहा-``आप यदि धनुष संधान करें तो आपके आगे टिकने की किसी की ताकत नहीं है तो फिर भीष्म तो क्या चीज है ? परन्तु पूर्व वचनदान के अनुसार ऐसा करना उचित नहीं लगता है, आप दूसरा कोई उपाय बतलाइये ।''

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा-``युधिष्ठिर ! तुझे पता ही होगा कि भीष्म दीन, भयभीत, नपुंसक, स्त्री व निःशस्त्र पर हथियार नहीं चलाते हैं । द्रुपद राजा का पुत्र शिखंडी नपुंसक है, उसे आगे रखकर युद्ध किया जाय तो पितामह का पराक्रम अवश्य कमजोर हो जाएगा ।''

युधिष्ठिर को यह बात पसन्द पड़ गई । मंत्रणा पूर्ण कर सभी ने विदाई ली ।

युद्ध का दसवाँ दिन

प्रातःकाल होते ही भीष्म पितामह युद्ध-भूमि में आ डटे । अर्जुन भी युद्ध-भूमि में आ खड़ा हुआ । कौरव और पाण्डव सेना के बीच युद्ध आरम्भ हो गया । भीष्म पितामह की बाणवृष्टि प्रारम्भ हो चुकी थी । पाण्डवों ने अवसर देखकर, अर्जुन को पीछे हटाकर उसके आगे शिखण्डी को ला दिया । शिखण्डी ने पितामह पर बाणों की वृष्टि चालू कर दी ।

अपने सामने नपुंसक शिखण्डी को देखकर पितामह ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपना धनुष धरती पर नीचे रख दिया । पितामह की रक्षा के लिए पास में खड़े दुर्योधन आदि शिखण्डी के बाणों को बीच में ही तोड़ने लगे । दुर्योधन ने शिखण्डी पर प्रति आक्रमण किया, परन्तु पास में रहे भीम और अर्जुन अपने अद्‌भुत पराक्रम द्वारा शिखण्डी का रक्षण करते रहे ।

अन्त में, श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा-``अरे अर्जुन ! पाण्डव सेना के विनाश को जरा देख तो सही । तेरा एक भी बाण भीष्म को नहीं लग रहा है, अतः तू शिखण्डी के पीछे खड़ा रहकर पितामह को घायल कर दे ।''

अर्जुन ने पितामह पर बाणों की वृष्टि चालू कर दी । अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से पितामह का देह घायल हो गया । आगे शिखण्डी खड़ा होने से पितामह अर्जुन का प्रतिकार न कर सके ।

पितामह समझ गए कि ये अमोघ बाण अर्जुन को छोड़कर अन्य किसी के नहीं हो सकते ।

पितामह ने सारथी को कहा-``सारथी ! ये बाण शिखण्डी के नहीं किन्तु अर्जुन के ही हैं, क्योंकि क्षत्रिय वीर नपुंसक के बाणों से कभी नहीं मरता है ।''

भीष्म पितामह युद्ध कै मैदान में अर्जुन के बाणों से घायल हो चुके थे । पितामह ने अपने हाथों से धनुष-बाण नीचे छोड़ दिए थे । पितामह के जर्जरित देह को देख अर्जुन का मन विषाद से भर आया । इधर सूर्य अस्ताचल की ओर प्रयाण कर चुका था, अतः दोनों सेनाओं में युद्ध-विराम की घोषणा भी हो चुकी थी ।

बाणों के प्रहारों से जर्जरित बने पितामह के पास सभी पाण्डव और कौरव आकर खड़े हो गए ।

तभी आकाश में रहे मित्र विद्याधर ने कहा-``हे गांगेय ! गुरु की कही हुई वाणी का स्मरण करो ।''

गांगेय दीक्षा के लिए आतुर

विद्याधर की वाणी सुनकर दुर्योधन ने पितामह के पास आकर पूछा-``हे पितामह ! यह विद्याधर आपको कौनसी बात याद दिला रहा है ?''

पितामह ने कहा-``दुर्योधन ! सुनो । जब मैं अपने मामा के घर था, तब एक बार अपनी माता के साथ चारण मुनि की वन्दना के लिए गया था । मुनि को मैंने भावपूर्वक वन्दन किया था । मुनिवर ने साधुधर्म और गृहस्थ-धर्म का उपदेश दिया था, उस उपदेश से मेरे जीवन में अद्‌भुत परिवर्तन आया था । मैं त्यागप्रधान जीवन जीता था । मैंने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया था, इसके साथ ही मैं अल्पपरिग्रही था ।

एक बार मैं मुनिचन्द्र नामक केवलज्ञानी भगवन्त की वन्दनार्थ गया था । उनको मैंने पूछा-``भगवन् ! मैं दीक्षा कब स्वीकार करूंगा ?''

केवली भगवन्त ने कहा था-``हे गांगेय ! तुम अपनी माता के आग्रह से घर में रहोगे । तत्पश्चात् धृतराष्ट्र के ऋण से मुक्त होकर मेरे शिष्य भद्रगुप्ताचार्य भगवन्त के पास दीक्षा स्वीकारोगे और एक वर्ष तक संयमधर्म का पालन कर 12 वें देवलोक में जाओगे ।''

``हे दुर्योधन ! चारित्र ग्रहण करने का समय आ चुका है, अतः यह विद्याधर मुझे मेरी बात याद करा रहा है ।'' इतनी बात कहकर भीष्म पितामह मूर्च्छित हो गए । पितामह को मूर्च्छित देख सभी शोकातुर बन गए । पाण्डव व कौरव पितामह को उठाकर, पास ही गिरि-कन्दरा में रहे भद्रगुप्ताचार्य भगवन्त के समीप ले गए ।

इधर संजय के द्वारा ज्योंही धृतराष्ट्र को पितामह की इस स्थिति के समाचार मिले, वह भी आँखों में आँसू बहाता हुआ पितामह के पास आ पहुँचा ।

धीरे-धीरे पितामह होश में आए । उन्होंने अपनी आँखें खोलीं । पितामह को होश में आया देखकर सभी कौरव-पाण्डव खुशी से झूम उठे ।

पितामह ने मन्द स्वर में कहा-``आधार के बिना मेरी गर्दन में अत्यन्त पीड़ा हो रही है ।'' पितामह की यह बात सुनकर कौरव दौड़े और मोर आदि पक्षियों के पंख लाकर उन्होंने उसका तकिया बना दिया, परन्तु स्मित करके पितामह ने उसे अस्वीकार किया ।

उन्होंने अर्जुन पर अपनी दृष्टि डाली । अर्जुन पितामह के अभिप्राय को एकदम समझ गया और उसने अपनी विशिष्ट कला से तीन बाणों को भूमि में खोंचकर उनका तकिया बना दिया । दोनों पक्षों के वीरों ने अर्जुन की इस बाण-कला की भूरि-भूरि प्रशंसा की । इसके साथ पितामह ने भी अर्जुन के इस कार्य की तारीफ की ।

कुछ ही क्षण बाद पितामह बोले-``मुझे प्यास लगी है, मेरा गला सूख रहा है ।'' तुरन्त ही कौरव पास में बहती नदी में से पानी ले आए, परन्तु पितामह ने उसे पीने से इन्कार कर दिया । उन्होंने कहा-``मुझे तो सूर्य-किरणों से अस्पर्शित शुद्ध जल चाहिए ।''

पितामह की यह बात सुनकर सभी चिन्तातुर बन गए । पितामह ने

25-26. महासती कुंती-द्रोपदी

पृष्ठ नं. 73

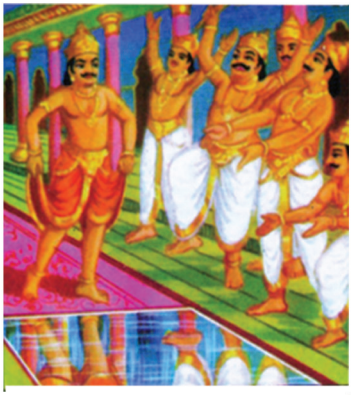

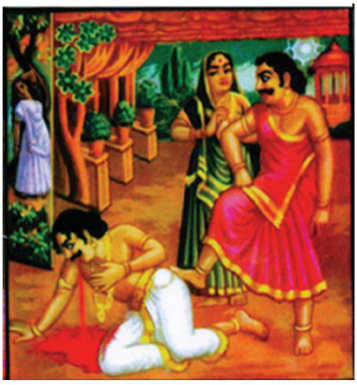

महासती द्रौपदी की सज्झाय

लज्जा मोरी राखो रे देव खरी, द्रौपदी राणी युं कर विनवे,
कर दोय शीश धरी, द्यूत रसे प्रीतम मुज हार्यो वात करी न खरी. १

देवर दुर्योधन दुःशासन, एहनी बुद्धि फरी,
चीवर खेंचे मोटी सभामें, मनमें द्वेष धरी रे. लज्जा० २

भीष्म द्रौण करुणादिक सरवे, कौरव भीक भरी,
पांडव प्रेम तजी मुज बेठा, जे हता जीव जूंरी रे. लज्जा० ३

अरिहंत एक आधार अमारे, शीयल शुं संग धरी,
पत राखो प्रभुजी इण वेळा, समकितवंत सूरी. लज्जा० ४

ततखिण अष्टोत्तर शत चीवर, पूर्या प्रेम धरी,
शासन देवी जय जय रव बोले, कुसुमनी वृष्टि करी. लज्जा० ५

शीयल प्रभावे द्रौपदी राणी, लज्जा लील वरी,
पांडव कुंतादिक हरख्या, कहे धन्य धीर धीर. लज्जा० ६

सत्य शील प्रभावे कृष्णा, भवजल पार तरी,
जीन कहे शीयल घरे तस जनने, नमीये पाय पडी रे. लज्जा० ७

अर्जुन पर दृष्टिपात किया । अर्जुन ने तत्काल पृथ्वी पर वरुणास्त्र छोड़ा । इस शस्त्र-प्रहार से भूमि में से शुद्ध जल बाहर आ गया । पितामह ने उस जल का पान कर अपनी तृषा शान्त की । पितामह ने अर्जुन को आशीर्वाद देते हुए कहा-``तू युधिष्ठिर के समीप बैठ और विजय प्राप्त कर ।''

द्रव्य नहीं, भाव शल्य का नाश चाहता हूँ

तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने पितामह को कहा-``हे पितामह ! आपका वृद्ध देह बाणों के प्रहार से अत्यन्त घायल हो चुका है, अतः आप मुझे स्वीकृति प्रदान करें, मैं अपनी मंत्रित अंगूठी के द्वारा आपके घावों को भर दूँ ।''

युधिष्ठिर की बात सुनकर स्मितवदन पितामह ने कहा-``युधिष्ठिर ! इन बाह्य घावों से मुझे लेश भी पीड़ा नहीं है, मुझे तो अन्दर के घाव अत्यन्त पीड़ा कर रहे हैं और उन अन्दर के शल्यों को मिटाने की ताकत तुम्हारी उस अँगूठी में नहीं है । उन भाव-शल्यों को तो मेरे प्राण-प्रिय गुरुदेव भद्रगुप्ताचार्य ही मिटा सकेंगे ।''

``हे युधिष्ठिर ! ***जब तक अन्दर के काम, क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार आदि घाव न मिटें, तब तक बाहर के घावों के मिट जाने से भी आत्मा शान्त बनने वाली नहीं है, अतः जीवन में सच्चा प्रयत्न और पुरुषार्थ तो भीतर के घावों को मिटाने के लिए होना चाहिए । बाहर के घाव तो देह को ही जर्जरित करते हैं, जबकि भीतर के घाव आत्मा को पीड़ित करते हैं । बाहर के घाव तो एक ही जन्म में पीड़ाकारी बनते हैं, जबकि भीतर के घाव जन्म जन्मान्तर में भी पीड़ाकारी बनते हैं । मुझे देह और आत्मा की भिन्नता का स्पष्ट ज्ञान हो गया है, अतः मुझे देह के घावों की लेश भी परवाह नहीं है, मेरा प्रयत्न और पुरुषार्थ तो अब अन्दर के घाव मिटाने के लिए होगा ।''***

वास्तव में, भाव-शल्य ही आत्मा के लिए पीड़ाकारी हैं । उन शल्यों का यदि नाश हो जाय तो बाहर के शल्य पैदा ही नहीं हो सकते । बाह्य दुःख का कारण भी अभ्यन्तर के पाप ही हैं । अज्ञानी व्यक्ति दुःख-नाश के लिए प्रयत्न करता है, जबकि ज्ञानी व्यक्ति दुःख के कारणभूत पाप नाश के लिए प्रयत्नशील बनता है ।

दुर्योधन को अन्तिम हितोपदेश

कौरवों और पाण्डवों के बीच सोए हुए पितामह ने दुर्योधन पर दृष्टि डाली और बोले-**``हे दुर्योधन ! तूने अर्जुन के अद्‌भुत पराक्रम के साक्षात्**

दर्शन किये हैं, अतः तू इस युद्ध का विचार छोड़ दे । महान् पुण्योदय से ही कुरु कुल जैसे उत्तम कुल में जन्म प्राप्त होता है । अतः हे दुर्योधन ! तुझमें शौर्य आदि अनेक गुण हैं, परन्तु मेरी सूचना से तू विनय और न्याय, इन दो गुणों को स्वीकार कर । क्योंकि पूज्यों के प्रति किया गया विनय कीर्ति को लाने वाला होता है । राम के प्रति नम्रभाव धारण करने के कारण ही लक्ष्मण का यश आज भी दुनिया में फैला हुआ है, अतः तू भी युधिष्ठिर का विनय कर और न्याय के पालन के लिए कपट से प्राप्त राज्य युधिष्ठिर को लौटा दे ।''

एक बार पुनः पितामह ने पास में खड़े व्यक्तियों को दूर कर दुर्योधन को कहा-``दुर्योधन ! बलवान के साथ युद्ध करने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है । पाण्डवों के साथ तुम्हारे युद्ध में विजय तो पाण्डवों की होने वाली है । क्या तू भीम और अर्जुन के पराक्रम को बाल्यकाल से नहीं जानता है ? अतः हे दुर्योधन ! यदि तू जीवन चाहता है तो पाण्डवों के साथ सन्धि कर ले ।''

इस प्रकार वात्सल्य भरी वाणी से बारम्बार प्रेरणा करने पर भी जब दुर्योधन युद्ध के संकल्प से लेश भी चलित नहीं हुआ, तब पितामह ने दुर्योधन को भवितव्यता पर छोड़ दिया । वे अपनी अन्तः-साधना में लीन बन गए । ज्ञान रूपी चक्र के द्वारा वे मिथ्यात्व सेना का उन्मूलन करने लगे । समता रूपी शक्ति से राग-द्वेष को भेदने लगे । ध्यान रूपी भाले से दुर्दान्त इन्द्रियों का दमन करने लगे और क्षमादि बाणों से क्रोधादि कषायों को नष्ट करने लगे ।

भीष्म पितामह संसारी मिटकर साधु बन गए ।

द्रोणाचार्य सेनाधिपति बने

महारथी भीष्म पितामह की युद्ध के मैदान से विदाई हो जाने पर दुर्योधन एकदम हताश हो गया । उसे हताश देखकर द्रोणाचार्य बोले-``हे दुर्योधन ! भीष्म पितामह तो अन्तःशत्रुओं पर विजय पाने के लिए अन्तः संग्राम खेल रहे हैं, अतः तू उनकी चिन्ता मत कर । युद्ध के मैदान में मैं अर्जुन सहित युधिष्ठिर को पकड़कर तुझे सौंप दूंगा...तू निश्चिन्त बन जा ।''

द्रोणाचार्य के इस कथन से दुर्योधन को आश्वासन मिला । उसने द्रोणाचार्य को ही अपनी सेना का अधिपति बना दिया ।

दूसरे दिन पुनः कौरव और पाण्डव-सेना के बीच युद्ध प्रारम्भ हुआ । इस दिन के युद्ध में अर्जुन और द्रोणाचार्य दोनों आमने-सामने आ गए । दोनों

के बीच भयंकर युद्ध चला । दोनों गुरु-शिष्य ने अपनी-अपनी बाण-कला का अद्भुत प्रदर्शन किया । सूर्यास्त हो गया, परन्तु विजय की वरमाला किसी भी पक्ष के गले में नहीं गिरी ।

चक्रव्यूह की रचना

ग्यारहवें दिन की रात्रि में दुर्योधन की आज्ञा से त्रिगर्तदेश का अधिपति संशप्तक अर्जुन के पास गया और उसने कुरुक्षेत्र की भूमि पर लड़ने के लिए अर्जुन को आह्वान किया ।

अर्जुन को युधिष्ठिर से अलग करने के लिए ही संशप्तक को भेजा गया था । इस बात की गन्ध अर्जुन को आ चुकी थी, अतः उसने अपने भाई की रक्षा के लिए धृष्टद्युम्न, भीम और नकुल आदि को सावधान कर दिया था । अर्जुन संशप्तक को जीतने के लिए निकल पड़ा ।

दोनों सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ ।

युधिष्ठिर की रक्षा के लिए नियुक्त धृष्टद्युम्न आदि द्रोणाचार्य के बाणों को निष्फल बना देते थे, फिर भी द्रोणाचार्य की सतत बाण-वृष्टि से पाण्डव-सेना भयभीत बन चुकी थी । सुप्रतीक हाथी पर बैठकर भगदत्त भी पाण्डव-सेना को नष्ट कर रहा था । घबराई हुई पाण्डव-सेना की आवाज को सुनकर संशप्तक को छोड़कर अर्जुन भगदत्त की ओर आगे बढ़ा और उसने अपने तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से भगदत्त का सिर धड़ से अलग कर दिया । भगदत्त की मृत्यु से कौरव-सेना में हाहाकार मच गया ।

मध्यरात्रि के समय पाण्डवों के गुप्तचर ये समाचार लाये कि भगदत्त की मृत्यु से क्रोधित बने द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के लिए चक्रव्यूह की रचना करने की सोच रहे हैं । गुप्तचर से इस बात को जानकर पाण्डव भी उस चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए विचार-विमर्श करने लगे ।

चक्रव्यूह के सम्पूर्ण रहस्य को एक मात्र अर्जुन अच्छी तरह से जानता था, परन्तु अर्जुन की वहाँ उपस्थिति नहीं थी । उसके पुत्र अभिमन्यु ने कहा- ``जब मैं द्वारका में था, तब मैंने चक्रव्यूह में प्रवेश की विधि देखी थी, उतना मुझे ज्ञान है, चक्रव्यूह से बाहर निकलने की विधि मैं नहीं जानता हूँ ।''

भीम ने कहा-``हम चक्रव्यूह को तोड़कर उसको नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे ।''

पाण्डवों ने अभिमन्यु की रक्षा के लिए भीम आदि की नियुक्ति कर दी ।

युद्ध का तेरहवाँ दिन

दोनों पक्ष की सेनाएँ युद्ध-भूमि में आ चुकी थीं । पाण्डव अभिमन्यु को आगे कर द्रोणाचार्य के साथ लड़ने लगे । द्रोणाचार्य को पराजित करने के लिए अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में प्रवेश किया । उसके प्रवेश के साथ ही जयद्रथ ने चारों पाण्डवों को द्वार पर ही रोक दिया, अतः वे अन्दर प्रवेश नहीं कर सके । अकेला अभिमन्यु अपने अद्‌भुत पराक्रम से कौरव-सेना का संहार करने लगा । अभिमन्यु बाहर निकलने का उपाय नहीं जानता था, अतः वह अन्दर ही फँस गया...और उसी समय कौरव महारथी उस पर एक साथ टूट पड़े । कर्ण ने अभिमन्यु का धनुष तोड़ दिया । कृपाचार्य ने उसके सारथी को मार डाला । कृतवर्मा ने उसके रथ को नष्ट कर दिया । अश्वत्थामा ने उसकी तलवार तोड़ दी । जर्जरित बना अभिमन्यु दुःशासन के पुत्रों के साथ लड़ रहा था, आखिर वह युद्ध-भूमि में गिर पड़ा और उसके प्राण-पखेरू उड़ गए ।

सुभद्रा को आश्वासन

संशप्तक को जीतकर अर्जुन ने सन्ध्या समय अपनी छावनी में प्रवेश किया । उसी समय उसे अभिमन्यु-वध के समाचार मिले । विजय से प्राप्त आनन्द का तेज एकदम उड़ गया ।

पुत्र की मृत्यु से सुभद्रा को बहुत आघात लगा । अर्जुन ने उसे आश्वासन देते हुए कहा-**''अभिमन्यु तो युद्धभूमि में वीरमृत्यु को प्राप्त हुआ है, अतः तुझे शोक नहीं करना चाहिए ।''**

दूसरे दिन प्रातःकाल अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि आज मैं अपने पुत्र के हत्यारे जयद्रथ की हत्या न कर सका तो सन्ध्या समय अग्नि में प्रवेश करूंगा ।

अर्जुन की प्रतिज्ञा का ख्याल दुर्योधन को आ गया था, अतः किसी भी प्रकार से जयद्रथ की रक्षा के लिए उसने सुयोग्य व्यवस्था कर दी थी ।

आज युद्ध का चौदहवाँ दिन था । दोनों सेनाओं के बीच युद्ध आरम्भ हो गया । द्रोणाचार्य ने आज शकटव्यूह की रचना की । युद्ध के मैदान में अर्जुन ने आज अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखलाया । उसके तीक्ष्ण प्रहारों से भयभीत बनी कौरव-सेना भागने लगी । अपनी सेना को भागते देख दुर्योधन स्वयं अर्जुन से लड़ने के लिए तैयार हो गया ।

देवदत्त शंख बजाता जा रहा था और अर्जुन आगे बढ़ता जा रहा था । अनेक योद्धाओं को खत्म कर अर्जुन काफी दूर निकल चुका था । देवदत्त के शंख की आवाज बंद हो चुकी थी ।

युधिष्ठिर चिन्तातुर बन गए । उन्होंने पराक्रमी सात्यकी को भेजा । सात्यकी ने शकटव्यूह में प्रवेश किया । आगे बढ़ते हुए उसे भूरिश्रवा ने रोक दिया । उसके साथ भयंकर युद्ध हुआ । भूरिश्रवा ने सात्यकी को बालों से पकड़कर उसका शिरोच्छेद करने की तैयारी की, तभी कृष्ण के इशारे से अर्जुन ने भूरिश्रवा का हाथ काट डाला और उसी समय सात्यकी ने प्रहार कर भूरिश्रवा का मस्तक धड़ से अलग कर दिया ।

सन्ध्या का समय हो चुका था । सूर्यास्त में अभी थोड़ी देर थी । कौरव-सेना में प्रसन्नता छाई हुई थी ।

भूरिश्रवा की मृत्यु के समाचार मिलते ही महापराक्रमी कर्ण ने युद्ध-भूमि में प्रवेश किया और वह अपने तीक्ष्ण बाणों की वृष्टि से पाण्डव-सेना का भयंकर संहार करने लगा ।

इधर भूरिश्रवा की मृत्यु के बाद युधिष्ठिर ने अर्जुन की सहायता के लिए भीम को भेजा । अपने गदाप्रहारों से रथों को तोड़ता हुआ और हाथी-घोड़े और सैनिकों को मच्छर की तरह खत्म करता हुआ वह कर्ण के सम्मुख आ खड़ा हुआ ।

प्रतिज्ञा-पालन में दृढ़ कर्ण

भीम और कर्ण के बीच भयंकर युद्ध जम गया । भीम ने अपनी गदा के प्रहार से कर्ण का रथ तोड़ डाला, परन्तु उसी समय वह दूसरे रथ में आरूढ़ हो गया और अपने तीक्ष्ण बाण भीम की ओर फेंकने लगा । कर्ण के तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से भीम एकदम घायल हो गया । उसी समय कर्ण को अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई । वह सोचने लगा-**''अहो ! मैंने प्रतिज्ञा की है कि युद्ध में पाँच पाण्डवों में से केवल अर्जुन को ही खत्म करूंगा ।''** बस, इस वचन के स्मरण के साथ ही कर्ण ने भीम को जीवित छोड़ दिया और उसने अपना रथ दूसरी ओर मोड़ दिया ।

कर्ण की यह महानता है कि उसने युद्ध-भूमि में भी अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं की ।

महान् पुरुषों का यही तो लक्षण है कि वे अपने जीवन का बलिदान देकर भी ग्रहण की गई प्रतिज्ञा का बराबर पालन करते हैं ।

जयद्रथ-वध

इधर अर्जुन और जयद्रथ दोनों आमने-सामने आ चुके थे । दोनों के बीच भयंकर युद्ध हुआ और अन्त में अर्जुन ने जयद्रथ का सिर धड़ से अलग कर दिया ।

जयद्रथ के वध के साथ ही पाण्डव-सेना में आनन्द की लहर फैल गई । इन चौदह दिनों में पाण्डवों ने कौरवों की सात अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट कर दी थीं ।

अन्याय का आश्रय

जयद्रथ के वध से द्रोणाचार्य अत्यन्त रोषायमान हो गए । उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी...और उन्होंने सूर्यास्त हो जाने के बाद भी युद्ध चालू रखने का आदेश दे दिया ।

रात्रि में युद्ध करना युद्ध-नीति के खिलाफ था...**परन्तु क्रोधावेश में व्यक्ति कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विवेक को भूल जाता है ।** परिणामस्वरूप द्रोणाचार्य युद्ध-नीति का उल्लंघन करने को तैयार हो गए और उन्होंने रात्रि में भी युद्ध चालू रखने की घोषणा कर दी ।

अनीति के इस युद्ध को नहीं देखने की इच्छा से मानों सूर्यनारायण ने विदाई ले ली ।

कौरव और पाण्डव दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध चालू रहा । उसी समय भीम की पत्नी हिडम्बा का पुत्र घटोत्कच अपनी राक्षसी-सेना के साथ वहाँ उपस्थित हो गया । अपनी चाक्षुषी विद्या के बल से घटोत्कच रात्रि में भी आसानी से देख सकता था, अतः घटोत्कच के आगमन को देखकर पाण्डव सेना में हर्ष की लहर फैल गई । घटोत्कच ने महासंहारपूर्वक युद्ध जारी रखा ।

इधर कर्ण और घटोत्कच के बीच जोरदार युद्ध जम गया । कर्ण के पास एकघ्नी विद्या थी । ऐसे तो उसने अर्जुन के वध के लिए वह विद्या अपने पास सुरक्षित रखी थी...परन्तु उसने परिस्थिति देखकर उस विद्या का उपयोग कर लिया और घटोत्कच को मार डाला । घटोत्कच की मृत्यु से

पाण्डव-सेना में हाहाकार मच गया । उसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा, **``अब कर्ण तुझे खत्म नहीं कर सकेगा, क्योंकि उसने उस विद्या का उपयोग कर लिया है ।''** घटोत्कच की मृत्यु से कौरव-सेना में आनन्द की लहर फैल गई । उल्लास में आकर दुर्योधन ने उस युद्ध में विराट और द्रुपद राजा को भी खत्म कर दिया ।

युद्ध का 15 वाँ दिन

कुरुक्षेत्र की रणभूमि में युद्ध के 14 दिन बीत चुके थे । गत रात्रि में दोनों सेनाओं में से अनेक योद्धा मारे गए थे । आज युद्ध का पन्द्रहवाँ दिन था । द्रोणाचार्य अपने अद्‌भुत पराक्रम से पाण्डव-सेना का संहार कर रहे थे ।

उसी समय कौरवों का अत्यन्त बलिष्ठ और पराक्रमी अश्वत्थामा नामक हाथी मारा गया ।

द्रोणाचार्य का वध

अश्वत्थामा की मृत्यु के समाचार वायु-वेग से चारों ओर फैल गए । अश्वत्थामा की मृत्यु के समाचार द्रोणाचार्य के कान में पड़े । वे असमंजस में पड़ गए कि मेरा पुत्र मारा गया है अथवा हाथी ? उसी समय द्रोणाचार्य ने सोचा-``मैं सत्यवादी युधिष्ठिर को पूछ लूँ ।'' इस प्रकार विचार कर उन्होंने अपना रथ युधिष्ठिर की ओर आगे बढ़ाया । उसी समय श्रीकृष्ण, भीम व अर्जुन भी बोलने लगे कि द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा मारा गया है । तभी नीचे मुख करके युधिष्ठिर ने कहा-``अरे रे ! अश्वत्थामा मारा गया ।''

युधिष्ठिर के मुख से अश्वत्थामा की मृत्यु के समाचार सुनते ही पुत्र-मोह से व्याकुल बने द्रोणाचार्य ने अपने हाथों से शस्त्र नीचे छोड़ दिए । उसी समय श्रीकृष्ण के इशारे से पाण्डव सेनाधिपति धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर बाणों की वृष्टि चालू कर दी । द्रोणाचार्य एकदम घायल हो गए । तब युधिष्ठिर को अपनी भूल का पश्चाताप हुआ और वे क्षमायाचना के लिए भूमि पर गिरे द्रोणाचार्य के पास आकर बोले-``हे द्रोणाचार्य ! अश्वत्थामा नाम का हाथी मारा गया है, आपका पुत्र नहीं ।''

यह बात सुनकर द्रोणाचार्य एकदम कुपित हो गए और बोले-``हे राजन् ! क्या इस ब्राह्मण-गुरु की हत्या के लिए ही तूने आजन्म सत्य-व्रत स्वीकार किया था ?''

द्रोणाचार्य एकदम आगबबूला हो उठे और शस्त्र-सज्ज बनने लगे, तभी आकाश-वाणी हुई-**``हे द्रोण ! अब तुम्हारे जीवन का अन्त निकट है, अतः समता रूपी गंगा में नहाकर अपनी आत्मा को पवित्र करो ।''**

आकाशवाणी सुनते ही द्रोण एकदम शान्त हो गए...और नमस्कार महामंत्र के ध्यान में लयलीन बन गए और कुछ समय बाद अत्यन्त समाधि-पूर्वक उनकी मृत्यु हो गई । वह आतम-पंखी पंचम देवलोक की यात्रा के लिए प्रयाण कर गया ।

द्रोणाचार्य की मृत्यु के साथ कौरव-सेना में एकदम अन्धकार छा गया ।

द्रोणाचार्य के वध के समाचार मिलते ही उनका पुत्र अश्वत्थामा एकदम क्रोधातुर बन गया । क्रोध के तीव्र आवेग के कारण उसका शरीर काँपने लगा । अत्यन्त जोर से चिल्लाते हुए वह बोला, ``जिसने मेरे पिता का वध किया है...अथवा जो उनकी मृत्यु में प्रेरक बने हैं, उन सबका मैं काल हूँ, मैं उन सबको खत्म करके ही रहूंगा ।''...इस प्रकार बोलकर वह अपने पूरे सामर्थ्य से पाण्डव-सेना पर टूट पड़ा और अनेक योद्धाओं को यमराज के मन्दिर पहुँचाने लगा । अन्त में उसने प्रलयकाल की अग्नि के समान अत्यन्त भयंकर और विस्फोटक नारायण अस्त्र छोड़ा । नारायण अस्त्र के फेंकने के साथ ही चारों ओर धुआँ फैलने लगा और चारों दिशाओं में अन्धकार व्याप्त हो गया ।

नारायण अस्त्र को देखकर पाण्डव-सेना तितर-बितर होने लगी । उसी समय श्रीकृष्ण ने युक्ति का उपयोग करते हुए सभी पाण्डवों को कहा- ``हे वीरपुरूषो ! तुम भागो मत । अपने-अपने रथ से नीचे उतर कर नमस्कार पूर्वक शरणागति स्वीकार लो । शरणागति की स्वीकृति के बिना इस सर्वनाशी अस्त्र से बचने का अन्य कोई उपाय नहीं है ।''

श्रीकृष्ण की बात सुनकर सभी सैनिकों ने अपने हाथ में रहे शस्त्र नीचे धर दिए और सभी सैनिक उस नारायण अस्त्र को नमस्कार करने लगे ।

सभी सैनिक झुक गए, किन्तु भीम नमस्कार करने को तैयार नहीं हुआ । उसने कहा-``मैं इस अस्त्र के आगे झुकने वाला नहीं हूँ ।'' परन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुन ने निकट आकर भीम के पास रहे शस्त्र छीन लिये और उन्हें धरती पर रख दिया ।

इस प्रकार सभी के झुक जाने से नारायण शस्त्र की ज्वालाएँ धीरे-धीरे स्वतः शान्त होने लगीं और पाण्डव-सेना आपत्ति से एकदम बच गई ।

समर्पण की शक्ति

नारायण अस्त्र की शरणागति स्वीकार करने से सभी मौत के मुँह में जाने से बच गए...इसी प्रकार ***जो परमात्मा के चरणों की शरणागति स्वीकार कर लेता है, उसे दुनिया की कोई भी शक्ति हैरान नहीं कर सकती है। परमात्म-चरणों में समर्पित बनने से परमात्मा की अनन्त शक्ति का विराट् स्रोत हमारी अन्तरात्मा की ओर प्रवाहित होता है और शक्ति-प्रवाह को ग्रहण कर आत्मा स्वयं अनन्त शक्ति की स्वामिनी बनती है।***

अश्वत्थामा निराश हो गया

नारायण अस्त्र की निष्फलता से अश्वत्थामा एकदम हताश और निराश हो गया। उसी समय आकाशवाणी हुई-``हे अश्वत्थामा ! कृष्ण और अर्जुन को जीतने की ताकत तो देवों में भी नहीं है, अतः तुम क्यों निरर्थक परेशान हो रहे हो ?''

तभी सन्ध्या हो गई...सूर्यास्त हो गया। दोनों सेनाओं के बीच युद्ध विराम हो गया। अश्वत्थामा भी निराश होकर अपनी छावनी में आ गया।

युद्ध का 16 वाँ दिन–कर्ण सेनाधिपति बना

आज युद्ध का 16वाँ दिन था। दुर्योधन ने कर्ण पर सेनापति पद का भार डाल दिया था। कर्ण के नेतृत्व में कौरवसेना आगे आई और कौरव-पाण्डव-सेनाओं के बीच पुनः घमासान युद्ध चालू हो गया। आज दुःशासन ने अपना अद्भुत पराक्रम दिखलाकर पाण्डव-सेना का संहार किया था।

दुःशासन-वध

सन्ध्या के समय भीम और दुःशासन दोनों आमने-सामने आ गए। दुःशासन को देखते ही भीम की क्रोधाग्नि भड़क उठी। भरी सभा में इसी दुःशासन ने द्रौपदी का वस्त्रहरण किया था। उस पाप की सजा करने के लिए भीम एकदम तैयार हो गया। भीम ने भयंकर बाण-वर्षा कर दुःशासन के सारथी को धराशायी कर दिया और फिर रथ में से दुःशासन को धक्का देकर नीचे गिरा दिया।

भीम ने कहा-``अरे दुष्ट ! कर्मचाण्डाल ! कौरव-कुल के कुलांगार ! किस हाथ से तूने राजसभा में द्रौपदी के चीर का हरण किया था, ला बता,

उसे तोड़कर मैं आज अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर लूँ ।'' इतना कहकर भीम ने अपनी गदा के प्रहार से एक ही झटके में उसका दाहिना हाथ शरीर से अलग कर दिया । दुःशासन के शरीर से खून बहने लगा और वहाँ की भूमि रक्त-रंजित हो गई ।

दुःशासन का वध कर सूर्यास्त के बाद भीम अपनी छावनी की ओर आगे बढ़ा । आज उसके मुख पर विशेष प्रसन्नता दिखाई दे रही थी । उसने आकर द्रौपदी को सब बात कही । दुःशासनवध के समाचार सुनकर द्रौपदी का हृदय भी आनन्द से भर आया ।

मद्रराज शल्य कर्ण का सारथी बना

दुःशासन की मृत्यु से दुर्योधन एकदम खिन्न हो गया । उसी समय कर्ण ने आकर दुर्योधन को कहा-``हे दुर्योधन ! जब तक अर्जुन जीवित है तब तक पाण्डव-सेना को जीतना आसान बात नहीं है, अतः सर्वप्रथम मैं कल अर्जुन को खत्म करना चाहता हूँ । अर्जुन को खत्म करने के लिए मुझे सुयोग्य सारथी की आवश्यकता है । यदि मद्रराज शल्य मेरे सारथी बनें तो मैं कल अर्जुन को खत्म कर सकता हूँ ।...परन्तु सवाल यह है कि क्या मद्रराज मेरे सारथीपने को स्वीकार करेंगे ? फिर भी आप प्रयत्न करके देख लो ।''

उसी समय दुर्योधन ने मद्रराज शल्य को बुलाया और उनसे कर्ण का सारथी बनने की प्रार्थना की ।

दुर्योधन की यह बात सुनकर मद्रराज ने कहा, ``हे राजन् ! आप यह अनुचित क्यों बोल रहे हो ? कहाँ मैं क्षत्रियवंशज और कहाँ यह सूतपुत्र ? मैं इसके सारथीपने को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ ?''

मद्रराज की यह बात सुनकर दुर्योधन ने कहा-``हे मद्रराज ! आप ऐसा न बोलें । आपत्ति के समय औचित्य-अनौचित्य की बात नहीं की जाती है । मित्रता के रक्षण के लिए तो हर कार्य करने की अपनी तैयारी होनी चाहिए, अतः आप कर्ण के सारथी बनकर मेरी प्रार्थना को स्वीकार करो ।''

मद्रराज को नकुल-सहदेव को दिया हुआ वचन याद आ गया, अतः उसने दुर्योधन को कहा-``मैं आपके वचन को स्वीकार करता हूँ, परन्तु मेरी एक शर्त है कि युद्धभूमि में मैं जो कुछ भी कहूँ, उसे कर्ण को सहन करना होगा...मेरी यह शर्त स्वीकार हो तो मैं कर्ण का सारथी बनने के लिए तैयार हूँ ।''

दुर्योधन ने शल्य की शर्त स्वीकार ली । कर्ण ने दुर्योधन को कहा-``हे दुर्योधन ! कल मैं अर्जुन का वध किए बिना नहीं रहूंगा, यदि अर्जुन का वध नहीं कर पाया तो जीवित ही अग्नि में प्रवेश कर लूंगा ।'' इस प्रकार कहकर कर्ण अपनी छावनी में चला गया ।

दूसरे दिन सूर्योदय होते ही कौरव-पाण्डव-सेना के बीच युद्ध प्रारम्भ हुआ । कर्ण भी शल्य सारथी के साथ युद्धभूमि में आ खड़ा हुआ और बोलने लगा-``अर्जुन जहाँ भी हो मेरे सामने आ जाय, मैं उसके रक्त का पिपासु बना हूँ ।'' इन...शब्दों को सुनकर मद्रराज ने कहा-``अरे कर्ण ! पागल की तरह बकवास क्यों कर रहा है ? वह अर्जुन तो देवों के लिए भी अजेय है, उसको मारने की प्रतिज्ञा कर तू अपनी ही मौत को पुकार रहा है । विराटनगरी में गोधन के अपहरण के समय तूने अर्जुन का पराक्रम नहीं देखा था क्या ? देख, सामने ही तेरा काल अर्जुन आ रहा है ।''

कर्ण भी अर्जुन की ओर आगे बढ़ता हुआ पाण्डव-सेना का संहार करता आ रहा था । इसी बीच युधिष्ठिर उसके सामने आ गया । दोनों के बीच युद्ध जम गया । कर्ण के प्रहार से युधिष्ठिर एकदम जर्जरित हो गया ।

श्रीकृष्ण की प्रेरणा

युधिष्ठिर की इस स्थिति को देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा-``अरे अर्जुन ! तेरा यह पराक्रम कहाँ गया ? इधर देख, तेरे देखते हुए युधिष्ठिर जर्जरित हो रहा है । तेरा भ्रातृत्व-प्रेम कहाँ गया ? अरे अर्जुन ! द्रोणाचार्य ने तुम्हें सबसे अधिक धनुर्विद्या प्रदान की है । अब तुम अपना पराक्रम नहीं दिखलाओगे तो स्वर्ग में द्रोणाचार्य अवश्य लज्जित बनेंगे ।''

श्रीकृष्ण के मुख से इन आग भरे शब्दों को सुनकर अर्जुन का खून उबल पड़ा । बिजली के स्पर्श की भाँति उसकी देह में शक्ति का संचार हो गया ।

...और उसी समय अर्जुन ने कर्ण को अपना निशाना बनाया और अत्यन्त वेग से उसने कर्ण पर बाणवृष्टि चालू कर दी । कर्ण की मदद करने के लिए कर्णपुत्र वृषसेन भी अर्जुन के सामने लड़ने के लिए तैयार हो गया । अर्जुन को अपने पुत्र अभिमन्यु का वध याद आ गया । उसने बाण के एक ही प्रहार से वृषसेन का मस्तक धड़ से अलग कर दिया ।

पुत्र की मृत्यु से कर्ण अत्यधिक कुपित हो गया और वह भी अर्जुन पर बाणों की वृष्टि करने लगा ।

कर्ण ने अर्जुन पर पन्नग अस्त्र छोड़ा, उसी समय अर्जुन ने उस पर गरुड़ छोड़ दिया ।

कर्ण ने अन्धकार अस्त्र से चारों ओर अन्धकार कर दिया...तो अर्जुन ने प्रकाश अस्त्र फेंककर चारों ओर पुनः प्रकाश कर दिया । अर्जुन के अद्‌भुत पराक्रम को देखकर कर्ण सोचने लगा-``अहो ! मैंने अपना कीमती शस्त्र घटोत्कच के वध में खो दिया ।'' कर्ण मन-ही-मन दुःखी हो गया ।

इसी बीच कर्ण के रथ का एक पहिया जमीन में धँस गया । उस समय शल्य सारथी ने रथ को बाहर निकालने के लिए घोड़ों को खूब प्रेरणा की परन्तु उसके सभी प्रयत्न निष्फल हो गए ।

सचमुच, जब पुण्य क्षीण हो जाता है, तब व्यक्ति के सभी प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं और जब पुण्य जागृत होता है, तब अल्प प्रयास से ही अधिक सिद्धि प्राप्त हो जाती है ।

भूमि में फँसे हुए रथ के पहिये को बाहर निकालने के लिए कर्ण स्वयं नीचे उतरा और पहिये को बाहर निकालने के पूर्व अर्जुन से बोला-``हे अर्जुन ! जब तक मैं इस रथ के पहिये को बाहर न निकाल दूँ, तब तक तू मेरे ऊपर शस्त्र मत फेंकना, क्योंकि निःशस्त्र पर क्षत्रिय का बच्चा प्रहार नहीं करता है । निःशस्त्र पर प्रहार करने से क्षत्रियधर्म लज्जित बनता है ।''

कर्ण के पराक्रम को भंग करने के लिए मद्रराज बोला-``अरे कर्ण ! तू वीर पुरुष होकर युद्धभूमि में ऐसी दीनता दिखला रहा है ! अरे ! तूने तो दुर्योधन से मैत्री करके उसकी मैत्री को लज्जित किया है । अरे ! तेरे जैसे कायर को सेनाधिपति बनाकर दुर्योधन ने सबसे बड़ी भूल की है । वास्तव में, आज तूने अपने नीच कुल को ही प्रकाशित किया है ।'' मद्रराज के इन तीखे शब्दों को सुनकर कर्ण का उत्साह भी भंग होने लगा ।

उसी समय कर्ण को शब्दबाण से घायल करते हुए श्रीकृष्ण बोले-**``हे राधेय ! तुम युद्ध-भूमि में न्याय-अन्याय की बातें कर रहे हो, परन्तु निःशस्त्र अभिमन्यु पर शस्त्र-प्रहार करते समय तुम्हारा न्याय कहाँ चला गया था ?''**

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा-``अरे अर्जुन ! तू इसी समय बाण छोड़कर कर्ण को यमलोक पहुँचा दे, इससे बढ़कर सुन्दर अवसर कोई हाथ

नहीं लगेगा । अन्यथा स्थारूढ़ बनने के बाद कर्ण को मारना कोई आसान बात नहीं होगी । **अन्यायी के सामने अन्याय से लड़ना भी न्याय ही है ।''**

बस, श्रीकृष्ण की प्रेरणा प्राप्त कर अर्जुन ने कर्ण की ओर क्षुरप्र अस्त्र छोड़ दिया और कर्ण का मस्तक धड़ से अलग हो गया । चंद क्षणों में ही कर्ण के प्राण-पखेरू उड़ गए । कर्ण के वध के समाचार से चारों ओर सन्नाटा छा गया ।

आनन्द के महासागर में उछलते हुए भीम ने चिरनिद्रा में सोए हुए कर्ण के कुण्डल निकाल लिये और उन्हें ले जाकर माँ कुन्ती के चरणों में रख दिये ।

कर्ण की मृत्यु जानकर माता कुन्ती की आँखों से धड़-धड़ आँसू गिरने लगे ।

युधिष्ठिर ने पूछा-``माँ ! हर्ष के स्थान में तू रो क्यों रही है ?''

उसी समय कुन्ती ने कहा-``क्योंकि कर्ण तेरा बड़ा सगा भाई था । मैंने ही उसके कानों में ये कुण्डल पहनाए थे ।''

``माँ ! फिर आपने उसका त्याग क्यों किया ?'' युधिष्ठिर का यह प्रश्न सुनकर माता कुन्ती ने शर्म से अपना मुँह नीचा कर लिया । उसी समय श्रीकृष्ण ने कर्ण के जन्म की पूरी घटना पाण्डवों को सुनाई ।

कर्ण के इस रहस्य को ज्ञात कर पाण्डवों ने कहा-``हमें यह बात पहले क्यों नहीं कही गई ? यदि पहले से पता होता तो कम-से-कम भाई की हत्या तो हम नहीं करते ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-``अपनों को मारने वाले का वध करना तो उचित ही है, अतः तुम भ्रातृ-वध का शोक मत करो ।''

दूत के रूप में जब मैं हस्तिनापुर गया था, तब मैंने कर्ण को, उसके जन्म की सब घटना सुना दी थी, परन्तु फिर भी उसे आनन्द नहीं आया और उसने कहा-``मैं भले ही कुन्ती का पुत्र होऊँ...फिर भी मैं दुर्योधन का त्याग नहीं कर सकता । दुर्योधन ने ही सर्वप्रथम मुझे राज्य प्रदान किया था । मैंने उससे आजीवन मैत्री का वादा भी किया है फिर भी मैं अर्जुन को छोड़कर अन्य किसी पाण्डव का वध नहीं करूंगा । हे कृष्ण ! आप माता कुन्ती को कहना कर्ण मरे या अर्जुन, फिर भी पाण्डव तो पाँच ही रहेंगे ।'' उसके इस वचन को सुनकर और तुम्हारे प्रति उसके दिल में रही वैरवृत्ति को जानकर मैंने उसके जीवन-रहस्य का उद्‌घाटन नहीं किया था ।

श्रीकृष्ण के मुख से यह बात सुनकर पाण्डवों ने कर्ण की मरणोत्तर क्रिया कर दी ।

नागकुमार देवों का आगमन

रात्रि में युद्ध-विराम के समय पाण्डव अपनी छावनी में आराम कर रहे थे, तभी नागकुमार देवताओं ने आकर पाण्डवों को कहा-``सरोवर में कमल-ग्रहण के समय हमने आपको पकड़ लिया था । उस समय इन्द्र के देव ने आकर आपको बन्धनमुक्त किया था । तब नागराज ने रोषायमान होकर कहा-``तुम एक बार इन पाण्डवों के सहायक बनो, उसके बाद ही तुम्हें नागलोक में स्थान मिलेगा ।''...और आज कर्ण के रथ के पहिये को जमीन में धँसाकर हम आपके सहायक बने हैं, अतः अब से हमें नागलोक में पुनः स्थान प्राप्त होगा । आगामी दिन युद्ध में आप अवश्य विजेता बनोगे । इतना कहकर उन नागदेवताओं ने वहाँ से विदाई ली ।

युद्ध का अन्तिम दिन

कर्ण की मृत्यु के समाचार से दुर्योधन एकदम हताश हो गया । उसका उत्साह एकदम भंग हो गया । दुर्योधन की दीन-हालत देखकर अश्वत्थामा ने आकर उसे आश्वासन दिया और दुर्योधन को उत्साहित करते हुए बोला, ``अभी तो आप स्वयं जीवित हो, फिर इतने निराश क्यों हो रहे हो ? शोक का त्याग करो और मद्रराज शल्य को सेनापति बना दो...और फिर देखो अपना पराक्रम !' अश्वत्थामा की यह बात सुनकर दुर्योधन पुनः उत्साहित हुआ और उसने मद्रराज शल्य को अपना सेनापति बना दिया ।

मद्रराज का वध

प्रातःकाल हुआ और मद्रराज शल्य अपनी सेना के साथ युद्धभूमि में आ डटा । अपने अद्‌भुत पराक्रम से वह पाण्डवसेना का संहार करने लगा । उसके अद्‌भुत पराक्रम को देख श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को उत्साहित करते हुए कहा- **``हे युधिष्ठिर ! उत्तरकुमार के वध के समान तूने उसके हत्यारे मद्रराज के वध की प्रतिज्ञा की थी अतः उस प्रतिज्ञा के पालन के लिए अब समय आ चुका है ।''**

श्रीकृष्ण के इन शब्दों को सुनकर उत्साहित बने युधिष्ठिर ने मद्रराज के साथ भयंकर युद्ध खेला और अन्त में युधिष्ठिर ने अपनी अमोघ-शक्ति के द्वारा मद्रराज को युद्ध-भूमि में ही समाप्त कर दिया ।

उसके बाद भीम भी अद्‌भुत पराक्रम के साथ कौरव-सेना का संहार करने लगा । दुर्योधन भी अद्‌भुत पराक्रम से लड़ने लगा । थोड़ी ही देर बाद सहदेव ने शकुनि का वध कर दिया । शकुनि-वध को सुनकर दुर्योधन एकदम हताश हो गया...वह अपनी हिम्मत हार गया । समस्त आकाश मण्डल भी धुंधला हो गया । अवसर देखकर दुर्योधन युद्ध-भूमि छोड़कर भाग गया ।

कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा दुर्योधन की खोज में निकल पड़े और वे दुर्योधन के पद-चिह्नों को खोजते हुए व्यास-सरोवर के किनारे आ गए और `अपना स्वामी दुर्योधन इस सरोवर में छिपा हुआ है ।' इस प्रकार अनुमान कर सरोवर के किनारे बैठे ।

थोड़ी ही देर में उन्हें पाण्डवों के आगमन की पदचाप सुनाई दी, अतः भय के मारे वे एक वृक्ष के गुप्त भाग में छिप गए ।

पाण्डव उधर आए तो उन्हें एक वनेचर से दुर्योधन के समाचार मिले ।

युधिष्ठिर का दुर्योधन को युद्ध के लिए आह्वान

सरोवर के किनारे आकर अत्यन्त कुपित बने युधिष्ठिर ने कहा-**''अरे दुर्योधन ! तुझे वीर मानने की हमने भयंकर भूल की है । क्या सिंह के चर्म को पहिनने मात्र से सियार कभी सिंह बन जाता है ? अरे ! निष्कलंक कुरुकुल को तूने कलंकित किया है । तूने तो धृतराष्ट्र के तेज को भी मलिन किया है । अपने स्वजन-सम्बन्धियों को खत्म कराकर अपने प्राणों की रक्षा के लिए तू इस सरोवर में क्यों छिप गया है ? अरे विश्वासघाती ! तू इस सरोवर में छिपकर भी कहाँ बचने वाला है ?**

''अभी अर्जुन अग्नि-शस्त्र फेंककर इस सरोवर को सुखा देगा, तब तू कहाँ जाएगा ? जो तुझे इस प्रकार ही छिप जाना था तो फिर तूने इस युद्ध का नाटक क्यों किया ? द्रौपदी के बाल खींचते समय तुझे शर्म नहीं आई और अब चोर की तरह छिपते हुए भी तुझे शर्म नहीं आ रही है ?

''यदि तू इतना कमजोर ही था तो श्रीकृष्ण के प्रस्ताव को तूने स्वीकार क्यों नहीं किया ? अब सरोवर से बाहर निकल और युद्धभूमि में अपने प्राणों का बलिदान देकर वीर-मृत्यु को प्राप्त कर ।

''यदि तू अकेला है तो हम पाँच में से एक के साथ युद्ध कर और युद्ध में हममें से किसी को भी हरा देगा तो यह सम्पूर्ण राज्य पुनः तुझे सौंप देंगे ।''

युधिष्ठिर न्यायप्रिय था, अतः उसने दुर्योधन के साथ युद्ध में भी न्याय-मार्ग का उल्लंघन नहीं किया ।

आज धर्म, समाज व राष्ट्र की रक्षा के लिए ऐसे न्यायप्रिय युधिष्ठिरों की अत्यन्त आवश्यकता है । आज तो सत्ताधीश व्यक्ति अपनी मनमानी में ही न्याय की कल्पना करते हैं ।

भीम-दुर्योधन का गदा-युद्ध

युधिष्ठिर के इन आक्रोश भरे शब्दों को सुनकर क्रोधातुर बना दुर्योधन सरोवर से बाहर आया और उसने भीम के साथ गदा-युद्ध खेलने का प्रस्ताव रखा । बस, कुछ ही क्षणों के बाद उन दोनों महापराक्रमी योद्धाओं का गदा-युद्ध प्रारम्भ हो गया । दोनों की गदाएँ आकाश में उछलने लगीं ।

अचानक दुर्योधन ने भीम पर जोर से प्रहार किया, जिससे भीम को एकदम चक्कर आने लगे । पुनः भीम खड़ा हुआ और उसने जोर से दुर्योधन की छाती पर गदा का प्रहार किया ।

दुर्योधन व भीम के इस युद्ध को आकाश में रहे देव भी एकटकी से देख रहे थे । पुनः दुर्योधन ने जोर से प्रहार किया और भीम को एकदम चक्कर आने लग गए ।

तभी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा-``अरे ! समुद्र के किनारे आई हमारी नाव क्या पानी में डूब जाएगी ? भीष्म, द्रोणाचार्य, कर्ण, शल्य आदि को मारकर भी क्या अब हमारे हार जाने का अवसर आया है ? ऐसे तो भीम दुर्योधन को खत्म नहीं कर सकेगा । परन्तु हाँ, यदि वह मौका पाकर दुर्योधन की जंघा पर गदा से प्रहार कर दे तो यह दुर्योधन अभी खत्म हो सकता है, अन्यथा नहीं ।''

अर्जुन ने भीम को इशारा किया । बस, इशारा मिलते ही भीम दुर्योधन की जंघा पर प्रहार करने लगा । दुर्योधन इस प्रहार से बचने के लिए एक मेंढक की भाँति उछलने लगा । परन्तु आखिर दुर्योधन भीम के प्रहार से बच न सका ।

भीम ने अवसर देख, उसकी जंघा पर अत्यन्त जोर से प्रहार किया । उस प्रहार के साथ ही दुर्योधन भूमि पर गिर पड़ा...और एकदम मूर्च्छित हो गया ।

बलरामजी का आक्रोश

आक्रोश में आकर भूमि पर गिरे हुए दुर्योधन के मस्तक पर भीम जोर-जोर से लातें लगाने लगा । भीम की इस चेष्टा को देखकर आवेश में आए बलदेव बोले-``अरे भीम ! तू ऐसी हीन चेष्टा क्यों कर रहा है ? मरे हुए को मारना क्या क्षत्रिय का धर्म है ? ऐसी हीन प्रवृत्ति तो म्लेच्छों में भी नहीं होती है । मैं किसी के अन्याय को सहन नहीं करूंगा । मेरे हल और मुशल तुम सभी पाण्डवों को खत्म कर देंगे ।'' इस प्रकार बोलकर रोषायमान हुए बलदेव शीघ्रगति से अपने आवास की ओर चल पड़े ।

इधर धृष्टद्युम्न और शिखण्डी को शिविर-रक्षा का कार्य भार सौंपकर श्रीकृष्ण पाण्डवों को लेकर बलभद्र को प्रसन्न करने के लिए चल दिये ।

दुर्योधन प्रसन्न हो गया !!!

सरोवर के तट पर से सभी पाण्डवों के चले जाने के बाद...अन्धकार व्याप्त होने पर कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा वृक्ष के कोटर से बाहर निकले और दुर्योधन के पास आए ।

अश्वत्थामा आदि ने कहा-``हे दुर्योधन ! आप तो महान् शूरवीर हो...जीवन के अन्त समय तक आपने अपने क्षात्र-धर्म का परिचय दिया है, हम तो कर्मचाण्डाल हैं...सर्वथा धिक्कार के पात्र और कृतघ्न हैं । हमारे देखते हुए आपकी यह दुर्दशा हो गई...अतः अब हम आपकी आज्ञा से सुखपूर्वक सोए हुए पाँच पाण्डवों के मस्तकों को छेदकर, उनके मस्तक आपको सौंपकर ऋणमुक्त बनेंगे ।''

अश्वत्थामा के ये वचन सुनकर दुर्योधन एकदम प्रसन्न हो गया । उसके मुख पर से ग्लानि दूर हो गई । वह धीमे से बोला-``हे वीरपुरुषो ! शत्रुओं के मस्तक छेदकर लाने की तुम्हारी इस प्रतिज्ञा को सुनकर मेरे हृदय में अब आनन्द समा नहीं रहा है । तुम समर्थ हो । तुम्हारे लिए कोई भी कार्य अशक्य नहीं है । तुम मेरी इस भावना को अवश्य साकार बनाओगे । अतः तुम जल्दी जाओ और उन दुश्मनों के मस्तक छेदकर मेरे सामने लाओ । मेरे प्राण परलोक-प्रयाण की तैयारी कर रहे हैं, शत्रुओं के छिन्नमस्तक देख मैं सुख-पूर्वक मृत्यु को वर सकूंगा ।

``हे अश्वत्थामा ! तुम अजेय हो । तुम अकेले ही समस्त शत्रुओं को

जीतने में समर्थ हो तो फिर कृपाचार्य, कृतवर्मा के साथ तो तुम शीघ्र ही शत्रुओं को जीत सकोगे। तुम सब शीघ्र जाओ और मेरी भावना को सफल करो।''

दुर्योधन की यह आज्ञा पाकर अश्वत्थामा आदि ने पाण्डवों की छावनी की ओर प्रयाण किया।

पांचालों की हत्या

रात्रि में ही अश्वत्थामा ने पाण्डव-छावनी पर धावा बोल दिया। अश्वत्थामा बोला-``अरे पाण्डवो ! शीघ्र ही शस्त्रों को धारण कर युद्ध के लिए सज्ज हो जाओ। तुम पर अश्वत्थामा कुपित बना है।''

अश्वत्थामा के ये वचन सुनकर धृष्टद्युम्न और शिखण्डी तुरन्त ही शस्त्रों से सज्ज बन गए और उन्होंने लड़ाई प्रारम्भ कर दी।

थोड़ी ही देर में अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न और शिखण्डी के मस्तक को धड़ से अलग कर दिया। उसी समय पाण्डव-पुत्र पांचाल अश्वत्थामा से लड़ने के लिए युद्ध-भूमि में आ गए। इस युद्ध में पाँचों पांचालों ने भी अपना अद्‌भुत पराक्रम दिखलाया और अन्त में अश्वत्थामा ने पाँचों पांचालों के मस्तकों को छेद दिया। उन्हें उठाकर अश्वत्थामा दुर्योधन के पास आया। अश्वत्थामा इसी कल्पना में था कि ये पाँच मस्तक पाण्डवों के ही हैं।

अश्वत्थामा उन मस्तकों को दुर्योधन के समक्ष रखते हुए बोला-**``हे दुर्योधन ! आप आँखें खोलो ! मैं उन पाँचों पाण्डवों के मस्तक लेकर आया हूँ।''**

दुर्योधन ने अपनी आँखें खोलीं और उसने पाँच पाण्डवों के स्थान पर पाँच पांचालों के मस्तक देखे। देखते ही वह एकदम निराश हो गया और बोला, **``अरे मूर्खो ! तुमने यह क्या कर डाला ? पाण्डवों के स्थान पर उनके पुत्रों को ही मार डाला। इसमें तुम लोगों ने क्या पराक्रम दिखलाया ? सचमुच, तुम लोग झूठे आश्वासन देने में एकदम निपुण बन गए हो।**

``अरे ! वे दुष्ट पाण्डव तो अखण्ड ही रह गए ! मेरा इतना भाग्य कहाँ है कि मैं उन पाण्डवों को मरी हुई हालत में देखूँ ? इस प्रकार अत्यन्त क्रूर अध्यवसाय में डूबा हुआ दुर्योधन थोड़ी ही देर बाद मर गया और मरकर 7 वीं नरकभूमि में पहुँच गया।

पतन का द्वार क्रूर अध्यवसाय

किसी भी आत्मा के भविष्य का निर्माण उसके शुभ-अशुभ अध्यवसाय के अनुसार होता है । अशुभ व क्रूर अध्यवसाय आत्मा के पतन में कारण बनते हैं और शुभ अध्यवसाय आत्मा के उत्थान में कारण बनते हैं । यदि आप अपने भविष्य को सुधारना चाहते हैं तो सतत अपने अध्यवसायों का निरीक्षण करते रहें और अशुभ अध्यवसाय न आने पावें ऐसी सतत सावधानी रखें ।

अन्तिम समय में जीवात्मा के जैसे परिणाम होते हैं, वैसी ही उसकी गति होती है ।

धृतराष्ट्र-गान्धारी को आघात

इधर संजय ने दुर्योधन की मृत्यु के समाचार धृतराष्ट्र और गान्धारी को दिए । दुर्योधन की मृत्यु के समाचार सुनते ही उन दोनों को अत्यन्त आघात लगा और वे मूर्च्छित हो गए । मूर्च्छा उतरने के बाद वे दोनों अत्यन्त करुण विलाप करने लगे ।

पाञ्चालों की मृत्यु से पाण्डवों को आघात

इधर श्रीकृष्ण पाण्डवों को लेकर बलभद्रजी के पास आए और उन्होंने बलभद्रजी को समझा-बुझाकर शान्त किया ।

उसके बाद पाण्डवों ने अपनी छावनी की ओर प्रयाण किया, तभी सात्यकी ने आकर पाण्डवों को पांचालों के वध के समाचार दिए । अपने पाँचों पुत्रों की मृत्यु के समाचार सुनकर पाँचों पाण्डव एकदम शोकातुर बन गए ।

शोकातुर बने पाण्डवों को समझाते हुए श्रीकृष्ण ने कहा-``हे पाण्डवो ! तुम तो जगत् के यथार्थ स्वरूप को अच्छी तरह से जानते हो, अतः तुम्हें शोक करना उचित नहीं है, तुम्हारे लिए पुत्र-प्राप्ति दुर्लभ नहीं है, तुम जाकर द्रौपदी को सान्त्वना दो ।''

श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर सभी पाण्डव शोकमुक्त बने और अपनी छावनी में आ गए । द्रौपदी को पुत्रवध के समाचार मिले । अत्यन्त शोक से क्रन्दन करती हुई द्रौपदी को आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण बोले, ``हे द्रौपदी ! तू शोक का त्याग कर । अभी तक तू वीरपत्नी ही थी, अब तो तू वीरमाता बनी है ।''

श्रीकृष्ण के वचनों को सुकर द्रौपदी धीरे-धीरे शोकमुक्त बनी ।

धृतराष्ट्र और गान्धारी को आश्वासन

प्रातःकाल होने पर श्रीकृष्ण, पाण्डवों के साथ धृतराष्ट्र के पास गए और सभी पाण्डवों ने धृतराष्ट्र के चरणों में प्रणाम किया । धृतराष्ट्र व गान्धारी अत्यन्त शोकमग्न बने हुए थे ।

श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को कहा-``हे राजन् ! हे गान्धारी ! आप शोक मत करो । क्या ये पाण्डव आपके पुत्र नहीं हैं ? क्या इनके मन में आपके प्रति भक्ति नहीं है ? इस संग्राम में दुर्योधन की जो मौत हुई है, उसमें तो विधि ही बलवान है । दुर्भाग्य से ही कुरुवंश में परस्पर अप्रीति पैदा हुई । इसमें किसी का दोष नहीं है । मैंने तो इस युद्ध को रोकने का प्रयास भी किया था । दुर्योधन से मैंने केवल पाँच गाँवों की माँग की थी, परन्तु अफसोस है कि उसने मेरी माँग ठुकरा दी । अरे ! आपके पुत्र ने आपकी बात भी कहाँ स्वीकार की थी ? जो कुछ होने वाला था, वह हो गया । युद्ध-भूमि में दुर्योधन के आने पर, पाण्डव इस पृथ्वी को छोड़कर चले जाते तो उसमें आपके वंश की ही निन्दा होती ।

``अतः हे धृतराष्ट्र ! हे गान्धारी ! आप प्रसन्न होकर इन पाण्डवों को आशीर्वाद दो और इन्हें अपने पुत्र तुल्य स्वीकार करो ।''

श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों का आलिंगन किया और उन्हें आशीर्वाद दिया ।

तत्पश्चात् गान्धारी ने कहा ``हे पाण्डवो ! यदि तुम मेरे पुत्र कहलाते हो तो मुझे युद्धभूमि में ले चलो, जिससे मैं अपने पुत्रों के अन्तिम दर्शन कर सकूँ ।''

दुर्योधन आदि का अग्नि-संस्कार

उसके बाद पाण्डव गान्धारी व भानुमती को युद्ध-भूमि में ले गए । चिरनिद्रा में सोए हुए अपने पुत्रों को देखकर गान्धारी एकदम मूर्च्छित हो गई । मूर्च्छा टूटने पर एकदम करुण-स्वर से विलाप करने लगी ।

युधिष्ठिर ने संसार की अनित्यता समझाकर सबको सान्त्वना दी और अन्त में अर्जुन ने अग्नि-अस्त्र छोड़कर दुर्योधन आदि सभी का अग्नि-संस्कार कर दिया और धृतराष्ट्र के पास जाकर सबको श्रद्धांजलि अर्पित की ।

इस प्रकार इस महाभारत के युद्ध में एकमात्र अहंकार दोष के कारण दुर्योधन आदि कौरव पक्ष का विनाश हुआ ।

आज घर-घर में, परिवार-परिवार में महाभारत के युद्ध खेले जा रहे हैं, उन सबका मूल एकमात्र अहंकार और अभिमान ही है ।

महाभारत के इस युद्ध-प्रसंग से यदि इतनी ही प्रेरणा ली जाय कि हम जीवन में कभी अहंकार और अभिमान के अधीन नहीं बनेंगे...तो हमारे जीवन में अवश्य ही मोड़ आ सकता है और हम विकासोन्मुख गति कर सकते हैं ।

जरासन्ध के दूत का आगमन

दुर्योधन की मृत्यु के समाचार सुनकर जरासन्ध एकदम कुपित हो उठा । उसने अपने सोमक दूत को तैयार कर श्रीकृष्ण के पास भिजवाया । दूत ने जाकर कहा-**``हे कृष्ण ! कौरवों को समाप्त कर तुम मदोन्मत्त मत बनो । दुर्योधन के वध का बदला लेने के लिए मैं तैयार बैठा हूँ । कुरुक्षेत्र की भूमि तो रक्त से रंजित बनी हुई है, अतः युद्ध के लिए सरस्वती नदी के किनारे सनपल्ली गाँव में आ जाना ।''**

दूत के इन वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण जरासन्ध के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गए । उन्होंने दूत को विदाई दी ।

दूत ने जाकर जरासन्ध को श्रीकृष्ण के अद्‌भुत पराक्रम की बातें कहीं । साथ ही यह भी कहा कि श्रीकृष्ण की सेना में जितने पराक्रमी योद्धा हैं, उनका एक अंश भी अपनी सेना में नहीं है । अतः आप युद्ध का विचार छोड़ दें, अन्यथा आपकी पराजय होगी ।

दूत के मुख से ऐसे शब्द सुनकर जरासन्ध एकदम गुस्से में आ गया और बोला, ``अरे दूत ! मैं अर्धभरत का अधिपति हूँ । मेरे सैन्यबल और पराक्रम के आगे श्रीकृष्ण क्या चीज है ? इस प्रकार की बातें करते हुए तुझे शर्म नहीं आती है ?'' इस प्रकार दूत को धमका कर उसने अपनी सेना को `सनपल्ली' युद्ध-भूमि की ओर आगे बढ़ने का आदेश दे दिया ।

इधर श्रीकृष्ण ने भी अपनी विराट् सेना के साथ सनपल्ली गाँव की ओर प्रयाण किया । श्रीकृष्ण ने आकर सर्वप्रथम गरुड़व्यूह की रचना की और जरासन्ध ने चक्रव्यूह की रचना की ।

हिरण्यनाभ का वध

जरासन्ध और श्रीकृष्ण की सेनाओं के बीच युद्ध चालू हो गया। भाइयों के आग्रह से नेमिकुमार भी युद्ध में आ जुड़े। इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से देखा कि नेमिकुमार युद्ध में जा रहे हैं, अतः उन्होंने मातलि नाम के सारथी को वज्र-कवच आदि आयुधों से सुसज्ज कर नेमिकुमार के पास भेजा। अपने जन्माभिषेक के समय इन्द्र ने जो रक्षा पोटली बाँधी थी, नेमिकुमार ने वह पोटली श्रीकृष्णजी के हाथों में बाँध दी।

जरासन्ध के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए श्रीकृष्ण आगे आए। उनके दाहिनी ओर नेमिकुमार, बायीं ओर अर्जुन और सामने अनाधृष्टि था। तीनों ने मिलकर चक्रव्यूह के द्वार तोड़ दिये। जरासन्ध के सैनिकों ने नेमिकुमार पर आक्रमण किया। परन्तु नेमिकुमार ने ज्योंही शंख बजाया, उस शंख की ध्वनि को सुनकर अनेक सैनिकों के हाथों में रहे शस्त्र भूमि पर गिर गए और वे चित्र में आलेखित की तरह एकदम स्थिर हो गए।

दूसरी ओर अनाधृष्टि ने हिरण्यनाभ पर आक्रमण किया... परन्तु हिरण्यनाभ ने भी उसका जोरदार प्रतिकार किया, जिससे अनाधृष्टि हताश हो गया। इसी बीच भीम ने अनेक सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। अर्जुन के असह्य प्रहारों से जरासन्ध के सैनिक नौ दो ग्यारह होने लगे...अन्त में भीम ने अपनी गदा के तीव्र प्रहार से हिरण्यनाभ को यम-मंदिर पहुँचा दिया। इसी बीच सूर्यास्त हो जाने से युद्ध बन्द हो गया।

दूसरे दिन जरासन्ध ने शिशुपाल को अपना सेनाधिपति बनाया। शिशुपाल और अनाधृष्टि के बीच भयंकर युद्ध जमा। शिशुपाल अनाधृष्टि को छोड़ श्रीकृष्ण की ओर आगे बढ़ा और उनको मारने के लिए दौड़ा। इसी बीच श्रीकृष्ण ने अपनी तलवार के प्रहार से शिशुपाल का वध कर दिया।

जरासन्ध-वध

शिशुपाल की मृत्यु से जरासन्ध एकदम कोपायमान हो गया और एकदम उत्साह में आकर यादव-सेना पर टूट पड़ा। यादव-सेना के विनाश को देख, श्री नेमिकुमार ने धनुष का टंकार किया। धनुष के टंकार को सुनकर जरासन्ध के सैनिक एकदम स्तम्भित हो गए। बलदेव ने जरासन्ध के 28 पुत्रों को खत्म कर दिया और शेष 41 पुत्रों को श्रीकृष्ण ने मौत के घाट उतार दिया।

उसके बाद श्रीकृष्ण और जरासन्ध आमने-सामने आ गए । अन्त में जरासन्ध ने श्रीकृष्ण पर सुदर्शन चक्र फेंका...परन्तु उस चक्र का श्रीकृष्ण पर कुछ भी असर नहीं हुआ । श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र को अपनी अँगुली में ग्रहण कर लिया । उसके बाद उन्होंने जरासन्ध को निशाना बनाकर वह चक्र फेंका । बस, उसी समय उस चक्र से जरासन्ध का मस्तक धड़ से नीचे गिर पड़ा और पुनः वह चक्र श्रीकृष्ण के हाथ में आ गया ।

देवों ने श्रीकृष्ण पर पुष्पवृष्टि की और जय-जय की ध्वनि से आकाश मंडल गूँज उठा ।

नेमिकुमार के शंख से स्तम्भित बने सैनिकों को दयालु नेमिकुमार ने पुनःबन्धन-मुक्त कर दिया ।

उसके बाद मगध की गादी पर जरासन्ध के पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक कराकर उसे वहाँ का राजा बना दिया गया ।

अनाधृष्टि ने अपने अग्निशस्त्र से सभी मृत सैनिकों का अन्तिम संस्कार कर दिया ।

श्रीकृष्ण तीन खण्ड के अधिपति बने

भरतक्षेत्र के कुल छह खण्ड हैं । चक्रवर्ती उन समस्त छह खण्डों पर विजय प्राप्त करता है, जबकि वासुदेव तीन खण्ड का अधिपति बनता है ।

श्रीकृष्ण भी वासुदेव थे, अतः त्रिखण्ड को साधने के लिए उन्होंने प्रयाण कर दिया । वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, त्यों-त्यों वहाँ के राजा उनकी शरणागति स्वीकार कर लेते थे । उन्होंने अनेक राजाओं की उपस्थिति में कोटिशिला को भी उठाया था ।

तीन खण्ड के समस्त राजाओं पर बहुत ही अल्प समय में विजय प्राप्त कर श्रीकृष्ण ने द्वारकानगरी की ओर प्रयाण किया । द्वारकानगरी में प्रवेश का भव्य महोत्सव मनाया गया । उस समय 16000 राजाओं ने मिलकर श्रीकृष्ण का राज्याभिषेक किया और वे तीन खण्ड के अधिपति वासुदेव बने ।

पाण्डवों का हस्तिनापुर-प्रवेश

उसके बाद पाँचों पाण्डवों ने श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर में प्रवेश किया । पाण्डवों ने माता माद्री और पाण्डु के चरणों में बहुमानपूर्वक प्रणाम किया ।

पाण्डवों की भव्य विजय से हस्तिनापुर की प्रजा में आनन्द की लहर फैल गई थी । राजदरबार में प्रवेश करने के बाद श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को राज-सिंहासन पर बिठाया और उसका राज्याभिषेक किया । चारों ओर मंगल गीत गाए गए । वाद्य यंत्र बजने लगे । हर्षध्वनि और आनन्द के वातावरण के बीच युधिष्ठिर हस्तिनापुर के राजा बने ।

युधिष्ठिर ने आगन्तुक अतिथियों का हार्दिक स्वागत किया और उन्हें कींमती वस्तुओं की भेंट देकर विदाई दी । युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का भी खूब-खूब आभार माना और उन्हें भी रत्न, सुवर्ण आदि प्रदान कर उनका अभि-नन्दन किया । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने द्वारका की ओर प्रयाण कर दिया ।

राजा बनने के बाद युधिष्ठिर ने सत्ता की बागडोर अपने हाथों में ले ली और राजतंत्र को उन्होंने अपनी सूझ-बूझ से मजबूत बनाया ।

युधिष्ठिर सत्यवादी और न्यायप्रिय थे । अपने राज्य में किसी भी प्रकार का अन्याय न हो जाय, इसके लिए वे खूब जागरूक रहते थे । कुछ ही समय में उन्होंने प्रजा का दिल जीत लिया । अपने समस्त राज्य में उन्होंने व्यसनमुक्ति और अहिंसा की उद्घोषणा करवाई ।

भीष्म पितामह की अन्तिम आराधना

राज्यप्राप्ति के बाद एक दिन युधिष्ठिर को पितामह मुनि की याद आ गई, अतः वे अपने परिवार के साथ पितामह मुनि को वन्दन करने के लिए चल पड़े । क्रमशः आगे बढ़ते हुए वे भीष्म मुनि के पास पहुँचे । सभी पाण्डवों ने पितामह मुनि के चरणों में भावपूर्वक प्रणाम किया । मुनिवर ने उन्हें धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया । उसके बाद वे पाण्डव मुनिवर के चरणों में बैठ गए ।

युधिष्ठिर ने कहा-``हे भगवन्त ! राज्य-तृष्णा के पाप के कारण मैंने कैसे भयंकर पाप किए ? अहो ! उन पापों से मेरी शुद्धि कैसे होगी ? राज्यलोभ में फँसकर मैंने अपने भाइयों का वध करा दिया । इस युद्ध में हजारों मानव और पशु मारे गए । उन सबके पाप से मेरी आत्मा कैसे मुक्त बनेगी ? मैंने धृतराष्ट्र और गान्धारी के दिल को कितना भारी सदमा पहुँ-चाया ?''

``हे पितामह ! आप तो संसार-सागर के पार को पा चुके हैं, अतः हम पर अनुग्रह करके हमें धर्म-देशना के अमृत का पान कराओ, जिससे मैं भी आपका अनुगामी बनकर संसार के बन्धनों से मुक्त हो सकूँ । आगे आपने

राज्य और प्रजा के पालन के लिए राज-धर्म/नीति का उपदेश दिया था, अब हमें आत्म-धर्म का उपदेश देकर हम पर अनुग्रह करो ।''

पाण्डवों की यह प्रार्थना सुनकर पितामह मुनि ने अत्यन्त ही वात्सल्यपूर्वक दान-शील-तप और भाव रूप चार प्रकार का धर्म समझाया । चारों प्रकार के धर्म के विस्तृत स्वरूप को सुनकर सभी पाण्डव प्रसन्न हो गए और अपने आपको धन्य मानने लगे ।

उसी समय भद्रगुप्ताचार्य भगवन्त ने पितामह मुनि को कहा-``हे भीष्म मुनि ! अब तुम्हारा अन्तिम समय निकट आ चुका है, अतः अब अन्तिम आराधना में लग जाओ ।''

आचार्य भगवन्त की मधुर वाणी सुनकर पितामह मुनि ने कहा-``हे प्रभो ! आप मुझे निर्यामणा कराओ, जिससे मेरी आत्मा संसार-सागर के पार को प्राप्त कर सके ।''

बस, उसी समय आचार्य भगवन्त उन्हें निर्यामणा कराने लगे । पितामह मुनि भी इस जीवन में हुए पापों की निन्दा और गर्हा करने लगे । दुष्कृत की गर्हा, सुकृत की अनुमोदना और चतुःशरणागति रूप साधना में पितामह मुनि एकदम तल्लीन बन गए ।

उन्होंने अत्यन्त समाधिपूर्वक भौतिक देह का त्याग कर दिया और उनकी आत्मा बारहवें देवलोक में पहुँच गई ।

नेमिकुमार के लग्न के लिए श्रीकृष्ण का प्रयास

एक बार नेमिकुमार श्रीकृष्ण की आयुधशाला में पहुँच गए और अत्यन्त सहजता से अपनी अँगुली पर सुदर्शन-चक्र घुमाने लगे । थोड़ी देर बाद उन्होंने पाञ्चजन्य शंख फूँका । उस शंख की ध्वनि से वातावरण में खलबली मच गई । सभी हाथी आलान-स्तम्भ को तोड़कर भागने लगे । सभी घोड़े जोर-जोर से हेषारव करने लगे । चारों ओर हाहाकार मच गया ।

शंख की ध्वनि सुनकर श्रीकृष्ण ने सोचा-``यह शंख किसने बजाया है ? क्या मेरा कोई शत्रु पैदा हुआ है ?'' वे भागकर आयुधशाला में आए और वहाँ नेमिकुमार को देखकर आश्चर्यमुग्ध हो गए ।

वे सोचने लगे-नेमिकुमार के बल की मुझे परीक्षा करनी चाहिए । बल-परीक्षा के लिए उन्होंने युद्ध का आह्वान किया । नेमिकुमार ने कहा-``बल-

परीक्षा के लिए युद्ध की क्या आवश्यकता है ? एक-दूसरे का हाथ मोड़कर भी बल की परीक्षा हो सकती है ।''

श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार की बात स्वीकार कर ली ।

पहले श्रीकृष्ण ने अपना हाथ लम्बा किया । नेमिकुमार ने उसे सहजता से मोड़ दिया ।

उसके बाद नेमिकुमार ने अपना हाथ लम्बा किया । अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी श्रीकृष्ण नेमिकुमार के हाथ को मोड़ न सके ।

वे निराश होकर सोचने लगे-``अहो ! मेरे अर्जित किए राज्य को नेमिकुमार मुझे हराकर ले लेगा ।''

इस प्रकार विचार कर उन्होंने बलभद्रजी से मंत्रणा की ।

तभी आकाशवाणी हुई-``हे कृष्ण वासुदेव ! पूर्व में नमिनाथ प्रभु ने कहा है कि नेमिकुमार कुमारावस्था में ही दीक्षा लेंगे ।'' इस आकाशवाणी को सुनकर श्रीकृष्ण कुछ निश्चिन्त बने । फिर भी उसकी परीक्षा के लिए उन्होंने अपनी पत्नियों को कहा-``तुम नेमिकुमार को पाणि-ग्रहण के लिए तैयार करो ।''

श्रीकृष्ण के आग्रह से नेमिकुमार जल-क्रीड़ा के लिए गए । जल-क्रीड़ा के बाद रुक्मिणी, सत्यभामा आदि नेमिकुमार को पाणि-ग्रहण के लिए आग्रह करने लगीं । उनके आग्रह को देख नेमिकुमार मौन रहे । उनके मौन को सहमति समझकर सत्यभामा आदि ने श्रीकृष्ण से बात की ।

तत्काल श्रीकृष्ण ने ज्योतिषी को बुलाकर लग्न का मुहूर्त पूछा । ज्योतिषी ने कहा-``चातुर्मास में लग्न आदि शुभ कार्य नहीं होते हैं ।'' परन्तु श्रीकृष्ण के अति आग्रह से उसने श्रावण शुक्ला छठ का दिन बता दिया ।

बस, तत्काल श्रीकृष्ण ने उग्रसेन राजा से बातचीत कर, उसकी पुत्री राजीमती के साथ नेमिकुमार के लग्न की तैयारी आरम्भ कर दी ।

नेमिकुमार संसार से अत्यन्त ही विरक्त थे । लग्न की उनकी लेश भी इच्छा नहीं थी । फिर भी माता-पिता के आग्रह से उन्होंने उग्रसेन राजा के महल की ओर प्रयाण किया । धीरे-धीरे रथ आगे बढ़ने लगा । नेमिकुमार ने पूछा-``वह सामने किसका महल दिखाई दे रहा है ?''

सारथी ने कहा-``उग्रसेन राजा का ।''

इधर उसी समय राजीमती अपनी सखियों के साथ विनोदवार्ता कर रही थी। वह भी रथ में आ रहे नेमिकुमार को दूर से देखने लगी। तभी उसका दाहिना नेत्र स्फुरित होने लगा। उसे भावी-अमंगल दिखाई देने लगा।

इसी बीच नेमिकुमार को पशुओं का क्रन्दन सुनाई दिया। सारथी के पूछने पर पता चला कि अन्य क्षत्रिय राजाओं की मिजवानी के लिए इन पशुओं को बाँधा गया है। सारथी के मुख से यह बात सुनते ही नेमिकुमार का मन दया से भर आया और उन्होंने तत्काल उन पशुओं को बन्धन-मुक्त करने के लिए आदेश दे दिया और लग्न के विचार का त्याग कर अपने रथ को मोड़ दिया। नेमिकुमार लौट चले। राजीमती को नेमिकुमार के लौटने की बात का ज्योंही पता चला, त्योंही उसे अत्यन्त आघात लगा। सभी सखियाँ उसे आश्वासन देने लगीं और कहने लगीं ``हे राजीमती ! हमने जो कहा था कि काली वस्तु में अवगुण होते हैं, वह बात आज सत्य निकली। तू नेमिकुमार को भूल जा, अन्य राजकुमार के साथ तेरा पाणिग्रहण हो जाएगा।'' सखियों के मुख से इन शब्दों को सुनकर राजीमती ने अपने कान पर हाथ घर दिए और बोली-``ऐसे कटु शब्द मुझे मत सुनाओ। पूर्व में उदय पाने वाला सूर्य कदाचित् पश्चिम में उग जाय, फिर भी मैं अन्य पति को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हूँ।''

राजीमती ने सोचा-``भले ही नेमिकुमार ने मेरा हाथ नहीं पकड़ा...परन्तु दीक्षा के समय तो अवश्य ही उनका हाथ मेरे मस्तक पर रहेगा।''

इधर नेमिकुमार ने अपने माता-पिता को समझा दिया। लौकान्तिक देवों ने आकर नेमिकुमार का अभिनन्दन किया और `हे भगवन् ! तीर्थ प्रवर्ताओ' ऐसा निवेदन किया। उसी दिन से नेमिकुमार ने वार्षिकदान प्रारम्भ कर दिया।

नेमिनाथ की दीक्षा व केवलज्ञान

एक वर्ष तक निरन्तर दान देकर नेमिकुमार ने जगत् के द्रव्य-दारिद्र्य को दूर किया। तत्पश्चात् श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन नेमिकुमार की दीक्षा का भव्य वरघोड़ा निकला। उत्तरकुरा नाम की शिविका में बैठकर नेमिकुमार रैवतक उद्यान में पधारे और वहाँ आकर अशोकवृक्ष के नीचे सर्व आभूषणों का त्याग कर पंचमुष्टि लोच कर चारित्र स्वीकार लिया।

54 दिन तक नेमिनाथ प्रभु छद्मस्थ अवस्था में रहे। इन दिनों में

उन्होंने समत्वभाव की उत्कट साधना की, जिसके फलस्वरूप आसो वद अमावस्या के दिन उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई ।

देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की । प्रभु ने वैराग्यपूर्ण धर्मदेशना दी, जिसे सुनकर वरदत्त आदि अनेक राजाओं ने तथा राजीमती आदि ने भागवती दीक्षा स्वीकार की । उसी समय परमात्मा ने चतुर्विध संघ की स्थापना की ।

निमित्त पाकर रथनेमि का पतन व पुनः उत्थान

एक बार राजीमती नेमिनाथ प्रभु को वन्दन करने के लिए गिरनार पर्वत पर चढ़ रही थी । अचानक वर्षा गिरने से उसके वस्त्र भीग गए । अपने वस्त्रों को सुखाने के लिए उसने एक गुफा में प्रवेश किया । उस गुफा में रथनेमि ध्यानस्थ खड़े थे । अचानक उनकी नजर राजीमती के अद्‌भुत रूप व लावण्य से युक्त देह पर पड़ी । तत्काल वे कामातुर बन गए और राजीमती से भोग की प्रार्थना करने लगे ।

कामवासना एक भयंकर आग है । स्त्री आदि निमित्तों को पाकर वह आग पैदा हो जाती है । पास में यदि वैराग्य का जल न हो तो वह आग अत्यन्त शीघ्र ही भड़क उठती है । इसी कारण महापुरुषों ने ब्रह्मचर्य की रक्षा व पालन के लिए नौ-नौ बाड़ों का विधान किया है ।

राजीमती के रूप-दर्शन के निमित्त को पाकर रथनेमि मुनि एकदम कामातुर बन गए । तभी राजीमती ने उन्हें सन्मार्ग में रहने का कठोर शब्दों में उपदेश दिया और उन्हें पुनः संयम में स्थिर किया ।

राजीमती ने कहा-``अगंधन कुल में पैदा हुए सर्प आग में गिरकर मर जाते हैं किन्तु वमित विष का पुनः पान नहीं करते हैं...तो फिर आप क्या उनसे भी अधम हो ? नेमिकुमार ने मेरा त्याग किया है, अतः मेरी इच्छा करना वमित भोजन के आस्वाद तुल्य है ।''

राजीमती के उद्‌बोधक शब्दों को सुनकर रथनेमि प्रतिबुद्ध हुए और उन्होंने पुनः प्रभु के पास पाप की आलोचना कर आत्मशुद्धि की ।

एक बार नेमिनाथ प्रभु विहार करते हुए हस्तिनापुर पधारे । देवताओं ने आकर समवसरण की रचना की । प्रभु की वैराग्यमय देशना का श्रवण कर अनेक आत्माओं ने दीक्षा स्वीकार की । धृतराष्ट्र-गान्धारी आदि ने भी श्रावकोचित बारह व्रत स्वीकार किए ।

द्रौपदी का अपहरण

एक बार नारदजी द्रौपदी के महल में आए । नारदजी को असंयत जानकर द्रौपदी ने उनका योग्य सत्कार नहीं किया । द्रौपदी की इस वृत्ति से नारदजी नाराज हो गए और उन्होंने द्रौपदी को भयंकर संकट में डालने का निश्चय कर लिया ।

नारदजी आकाशमार्ग से परिभ्रमण करते हुए धातकीखण्ड की अपरकंका नगरी में पधारे । वहाँ का राजा पद्मनाभ अत्यन्त कामी था । नारदजी उसके पास पहुँच गए ।

राजा ने पूछा-``क्या मेरी पत्नी के समान अन्य रूपवती स्त्री आपने देखी है ?''

नारदजी ने कहा,-``पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी के रूप के आगे तो आपकी पत्नी का रूप कोयले के समान है ।'' इतना कहकर नारदजी आकाशमार्ग से चले गए ।

कामी व्यक्ति सदैव अतृप्त ही रहता है । द्रौपदी को पाने के लिए पद्मनाभ ने भवनपति निकाय के मित्र की सहायता से उसका अपहरण करा दिया ।

द्रौपदी को प्राप्त कर पद्मनाभ अत्यन्त कामी बन गया । वह उससे काम की प्रार्थना करने लगा । महासती द्रौपदी अपने शीलधर्म के प्रति अडिग थी । अपने प्राणों का बलिदान देकर भी वह अपने शील का रक्षण करना चाहती थी ।

द्रौपदी ने देखा-``शीलरक्षण के लिए काल-क्षेप के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है ।'' किसी युक्ति के द्वारा द्रौपदी कालक्षेप करने लगी ।

श्रीकृष्ण और पाण्डवों का अपरकंका में आगमन

इधर द्रौपदी के अपहरण को जानकर सभी पाण्डव चिन्तातुर हो गए । चारों ओर खोज की गई, किन्तु कहीं पर भी द्रौपदी नहीं मिली । आखिर द्रौपदी की खोज के लिए पाण्डवों ने अपनी माता कुन्ती को श्रीकृष्ण के पास भेजा ।

कुछ समय बाद नारदजी के द्वारा पता चला कि धातकी खण्ड की अपरकंका नगरी के राजा पद्मनाभ के महल में द्रौपदी है ।

द्रौपदी का पता चलते ही श्रीकृष्ण पाण्डवों के साथ लवणसमुद्र के तट पर आ गए। अट्ठम के तप द्वारा सुस्थित देव को प्रत्यक्ष किया और उसकी सहायता से पाण्डव और कृष्ण अपरकंका नगरी के बाहर पहुँच गए।

श्रीकृष्ण ने दूत भेजकर पद्मनाभ को युद्ध के लिए ललकारा। पद्मनाभ सैन्य सहित लड़ने के लिए तैयार हो गया।

इधर पाण्डवों ने श्रीकृष्ण को आग्रह किया कि हम युद्ध में लड़ने के लिए जाएंगे। कृष्ण की सहमति से पाण्डव युद्ध के मैदान में आ गए, किन्तु पद्मनाभ के आगे उनकी एक न चली। वे दुम दबाकर श्रीकृष्ण के पास आ गए। तभी श्रीकृष्ण स्वयं युद्ध के मैदान में आए। उन्होंने अपना पाञ्चजन्य शंख फूंका। उस शंख-ध्वनि को सुनकर सभी सैनिक तितर-बितर हो गए। पद्मनाभ भागकर नगर में घुस गया और उसने नगर के द्वार बन्द करा दिए। श्रीकृष्ण ने नृसिंह का रूप किया और समस्त पृथ्वी कम्पित होने लगी। राजमहल भी धराशायी होने लगा।

पद्मनाभ राजा एकदम घबरा गया और वह द्रौपदी की शरण मांगने लगा।

द्रौपदी ने कहा-``यदि स्त्रीवेष पहनकर मेरे पीछे आओगे तो बच जाओगे।'' भयभीत बने पद्मनाभ ने द्रौपदी की शर्त स्वीकार ली और स्त्री का वेष पहनकर वह द्रौपदी के पीछे-पीछे चलने लगा।

पद्मनाभ की इस दशा को देख श्रीकृष्ण को दया आ गई और द्रौपदी के कथन से उन्होंने पद्मनाभ को जीवित छोड़ दिया।

श्रीकृष्ण का संयम-प्रेम

नेमिनाथ प्रभु के मुख से विरति-धर्म का माहात्म्य सुनकर श्रीकृष्ण के हृदय में संयम के प्रति तीव्र अनुराग पैदा हुआ। चारित्रमोहनीय कर्म के तीव्र उदय के कारण वे संयम को स्वीकार करने में असमर्थ थे। फिर भी उन्होंने प्रतिज्ञा की-``यदि कोई संयम-ग्रहण की इच्छा करेगा तो उसका मैं निषेध नहीं करूंगा और उसकी दीक्षा का महोत्सव भी करूंगा, इतना ही नहीं, उसके परिवार की जवाबदारी भी वहन करूंगा।''

श्रीकृष्ण की इस प्रतिज्ञा से हमें पता चलता है कि उनके हृदय में संयम के प्रति कितना अधिक दृढ़ अनुराग था।

मानव-जीवन की सफलता / सार्थकता संयम-जीवन में ही है । यदि अपनी कमजोरी के कारण संयम ग्रहण न कर सकें तो भी जो संयम ग्रहण करता हो, उसका निषेध तो कभी नहीं करना चाहिए ।

तीव्र संयम-राग के कारण ही श्रीकृष्ण यौवन वय को प्राप्त अपनी कन्याओं को पूछते थे-``तुझे रानी बनना है या दासी ?''

कन्या कहती-``मुझे रानी बनना है ।''

कृष्ण कहते-``रानी बनना हो तो नेमिनाथ प्रभु के पास जाओ और संयम ग्रहण करो ।''

इस प्रकार प्रेरणा कर उन्होंने अनेक कन्याओं को दीक्षा दिलाई ।

एक बार माता की सलाह से केतुमञ्जरी कन्या ने कहा-

``दासी बनना है ।'' उसके इस जवाब को सुनकर कृष्ण ने उसका लग्न वीर सालवी के साथ करा दिया और सालवी को आदेश दिया कि इस केतुमञ्जरी से कठोर-से-कठोर काम करवाना ।''

बस, कुछ ही दिनों में केतुमञ्जरी कंटाल गई और श्रीकृष्ण के पास आकर बोली-``मुझे तो रानी बनना है ।''

श्रीकृष्ण ने उसे नेमिनाथ प्रभु के पास भिजवाकर दीक्षा दिलवाई ।

कृष्ण भावी तीर्थंकर

एक बार श्रीकृष्ण महाराजा ने अत्यन्त ही भावपूर्वक नेमिनाथ प्रभु के 18000 साधुओं को वन्दन किया, जिससे वे अत्यंत श्रमित हुए ।

प्रभु ने कहा-``मुनि-वन्दन से तुम्हारी भव-भ्रमण की थकावट दूर हो गई है । मुनि-वन्दन द्वारा तुमने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया है और तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित किया है । तुम आगामी चौबीसी में अमम नाम के तीर्थंकर बनकर मोक्ष जाओगे ।''

श्री नेमिनाथ प्रभु के मुख से अपने उज्ज्वल भविष्य को सुनकर श्री-कृष्ण अत्यन्त प्रमुदित हुए ।

द्वारका-नाश कैसे होगा ?

एक बार नेमिनाथ प्रभु विहार करते हुए पुनः द्वारका में पधारे । श्रीकृष्ण महाराजा भव्य महोत्सवपूर्वक प्रभु को वन्दन करने के लिए गए ।

प्रभु की धर्मदेशना का श्रवण कर श्रीकृष्ण महाराजा ने पूछा-``प्रभो ! इस द्वारका का और मेरा विनाश किसी निमित्त से होगा अथवा स्वतः होगा ?''

प्रभु ने कहा-``हे कृष्ण ! शौर्यपुर नगर के बाहर द्वैपायन ऋषि हैं । मद्यपान के कारण शाम्ब आदि उन्हें हैरान करेंगे, जिसके फलस्वरूप वे मरकर देव बनकर द्वारका का नाश करेंगे और तुम्हारी मृत्यु जराकुमार के हाथ से होगी ।''

प्रभु के मुख से यह बात जानकर वसुदेव के पुत्र जराकुमार ने सोचा-``अहो ! धिक्कार है मेरे जीवन को, अहो ! मेरे निमित्त से भाई की हत्या होगी ? मैं कैसा पापी ! मैं श्रीकृष्ण का हत्यारा तो नहीं बनूँ'' इस प्रकार विचार कर जराकुमार धनुष-बाण लेकर द्वारकानगरी का त्याग कर भयंकर जंगल में चला गया ।

प्रभु के मुख से द्वारका-नाश की बात सुनकर बलदेवजी का सारथी सिद्धार्थ प्रभु से दीक्षा लेने के लिए तैयार हो गया ।

बलदेव ने कहा-``सिद्धार्थ ! मैं तेरा त्याग करने में असमर्थ हूँ...परन्तु तू त्याग के पंथ पर जा रहा है तो मैं विघ्नभूत नहीं बनना चाहता हूँ । जा, तेरा पंथ निष्कंटक बने । हाँ ! इस संयम के प्रभाव से तू मरकर देव बन जाय तो मुझे प्रतिबोध करने के लिए अवश्य आना ।''

सिद्धार्थ ने बलदेव के वचन में अपनी स्वीकृति दे दी ।

सिद्धार्थ ने प्रभु के पास दीक्षा स्वीकार कर ली और निर्मल संयम-जीवन और तप की साधना के फलस्वरूप मरकर देव बना ।

द्वैपायन ऋषि का निदान

प्रभु के मुख से शराब के कारण द्वारका-नाश की बात जानकर श्रीकृष्ण महाराजा ने अपने राज्य में मद्यपान-निषेध की घोषणा करा दी और नगर में जितना भी दारु था, उसे तुंबवन की कादम्बरी गुफा के शिलाकुण्डों में फिंकवा दिया ।

कादम्बरी गुफा के आसपास अत्यन्त सुगन्धित फलों के वृक्ष थे । सुगन्धित पुष्प व फल गिरने से वह मद्य अधिक स्वादिष्ट हो गई ।

एक बार गर्मी के दिनों में शाम्बकुमार का नौकर उस कुंड के पास आया और उसे तृषा लगी । उसने उस कुण्ड में से थोड़ी शराब पी ली । उसे बड़ा आनन्द आया ।

27. महासती
शिवादेवी
पृष्ठ नं. 253

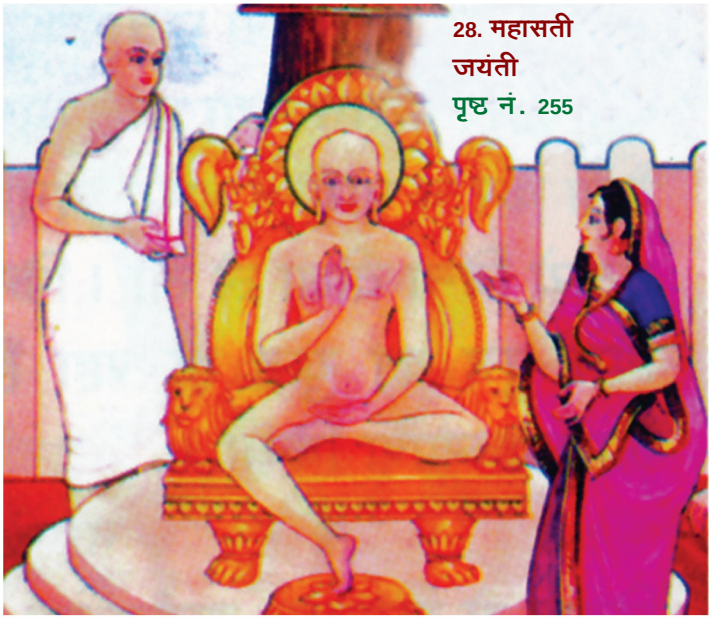

28. महासती
जयंती
पृष्ठ नं. 255

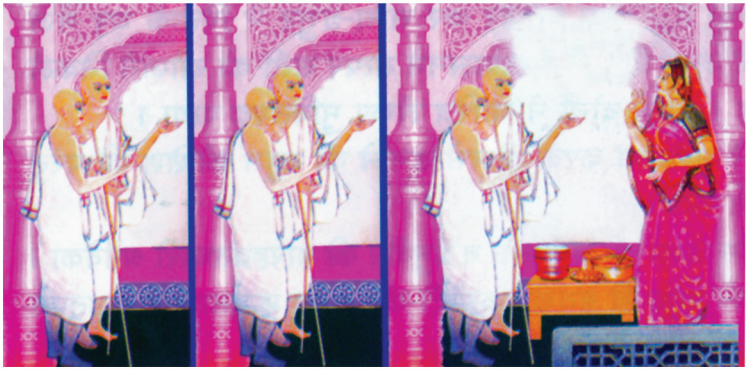

29. महासती
देवकी
पृष्ठ नं. 256

एक पात्र में थोड़ी शराब भरकर उसने वह शाम्बकुमार को दी । शाम्बकुमार ने भी उसका पान किया, उसे भी बड़ा आनंद आया । वह दूसरे दिन यादव कुमारों को लेकर कादम्बरी गुफा में पहुँच गया और वहाँ सभी यादवों ने डटकर मदिरापान किया ।

मधुपान के नशे में इधर-उधर भटकते हुए उन्होंने द्वैपायन ऋषि को देखा । उस ऋषि को देखकर शाम्ब बोला, ``अरे ! यह ऋषि तो हमारे कुल का विध्वंसक है, अतः इसे मार डालो ।''

शाम्बकुमार की बात सुनते ही सभी कुमार उस ऋषि को पत्थरों, लकड़ियों व मुष्टियों से मारने लगे ।

कुमारों के प्रहार से वह ऋषि जमीन पर ढल पड़ा । उसे मृतप्राय जानकर सभी यादवकुमार द्वारका में आ गए ।

श्रीकृष्ण को ज्योंही इस बात का पता चला, वे बलदेव को साथ लेकर द्वैपायन ऋषि के पास आए और ऋषि को शान्त करने के लिए मधुर वचन कहने लगे-``हे महर्षे ! क्रोध तो आत्मा का भयंकर शत्रु है, वह एक जन्म में नहीं, किन्तु लाखों जन्मों तक आत्मा को दुःख पहुँचाता है, अतः मद्यपान से अन्धे बने हमारे पुत्रों ने जो कुछ भी अपराध किया है, उसे आप क्षमा करें, क्योंकि आपके जैसे महर्षियों के लिए कोप करना उचित नहीं है ।''

श्रीकृष्ण के समझाने पर भी द्वैपायन ऋषि शान्त नहीं हुआ । वह बोला, ``हे कृष्ण ! ये बातें अब रहने दो, तुम्हारे पुत्रों ने मुझे जो भयंकर मार लगाई, उस समय मैंने समस्त लोकों के साथ द्वारका का विनाश करने का संकल्प किया है, अतः अब तुम दोनों को छोड़कर अन्य किसी का छुटकारा नहीं हो सकेगा ।''

बलदेव के आग्रह से श्रीकृष्ण पुनः महल में आ गए ।

श्रीकृष्ण ने द्वारका में आकर समस्त प्रजाजनों को द्वैपायन ऋषि के निदान की बात कह दी और साथ में कहा-``हे प्रजाजनो ! तुम सब लोग धर्म-कर्म में अधिक तत्पर बन जाओ । धर्म की प्रचण्ड शक्ति है ।'' श्रीकृष्ण महाराजा के वचन सुनकर सभी प्रजाजन धर्म-कार्य में अधिक तत्पर बन गए ।

शाम्ब आदि की दीक्षा

कुछ समय बाद नेमिनाथ प्रभु पुनः द्वारका पधारे । प्रभु की वैराग्यमय धर्मदेशना का श्रवण कर शाम्ब, प्रद्युम्न, उल्मुक, सारण आदि अनेक यादव-

कुमारों ने तथा जाम्बबती, रुक्मिणी आदि अनेक यादव-स्त्रियों ने प्रभु के पास दीक्षा स्वीकार ली ।

अन्त में, श्रीकृष्ण ने पूछा-``प्रभो ! द्वारका का नाश कब होगा ?''

प्रभु ने कहा-``आज से बारह वर्ष के बाद द्वैपायन द्वारका का नाश करेगा ।''

श्रीकृष्ण सोचने लगे-``धन्य है समुद्रविजय आदि बन्धुओं को, जिन्होंने पहले ही दीक्षा स्वीकार कर ली, मैं मन्दभागी हूँ कि दीक्षा नहीं ले सका ।''

द्वारका-नाश

द्वैपायन ऋषि निदान करके मरकर भवनपति निकाय में वह्निकुमार देव बना । द्वारका के प्रजाजन भी आयंबिल, उपवास-छट्ठ-अट्ठम आदि विविध प्रकार के तप करने लगे । लोगों के तप धर्म के प्रभाव से द्वैपायन देव द्वारका-नाश का इच्छुक होने पर भी द्वारका का नाश न कर सका । इस प्रकार ग्यारह वर्ष बीत गए ।

लोगों ने सोचा-``तप आदि के प्रभाव से पापात्मा द्वैपायन ऋषि, का प्रभाव नष्ट हो चुका है, अतः अब किसी प्रकार का भय रखने की आवश्यकता नहीं है ।'' सभी यादवों ने धर्मप्रवृत्ति के प्रति उपेक्षा कर दी और इच्छापूर्वक मद्यपान आदि करने लगे ।

भवितव्यता बलवान होती है । विनाशकाल निकट आने पर यादव लोग स्वतः धर्मप्रवृत्ति से निवृत्त हो गए ।

बस, द्वैपायन ऋषि देव को अवसर हाथ लग गया और उसने समस्त द्वारका में आग लगा दी ।

चारों ओर आकाश में उल्कापात होने लगा । पृथ्वी काँपने लगी । चारों ओर धुआँ फैलने लगा । अकाल में सूर्य और चन्द्र के ग्रहण होने लगे । भयंकर संवर्त वायु के प्रकोप से बड़े-बड़े वृक्ष भी नीचे गिरने लगे, ऐसा लग रहा था मानों सम्पूर्ण द्वारका एक चिता बन गई हो । आग की लपटें आकाश को छूने लगीं । भय के मारे लोग इधर-उधर भागने लगे, फिर भी आग की लपटों से कोई बच न सका ।

बालक, वृद्ध और स्त्रियों के रुदन के कारण समस्त वातावरण गमगीन बन गया । राम और कृष्ण के हल-मुशल चक्र आदि शस्त्र भी नष्ट हो गए ।

इसी बीच बलदेव और कृष्ण ने वसुदेव, देवकी और रोहिणी को बचाने के लिए रथ में बिठा दिया और वे नगर के द्वार की ओर आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर चलने के बाद अश्व स्तम्भित हो गए। अश्वों को दूर कर श्रीकृष्ण और बलदेव स्वयं रथ को खींचने लगे। भवितव्यतावश उसी समय रथ की धुरी भी तड्-तड् आवाज करती हुई टूट गई।

दीनता से रुदन करते हुए वसुदेव आदि के रथ को श्रीकृष्ण द्वार तक ले आए। इसी बीच दरवाजे बन्द हो गए। बलदेव ने अपने पाद-प्रहार से उन दरवाजों को तोड़ दिया, फिर भी रथ आगे नहीं बढ़ सका।

तभी द्वैपायन देव ने आकर कहा, ``हे कृष्ण ! तुम व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हो। तुम दोनों के सिवाय इस आग से कोई भी बचने वाला नहीं है।''

यह सुनकर वसुदेव-देवकी ने कहा-``हे पुत्रो ! तुम अपना प्रयत्न छोड़ दो। भवितव्यता बलवान और दुर्लंघ्य है। हम अभागे हैं कि हमने प्रभु के पास दीक्षा नहीं ली।''

अपना मरण निकट जानकर वसुदेव-देवकी व रोहिणी ने नेमिनाथ प्रभु की शरणागति स्वीकार की। पंचपरमेष्ठी भगवन्तों का स्मरण किया। उसी समय द्वैपायन देव ने उन पर अग्नि की वर्षा की। वे तीनों शुभध्यान में समाधिपूर्वक मरकर देव बने।

बलदेव और श्रीकृष्ण नगर के बाहर आकर जीर्ण उद्यान में खड़े होकर द्वारका के विनाश को अपनी आँखों से देखने लगे। द्वारका नगरी के राजमहल, माणेक के स्तम्भ, चन्दन के स्तम्भ आदि धू-धू कर जल रहे थे। समस्त नगरी अग्निमय बन गयी थी।

श्रीकृष्ण की मृत्यु

अपनी आँखों से द्वारका का विनाश देखकर श्रीकृष्ण ने बलदेव से कहा-``अहो ! नगरजनों की यह दारुण दशा मुझसे देखी नहीं जा रही है। हे बन्धु ! इतना सामर्थ्य होने पर भी मैं अपने माता-पिता तक को न बचा सका। प्रजाजनों का रक्षण न कर सका, अब मैं कहाँ जाऊँ ?''

बलदेव ने कहा-``भाई ! हताश मत बनो। यह तो सब संसार का नाटक है। नेमिनाथ प्रभु ने जो कुछ कहा था, वह सब सत्य सिद्ध हुआ है। भवितव्यता ऐसी ही है, अतः उसे कोई बदल नहीं सकता।''

``हे बन्धु ! अपने कुटुम्बीजन तो पाण्डव ही हैं । अब वहाँ चलें ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-``मैंने तो पहले ही उन्हें देशनिकाले की सजा कर दी है, अतः हम वहाँ कैसे जायें ?''

बलदेव ने कहा, ``वे पाण्डव दयालु हैं, वे कभी अपने अपकार को याद नहीं करेंगे ।''

इस प्रकार बलदेव के कहने पर श्रीकृष्ण और बलदेवजी नैऋत्य दिशा की ओर पांडुमथुरा जाने के लिए आगे बढ़े ।

मार्ग में आगे बढ़ते हुए वे दोनों हस्तिकल्प नाम के नगर के पास पहुँचे । उस समय उन्हें अत्यन्त भूख लगी ।

बलदेव ने कहा-``मैं भोजन के लिए नगर में जाता हूँ, यदि कोई संकट आ गया तो तुम्हें बुलाने के लिए सिंहनाद करूंगा ।'' इस प्रकार कहकर बलदेवजी नगर में चले गए ।

नगरजन ने बलदेवजी को पहचान लिया । उन्होंने थोड़ी सी मिठाई खरीदी और वे द्वार की ओर आगे बढ़े । उस नगर में धृतराष्ट्र का पुत्र अच्छदन्त राज्य करता था । द्वाररक्षक ने आकर राजा को, बलदेव के आगमन की बात कही । इसी बीच अच्छदन्त बलदेव को मारने के लिए सेना सहित आ गया । उसने नगर के द्वार बन्द करा दिए । बलदेवजी ने सिंहनाद किया और स्वयं शत्रु की सेना का प्रतिकार करने लगे ।

सिंहनाद सुनकर श्रीकृष्ण वहाँ आ गए । उन्होंने अपने पाद-प्रहार से नगर के द्वार को तोड़ दिया और भीतर प्रवेश किया ।

कृष्ण ने अपने पराक्रम से अच्छदन्त के सैनिकों को मार भगाया और अच्छदन्त को कहा-``अरे मूर्ख ! अभी तक तू हमारे पराक्रम को पहचान नहीं पाया है ? खैर । तू अपना राज्य कर, तेरे इस अपराध को माफ कर देता हूँ ।'' इस प्रकार कहकर कृष्ण और बलदेव ने नगर के बाहर स्थित उद्यान में आकर भोजन किया ।

तत्पश्चात् वे दक्षिण दिशा की ओर आगे बढ़ते हुए कौशाम्बी नगरी के वन में आए ।

उस समय श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्यास लगी थी । वे बोले-``बन्धु ! मेरा गला सूख रहा है । मैं इस वृक्ष की छाया में बैठता हूँ । मैं आगे चलने में असमर्थ

हूँ ।'' इतना कहकर श्रीकृष्ण वृक्ष के नीचे बैठ गए और बलभद्र पानी लाने के लिए निकल पड़े ।

श्रीकृष्ण एक जानु पर दूसरा पैर चढ़ाकर सो गए । वे पीत वस्त्र ओढ़े हुए थे । क्षण भर में उन्हें निद्रा आ गई ।

इसी बीच हाथ में धनुष-बाण धारण करने वाला, चर्मवस्त्रधारी जरा-कुमार उस वन में आया । वह शिकार के लिए भ्रमण कर रहा था । दूर से सोए हुए श्रीकृष्ण को मृग समझकर उसने तीक्ष्ण बाण छोड़ा ।

वह बाण श्रीकृष्ण के पैर में लगा । बाण लगते ही श्रीकृष्ण बैठे हो गए और बोले, ``अरे ! इस प्रकार छल-कपट करके निद्राधीन मुझ पर किसने बाण छोड़ा है ? आज तक किसी ने मेरी आज्ञा का लोप नहीं किया है । वह सच्चा क्षत्रिय हो तो अपना नाम और गोत्र बताए, क्योंकि नाम व गोत्र को जाने बिना मैंने किसी दुश्मन को मारा नहीं है ।''

उसी समय दूर से जराकुमार बोला-``मैं वसुदेव और जरा रानी का पुत्र जराकुमार यादव क्षत्रिय हूँ । बलदेव और श्रीकृष्ण मेरे बड़े भाई हैं । वे तो गुणों की खान हैं । नेमिनाथ प्रभु के मुख से, मेरे हाथों श्रीकृष्ण की हत्या जानकर मैं भूखा और प्यासा जंगल में भटक रहा हूँ, इस प्रकार जंगल में भटकते हुए बारह वर्ष बीत चुके हैं । फिर भी आज तक मैंने इस वन में किसी मनुष्य को नहीं देखा है । शुभ्रवेष को धारण करनेवाले आप कौन हैं ?''

श्रीकृष्ण ने कहा-``भाई ! तू निकट आ । मैं वही श्रीकृष्ण हूँ । मुझे बचाने का तेरा यह प्रयत्न निष्फल गया है । सच है, भवितव्यता को कोई बदल नहीं सकता । जिनवचन कभी मिथ्या नहीं होते हैं ।''

वृक्ष के नीचे बैठे हुए व्यक्ति को श्रीकृष्ण समझकर जराकुमार एकदम निकट आ गया और उसी समय अपने भाई को बाण से बिंधा देखकर उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे ।

उसने कहा-``हे बन्धुवर ! आप इस जंगल में कैसे आए ?''

श्रीकृष्ण ने द्वारका-दाह का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ।

द्वारका-विनाश को सुनकर एकदम रुदन करता हुआ जराकुमार बोला-``हे श्रीकृष्ण ! मुझे धिक्कार है । मैंने एकदम अयोग्य कार्य किया है । अरे ! प्रभु के वचनों को सुनकर मेरा हृदय फट क्यों नहीं गया ? मैं अभी तक जीवित रहा ? मेरा जीवन ही मेरे भाई की मृत्यु में कारण बना ? हे पृथ्वी !

मुझे स्थान दे । मैं तेरे में समा जाऊँ । अब नरक के सिवाय मेरे लिए कोई स्थान नहीं है ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-``भाई ! तू शोक मत कर, क्योंकि **भवितव्यता का उल्लंघन किसी से सम्भव नहीं है ।** यादवों में मात्र तुम एक ही बचे हो । तुम चिरकाल तक जीओ । तुम यहाँ से शीघ्र चले जाओ, अन्यथा बलदेव आकर तुम्हें मार डालेंगे । तुम मेरा यह कौस्तुभमणि ले जाओ और पाण्डवों के पास चले जाओ । उन्हें मेरा वृत्तान्त कह देना । वे तुम्हारी अवश्य सहायता करेंगे । तुम यहाँ से उल्टे पैर चले जाओ, ताकि बलदेव तुम्हें न पकड़ सकें । मैं पाण्डवों से क्षमा-याचना करता हूँ, उन्हें मेरा ``मिच्छा मि दुक्कडं'' कहना ।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के कहने पर जराकुमार ने कृष्ण के पैर से बाण खींच लिया और कौस्तुभमणि लेकर वह चला गया ।

जराकुमार के जाने के बाद श्रीकृष्ण की पीड़ा बढ़ने लगी । अपनी मृत्यु को नजदीक जानकर वे अन्तिम आराधना में तल्लीन बन गए ।

वे अपने दुष्कृतों की गर्हा करने लगे, सुकृतों की अनुमोदना और अरिहन्तादि की शरणागति का स्वीकार करने लगे ।

इस प्रकार शुभ भावना से भावित बने श्रीकृष्ण के अंग टूटने लगे । अन्तिम समय में उन्हें द्वारका-विनाशक द्वैपायन ऋषि के प्रति कोप आ गया ।

कुछ ही समय बाद उनकी आत्मा ने भौतिक देह का त्याग कर दिया और वह तीसरी नरक में प्रयाण कर गई । उनका देह वहीं पड़ा रहा ।

बलदेव की राग-दशा

थोड़ी देर बाद बलदेव पानी लेकर आए । उन्होंने देखा-भाई को थोड़ी निद्रा आ गई है । वे पास में बैठे रहे । सुबह होने पर भी जब कृष्ण के देह में हलन-चलन दिखाई न दी, तब वे उसे जगाने का प्रयत्न करने लगे । ``भाई ! अब उठ जाओ । दिन उग चुका है । हमें आगे दूर जाना है, धूप निकल चुकी है ।'' परन्तु उन्हें कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला ।

बलदेव ने कृष्ण के वस्त्र को दूर हटाया और उसी समय उनके निश्चेष्ट शरीर को देखा । पैर में बाण के घाव को देखकर उन्होंने रोष में आकर जोर से सिंहनाद किया, जिसे सुनकर सभी पशु-पक्षी चारों दिशाओं में इधर-उधर भागने लगे ।

वे बोले-``किसने मेरे भाई पर बाण का प्रहार किया है ? यदि भुजाबल हो तो वह मेरे सामने आ जाय ।'' इस प्रकार बोलते-बोलते बलदेवजी स्वयं बेहोश हो गए । थोड़ी देर बाद होश में आने पर पुनः करुण-स्वर से विलाप करने लगे और बोले, ``बन्धु ! तू तो गुणीजनों में अग्रणी है, मैं तो अधम हूँ । तू मुझे जवाब तो दे ।''

इस प्रकार कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलने से बलदेवजी ने श्रीकृष्ण की देह को अपने कन्धों पर उठा लिया और नदी-पर्वत व जंगल में घूमने लगे । इस प्रकार छह मास तक वे श्रीकृष्ण के शव को लेकर फिरते ही रहे ।

सिद्धार्थ द्वारा प्रतिबोध

सिद्धार्थदेव ने अपने अवधिज्ञान से बलदेवजी की मोहदशा को जाना । बलदेव को प्रतिबोध देने के लिए सिद्धार्थदेव ने उपाय चालू किये । बलदेवजी पर्वत से नीचे उतर रहे थे, तभी उन्होंने टूटे हुए पत्थर के रथ को जोड़ रहे मनुष्य को देखा ।

बलदेव बोले-``क्या पत्थर का रथ कभी जुड़ता है ?''

उसने कहा-``मरा हुआ आपका भाई पुनः जीवित हो सकता है तो यह रथ क्यों नहीं जुड़ेगा ?''

बलदेव ने कह दिया-``ऐसा मत बोलो, मेरा भाई तो जीवित है ।''

कुछ समय बाद बलदेव ने देखा-एक मनुष्य पत्थर पर कमल उगा रहा है ।

बलदेव ने कहा-``मूर्ख ! क्या पत्थर पर कमल उगते हैं ?''

उसने कहा-``आपका मरा हुआ भाई जीवित हो सकता है तो पत्थर पर कमल क्यों नहीं उगेगा ?''

बलदेव ने कहा-``ऐसा मत कहो, मेरा भाई कहाँ मरा हुआ है ?''

कुछ समय बाद बलदेव ने देखा, एक भाई जले हुए वृक्ष का सिंचन कर रहा है ।

बलदेव के पूछने पर वह बोला, ``आपका मरा हुआ भाई जिन्दा हो सकता है, तो यह वृक्ष पल्लवित क्यों नहीं होगा ?''

फिर भी बलदेव प्रतिबुद्ध नहीं हुए ।

अन्त में बलदेव ने देखा-एक व्यक्ति मरी हुई गाय को घास खिला रहा है । उसको पूछने पर उसने भी यही कहा कि ``आपका मृत बन्धु जिन्दा हो सकता है तो यह मरी हुई गाय घास क्यों नहीं खा सकती ।''

बारम्बार इस प्रकार की घटनाओं को देखने से बलदेव का मोह दूर होने लगा । उसी समय सिद्धार्थदेव ने प्रगट होकर कहा-``मोह के पटल को दूर हटाओ और आत्म-साधना के लिए जागरूक बनो ।''

सिद्धार्थदेव ने जराकुमार के हाथों से हुई कृष्ण की मृत्यु की घटना सुना दी । बलदेवजी का मोह दूर हो गया और उन्होंने श्रीकृष्ण की देह का अग्नि-संस्कार कर दिया ।

तत्पश्चात् बलदेव ने नेमिनाथ प्रभु के द्वारा भेजे हुए चारणमुनि के पास दीक्षा स्वीकार कर ली ।

भीष्म अभिग्रह

गुरुकुलवास में रहकर शास्त्रपारगामी बनकर बलदेव मुनि एकाकी प्रतिमायोग के लिए पर्वत आदि के शिखर पर जाकर तपःसाधना करने लगे ।

एक बार बलदेव मुनि मासक्षमण के पारणे पर्वत पर से नीचे उतर कर नगर में प्रवेश कर रहे थे । नगर के द्वार के बाहर कोई स्त्री अपने बच्चे को लेकर कुए से पानी भर रही थी । अचानक उसकी नजर बलदेव मुनि पर पड़ी । बलदेव मुनि के अद्‌भुत रूप को देखकर वह कामातुर बन गई । भूल से उसने बाल्टी के बजाय बालक के गले में ही डोरी बाँध दी ।

बलदेव मुनि ने यह दृश्य अपनी आँखों से देखा । तत्काल उन्होंने सोचा, ``धिक्कार है मेरे रूप को । मेरे रूप को देख अनेक का पतन हो जाएगा । अतः मैं गोचरी के लिए नगर में नहीं जाऊंगा । वन में ही निर्दोष भिक्षा मिल गई तो उसी से पारणा करूंगा ।''

बलदेव मुनि की मृत्यु

बलदेव मुनि वन में ही रहकर त्याग-तप की साधना करने लगे । उनकी अहिंसा की साधना से जंगल के पशु भी उनके मित्र बन गए और उनकी धर्मदेशना का पान करने लगे ।

एक बार एक रथकार जंगल में लकड़ियाँ काटने के लिए आया था ।

मध्याह्न समय में एक मृग बलदेव मुनि को स्थकार के समीप ले जाने लगा। बलदेव मुनि स्थकार के पास आए। वह तपस्वी मुनि को अत्यन्त भावपूर्वक दान देने लगा। उस समय पास में खड़ा मृग सोचने लगा-``धन्य है तपस्वी मुनि को, जो इस प्रकार तप की साधना करते हैं, धन्य है स्थकार को, जो ऐसे तपस्वी मुनि को दान देता है। अरे ! मैं तो दुर्भागी हूँ, न तो तप कर सकता हूँ और न ही दान दे सकता हूँ।''

उसी समय पवन के झपाटे से वृक्ष की एक डाल गिर जाने से मुनि, स्थकार व मृग तीनों की मृत्यु हो गई। वे तीनों मरकर ब्रह्म देवलोक में देव के रूप में उत्पन्न हुए।

पाण्डवों की दीक्षा

जराकुमार ने जाकर पाण्डवों को श्रीकृष्ण की मृत्यु व द्वारका-नाश के समाचार सुनाए। समाचार सुनते ही पाण्डव मूर्च्छित हो गए। वे एक वर्ष तक शोकातुर रहे।

तत्पश्चात् उनकी योग्यता जानकर नेमिनाथ प्रभु ने धर्मघोष मुनि को पाँच सौ मुनियों के साथ पाण्डुमथुरा भेजा। धर्मघोष मुनि की धर्मदेशना सुनकर सभी पाण्डव दीक्षा के लिए तैयार हो गए। जिनमन्दिर में भव्यातिभव्य अष्टाह्निक महोत्सव का आयोजन कर द्रौपदी सहित सभी पाण्डवों ने दीक्षा ग्रहण की। पाण्डु और कुन्ती तो प्रभु के पास पहले ही दीक्षा ले चुके थे।

पाँचों पाण्डव मुनि विशुद्ध संयम का पालन करने लगे। धीरे-धीरे सभी पाण्डव मुनि द्वादशांगी के ज्ञाता बन गए।

धर्मघोष मुनि की आज्ञा स्वीकार कर पाण्डव मुनि अलग विहार करने लगे।

एक बार भीम मुनि ने अभिग्रह किया-``भाले के अग्र भाग से मुझे कोई भिक्षा दे तो मैं उसे ग्रहण करूंगा।'' उनका यह अभिग्रह छह मास बाद पूर्ण हुआ।

विहार करते हुए पाण्डव मुनि पुनः अपने गुरुदेव के साथ हो गए।

उन्होंने पूछा-``नेमिनाथ प्रभु कहाँ हैं ?''

गुरुदेव ने कहा-``प्रभु अपने निर्वाण-काल को निकट जानकर गिरनार पर्वत पर पधारे हैं।''

प्रभु के दर्शनों के लिए पाण्डव मुनियों ने भी गिरनार की ओर विहार किया । मासक्षमण के पारणे वे हस्तिकल्प नगर में पहुँचे । वहाँ से गिरनार बारह योजन दूर था । अतः उन्होंने अभिग्रह किया, ``कल प्रभु को वन्दन कर पारणा करेंगे ।''

इधर उसी रात्रि में नेमिनाथ प्रभु का निर्वाण हो गया ।

चारण मुनि के मुख से प्रभु के निर्वाण को सुनकर पाण्डव मुनियों को अत्यन्त ही आघात लगा । ``अरे ! हम बलदेव मुनि और प्रभु के दर्शन से वंचित रह गए । हम हीनभागी हैं कि हमारा अभिग्रह पूर्ण नहीं हुआ ।''

सभी पाण्डव मुनि गुर्वाज्ञा से विमलाचल पर्वत की ओर आगे बढ़े और वहाँ जाकर सभी ने अनशन स्वीकार किया । कुछ समय बाद घातिकर्मों का क्षय हो जाने से सभी पाण्डवों को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और अन्त में अपने आयुष्य को पूरा कर वे मोक्ष चले गए । महासती द्रौपदी भी विशुद्ध संयम का पालन कर पाँचवें देवलोक में उत्पन्न हुई । वहाँ से चय कर महाविदेहक्षेत्र में मनुष्य-जन्म प्राप्त कर संयम की आराधना कर शाश्वत पद प्राप्त करेगी ।

27. महासती शिवादेवी

उज्जयिनी नगरी में प्रद्योतन राजा न्याय-नीतिपूर्वक राज्य करता था। एक बार राजा सभा में बैठा हुआ था, तभी किसी दूत ने आकर राजा को प्रणाम किया।

राजा ने पूछा, ``तुम कौन हो ? कैसे आना हुआ ?''

दूत ने कहा, ``मैं विशालानगरी से आया हूँ, वहाँ चेटक राजा राज्य करते हैं। उनके देवी तुल्य शिवा नाम की राजपुत्री है। वह 64 कलाओं में निपुण है।

चेटक महाराजा अपनी पुत्री आपको प्रदान करना चाहते हैं। आप उसे स्वीकार करें।''

राजा ने दूत की बात स्वीकार की और एक शुभ दिन खूब उत्साह-उल्लास के साथ प्रद्योतन राजा का शिवादेवी के साथ पाणिग्रहण हो गया।

एक शुभ दिन शिवादेवी ने महावीर प्रभु की धर्मदेशना का श्रवण किया और श्रावकधर्म स्वीकार किया। वह मन-वचन और काया से शील धर्म का पालन करने लगी। वह मन से भी पर-पुरुष की वांछा नहीं करती थी।

शिवा देवी को शील से च्युत करने के लिए किसी देव ने खूब-खूब प्रयत्न किये, परन्तु वह देव शिवादेवी को शील से भ्रष्ट नहीं कर पाया ।

एक बार उज्जयिनी नगरी में आग लग गई । आग को बुझाने के लिए खूब प्रयत्न हुए, फिर भी वह आग शांत नहीं हुई । पुनःपुनः आग लग जाती थी । एक बार चंडप्रद्योतन राजा ने छल-कपट से लाए हुए अभयकुमार को पूछा, ``इस आग को शांत करने का कोई उपाय ?''

अभयकुमार ने कहा, ``यदि कोई शीलवती स्त्री स्वयं आकर अपने हाथों से सभी के भवनों पर जल का छिड़काव करे तो यह आग शांत हो सकती है, अन्यथा नहीं ।''

अभयकुमार की यह बात सुनकर अनेक स्त्रियों ने उस आग को शांत करने के लिए जल का छिड़काव किया, परंतु किसी के भी प्रयत्न से वह आग शांत नहीं हुई ।

आखिर चंडप्रद्योतन राजा की महारानी महासती शिवा देवी ने अपने हाथों से सभी भवनों पर जल का छिड़काव किया और उसके साथ ही वह आग शांत हो गई । उसी समय सभी ने शिवादेवी के शीलधर्म की प्रशंसा की ।

सचमुच, शील धर्म की महिमा अपरंपार है । शील तो श्रेष्ठ आभूषण है । शील से कुल की उन्नति होती है ।

शील से दुर्गति का नाश होता है । शील से निर्मल यश प्राप्त होता है । शील तो साक्षात् कल्पवृक्ष है । शील के प्रभाव से यावत् मोक्ष की भी प्राप्ति होती है ।

अंत में शिवादेवी ने वीरप्रभु के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा अंगीकार करने के बाद विविध प्रकार के तपों का आचरण कर सभी कर्मों का क्षयकर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त किया ।

28. महासती जयंती

कोशांबी के राजा सहस्त्रानिक की पुत्री का नाम जयंती था, जो शतानिक की बहन थी । बचपन से ही प्रभु महावीर के प्रति उसके दिल में अपूर्व श्रद्धा और आस्था थी । जैन-धर्म के गहन तत्त्वज्ञान की उसे अच्छी जानकारी थी । तत्त्वज्ञान में उसे खूब रस था ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के तीसरे वर्ष में भगवान महावीर प्रभु पृथ्वीतल को पावन करते हुए कोशांबी में पधारे उस समय चंद्र-सूर्य भी अपने मूल विमान के साथ पृथ्वीतल पर पधारे थे ।

जयंती श्राविका भी महावीर प्रभु की धर्मदेशना सुनने के लिए समवसरण में गई । उसने खूब ध्यानपूर्वक महावीर प्रभु की धर्मदेशना का अमीपान किया ।

देशना की समाप्ति के बाद उसने अपने मन में पैदा हुई शंकाओं के समाधान के लिए महावीर प्रभु को पूछा, `प्रभो ! किन कारणों से जीव भारी कर्मी होता है ?

प्रभु ने कहा, `हिंसा, झूठ, चोरी आदि अठारह पापस्थानकों के सेवन से जीव भारी कर्मी होता है ।

जयंती ने पुनः पूछा, `प्रभु ! जीव का प्रमादी होना अच्छा या जागृत होना ?

प्रभु ने कहा, `कुछ जीवों का प्रमादी होना अच्छा है और कुछ जीवों का जागृत रहना अच्छा है ।

प्रभु ! यह कैसे ?

प्रभु ने कहा, `जो जीव धार्मिक वृत्तिवाले हैं, उन जीवों का जागरूक रहना अच्छा है और जो जीव हिंसादि पापों में सतत प्रवृत्तिशील हैं, उन जीवों को प्रमादी होना अच्छा है ।'

प्रभु के मुख से इन शंकाओं का समाधान प्राप्तकर जयंती श्राविका एकदम खुश हो गई । मोहमाया के बंधनों को छोड़कर उसने प्रभु के पास दीक्षा अंगीकार की । तत्पश्चात् ग्यारह अंगों की ज्ञाता बनकर समस्त घाति-अघाति कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्षपद को प्राप्त किया ।

29. महासती देवकी

एक बार नेमिनाथ प्रभु विहार करते हुए द्वारका पधारे । उस समय देवकी के छह पुत्र मुनि, दो-दो के संघाटक के रूप में देवकी के घर क्रमशः गोचरी हेतु आए । देवकी ने प्रथम संघाटक मुनि को गोचरी बहोराई...फिर दो मुनि आए...उनको भी गोचरी बहोराई...फिर दो मुनि आए, उन मुनियों को देखकर देवकी ने सोचा, ``ये दो मुनि वापस बारबार गोचरी हेतु क्यों आते हैं ? क्या उन्हें दिशा-भ्रम हो गया है ? क्या इस नगरी में अन्यत्र भिक्षा नहीं मिलती है ?''

मुनियों ने कहा-``हमें न तो दिशाभ्रम हुआ है और न ही हम पुनःपुनः आ रहे हैं । हम छह भाई हैं, हमारी रूप-सम्पत्ति व आकृति एक समान है । भद्दिलपुर की श्राविका सुलसा के हम छह पुत्र हैं । नेमिनाथ प्रभु की देशना श्रवण कर हमने दीक्षा स्वीकार की है और छट्ठ के पारणे में हम क्रमशः दो-दो मुनि बहोरने के लिए आए हैं ।''

मुनियों की बात सुनकर देवकी सोचने लगी-``अहो ! ये छह मुनि कृष्ण की आकृति जैसे ही क्यों दिखाई देते हैं ? इनमें लेश भी अन्तर नहीं है । अहो ! अतिमुक्तक मुनि ने कहा था कि तुझे आठ पुत्र होंगे । क्या ये मेरे ही तो पुत्र नहीं हैं ?'' इस प्रकार विचार कर वह दूसरे दिन नेमिनाथ प्रभु के पास गई और उसने अपने दिल की बात कही ।

प्रभु ने कहा-,``हे देवकी ! ये छह मुनि तुम्हारे ही पुत्र हैं । हरिनैगमेषी

देव ने तुम्हारे जन्मे बालक सुलसा के पास रख दिये थे ।'' यह बात सुनकर देवकी के स्तनों में दूध भर आया । उसने छह मुनियों को पुनः भावपूर्वक वन्दना की और बोली, ``मेरे पुत्रत्व को प्राप्त कर आपने दीक्षा स्वीकार की, यह मेरे लिए अत्यन्त ही आनन्द की बात है, परन्तु अफसोस है कि मैं आपको क्रीड़ा नहीं करा सकी ।''

नेमिनाथ प्रभु ने देवकी को कहा-``हे देवकी ! तू खेद न कर । यह तो पूर्व जन्म के कर्म का ही फल है । गत जन्म में तुमने शोक्या स्त्री के ७ रत्नों की चोरी की थी, वह जब रोने लगी तब तुमने एक रत्न वापस दे दिया था । इसी का यह फल है ।'' अपने पूर्वभव को सुनकर देवकी अपने पाप का पश्चाताप करती हुई घर आई ।

गजसुकुमाल का जन्म व दीक्षा

देवकी को उदास देखकर श्रीकृष्ण ने उसका कारण पूछा ।

देवकी ने कहा-,``अफसोस है कि मैं सात-सात पुत्रों की जननी होने पर भी, एक भी पुत्र को क्रीड़ा न करा सकी । धन्य है उन पशुओं को, जो अपनी सन्तानों को प्रेम दे सकते हैं ।''

श्रीकृष्ण ने कहा-``माताजी ! आप चिन्ता न करें, सब कुछ अच्छा होगा ।''

श्रीकृष्ण ने हरिणैगमेषी देव की आराधना की ।

देव ने कहा-``देवकी को पुत्र होगा, किन्तु वह युवावस्था में ही दीक्षा स्वीकार करेगा ।''

कुछ समय बाद हाथी के स्वप्न से सूचित देवकी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम गजसुकुमाल रखा गया । यौवनवय प्राप्त होने पर द्रुमक राजा की पुत्री प्रभावती और सोमशर्मा ब्राह्मण की पुत्री सोमा के साथ उसका लग्न हो गया ।

नेमिनाथ प्रभु की धर्मदेशना का श्रवण कर गजसुकुमाल ने दीक्षा स्वीकार की और वे मुनि श्मशान भूमि में जाकर कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे ।

इधर सोमशर्मा ब्राह्मण ने गजसुकुमाल मुनि को कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े देखा तो उन्हें देखते ही उसको गुस्सा आ गया-``अहो ! इसने मेरी पुत्री का जीवन बर्बाद कर दिया ।'' गुस्से में आकर उसने मुनि के मस्तक पर मिट्टी की पाल बनाकर, उसमें धधकते हुए अंगारे डाल दिए । अत्यन्त समताभाव में लीन बने गजसुकुमाल मुनि को केवलज्ञान पैदा हुआ । वे सर्व कर्मों से मुक्त बनकर मोक्ष चले गए ।

प्रातःकाल श्रीकृष्ण, नेमिनाथ प्रभु की वन्दना के लिए चल पड़े । उन्होंने प्रभु को पूछा-``गजसुकुमाल मुनि कहाँ है ?''

प्रभु ने कहा, ``वे तो मोक्ष चले गए हैं ।''

``कब-कैसे ?'' कृष्ण ने पूछा ।

प्रभु ने सोमशर्मा पुरोहित के उपसर्ग की बात कही, जिसे सुनकर कृष्ण एकदम मूर्च्छित हो गए । भान में आने पर बोले, ``मुनि-हत्यारे को मैं कैसे पहिचानूंगा ?''

प्रभु ने कहा, ``सोमशर्मा पर कोप करना उचित नहीं है । उसके उपसर्ग से तो गजसुकुमाल मुनि शीघ्र मोक्ष पा सके हैं...फिर भी तुम्हारे नगर-प्रवेश करते समय स्वतः मस्तक फटने से जो मर जाएगा, उसे मुनि-हत्यारा समझना ।''

श्रीकृष्ण ने गजसुकुमाल मुनि का अग्नि-संस्कार किया । उसके बाद वे नगर में जाने लगे । श्रीकृष्ण को देखकर सोमशर्मा ब्राह्मण एकदम घबरा गया । मस्तक फट जाने से उसकी उसी समय मृत्यु हो गई । श्रीकृष्ण ने उसके शव को गिद्धों के पास रखवा दिया ।

गजसुकुमाल का निर्वाण सुनकर वसुदेव के नौ भाइयों ने, शिवादेवी आदि अनेक स्त्रियों ने तथा श्रीकृष्ण के अनेक पुत्र-पुत्रियों ने दीक्षा स्वीकार कर ली । देवकी व रोहिणी को छोड़ वसुदेव की अन्य स्त्रियों ने भी दीक्षा स्वीकार कर आत्मकल्याण किया ।

30. महासती कलावती

- **कर्म की गत न्यारी है ।**
  कर्म को किसी की शर्म नहीं है ।
  कर्म को किसी की दया नहीं है ।
- अपने पूर्वभव में पोपट के
  पंखों को काटने से जो पापकर्म उपार्जित किया,
  वह पापकर्म
  महासती कलावती के भव में
  उदय में आया ।
- **कलावती गर्भवती थी और उस समय**
  पापोदय के कारण वह
  भयंकर जंगल में छोड़ दी गई
  और उसके
  दोनों हाथ काट लिये गये ।
  परंतु अपने निर्मल शीलधर्म के प्रभाव से
  महासती को अपने दोनों हाथ
  पुनः प्राप्त हो गए ।
- शील की महिमा अपरंपार है ।
  आई हुई आपत्ति भी
  शील के प्रभाव से
  संपत्ति में बदल गई ।
  शीलधर्म का सर्वत्र जय-जयकार है ।

30. महासती कलावती

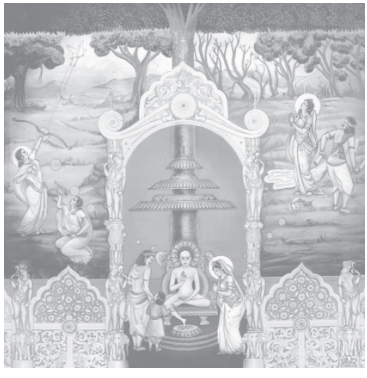

जंबुद्वीप !

मंगलादेश ! शंखपुर नगर ।

उस नगर के महाराजा शंख, प्रजा का न्याय व नीति पूर्वक पालन करते थे ।

एक बार गज श्रेष्ठी के पुत्र दत्त ने आकर सिंहासन पर बिराजमान महाराजा के चरणों में नमस्कार किया ।

राजा ने कहा, ``पृथ्वीतल पर घूमते हुए कहीं कोई आश्चर्य देखा है क्या ?''

उसने कहा, ``हाँ ! राजन् ! मैं व्यापार के लिए देवशालपुर नगर में गया था । वहाँ मैंने जो कौतुक देखा है, उसका वर्णन तो इस वाणी के द्वारा करना शक्य नहीं है ।'' इतना कहकर दत्त ने राजा को एक चित्रपट बताया ।

चित्रपट में आलेखित नवयौवना कन्या के अद्‌भुत रूप और लावण्य को देखकर राजा के आश्चर्य का पार न रहा । अहो ! यह किसका चित्र है ? कामदेव की पत्नी रति है ? कोई देवी है या कोई गंधर्वकन्या है ?

दत्त ने कहा, ``यह किसी देवी का चित्र नहीं है । यह तो मानव कन्या ही है ।''

30. महासती कलावती पृष्ठ नं. 259

32-38. कृष्ण वासुदेव की आठ पटरानियाँ पृष्ठ नं. 273

महासती कलावती की सज्झाय

नयरी कोसंबीनो राजा रे कहीए, नामे जयसिंह राय,
बेन भणी रे जेणे, बेरखडां मोकलीयां, कर्मे ते भाइना कहेवाय रे. १
कलावती सति रे शिरोमणी नार, पहेली ते रयणीए राजा,
महेले पधारीयां, पूछे बेरखडानी वात.
कहोने स्वामी तमे बेरखडा घडाव्या, सरखी न राखी नार रे. क०२
बीजी रयणीए राजा महेले पधारीया, पूछे बेरखडानी वात,
कहोने कोणे तमने बेरखडा घडाव्या, तुं नथी शियलवंती नार रे. क०३
घणुं जीवो जेणे बेरखडां मोकलीयां, अवसर आव्यो एह,
अवसर जाणीने बेरखडां मोकलीया, तेह में पहेर्यां छे एह रे. क०४
मारे मन एह अने एने मन हुंय, तेणे मोकलीया एह,
रात-दिवस मारा हइडे न विसरे, दीठे हरख न माय रे. क०५
एणे अवसरे राजा रोषे भराणो, तेडाव्या सुभट बे चार,
सूकी नदीमां छेदन करावी, 'कर' लेइ वहेलो रे आव रे. क०६
बेरखडा जोइ राजा मन विमासे, में कीधो अपराध,
विण अपराध में तो छेदन कराव्या, ते में कीधो अन्याय रे. क०७
एणे अवसर राजा धान न खाय, मोकल्या सुभट बे चार,
रात-दिवस राजा मनमें विमासे, जो आवे शियलवंती नार रे. क०८
सूकुं सरोवर बहेरे जाय, वृक्ष नव पल्लव थाय,
कर नवा आवे ने बेटडो धवरावे, ते शियलतणे सुपसाय रे. क०९
एणे अवसरे महावीरजी पधार्या, पूछे पूर्वभवनी वात,
शा शा अपराध में कीधा प्रभुजी, ते मने कहोने आज रे. क०१०
तुं हती बाइ राजानी कुंवरी, ए हतो सूडानी ते जात,
सेजे सेजे तें तो बाण ज नांख्युं, भांगी सुडानी पांख रे. क०११
पुत्र हतो ते रायने सोंप्यो, पोते लीधो संजम भार,
हीरविजय गुरु इणी परे बोले, आवागमन निवार रे,
कलावती सती शिरोमणी नार. क०१२

राजा ने कहा, ``यह किसकी पुत्री है ?''

दत्त ने कहा, ``देवशालनगर में विजयसेन राजा हैं, उनकी पटरानी का नाम श्रीमती है । यह कन्या विजयसेन राजा की पुत्री कलावती है । देवी की तरह उसका अद्‌भुत रूप और लावण्य है । वह जिनधर्म की आराधना में कुशल है ।

यौवन के प्रांगण में प्रवेश के बाद अपनी पुत्री को विवाह योग्य देखकर विजयसेन राजा चिंता के महासागर में डूब गये हैं ।

योग्य वर के संदर्भ में पूछने पर कलावती ने अपने पिता को कहा है कि **``जो मेरे चारों प्रश्नों के सही जवाब देगा, उसी के साथ मैं पाणिग्रहण करूंगी, अन्य किसी के साथ नहीं !''**

पुत्री की यह शर्त सुनकर राजा की चिंता और बढ़ गई है ।

पुत्री के विवाह के लिए आज से लगभग दो मास बाद चैत्र शुक्ला एकादशी के दिन स्वयंवर की रचना की है ।

राजकुमारी के व्यवहार से पता चलता है कि वह जिनधर्म में खूब निपुण है ।

उसी विजयसेन राजा के जयसेन नाम का एक पुत्र है । एक बार किसी सर्प ने उसे दंश दिया । उस राजपुत्र को योग्य औषधप्रदान द्वारा मैंने जीवनदान दिया ।

मौत के मुँह में प्रवेश किये हुए राजपुत्र को बचाने के कारण राजा ने मेरा खूब आदर-सत्कार और सम्मान किया ।

एक बार उस राजा ने मुझे कहा, ``जयसेन पुत्र को विषमुक्त करके तुमने मुझ पर उपकार किया है, अब मेरी पुत्री के योग्य वर की शोध कर मुझे चिंतासागर से मुक्त करो ।''

कलावती के वर के रूप में आपको योग्य जानकर मैं उसके रूप को चित्रपट में लिखकर यहाँ लाया हूँ । चित्रपट में मैंने उसके रूप का जो आलेखन किया है, वह तो अंश मात्र है । उसका जो वास्तविक रूप है, उसका संपूर्ण वर्णन करने में कोई देव भी समर्थ नहीं है ।

सूर्य की जो प्रभा होती है, क्या जल या दर्पण के प्रतिबिंब में वह प्रभा आ सकती है ? कदापि नहीं ! वैसे ही उसके रूप का आलेखन भी चित्रपट पर कदापि संभव नहीं है ।

दत्त ने कलावती का वह चित्रपट शंख राजा को बताया । चित्रपट में आलेखित कलावती के अद्‌भुत रूप और लावण्य को देखकर शंख राजा भी अपना मस्तक धुनने लगा । ``अहो ! कितना अद्‌भुत रूप है ।''

शंख ने दत्त को कहा, ``क्या वह मुझे पसंद करेगी ?''

दत्त ने कहा, ``राजन् ! आप खेद न करें । शुभ शकुनों से मैं अनुभव करता हूँ कि कलावती आपकी ही पत्नी बनेगी । इसके लिए आप सर स्वती देवी की उपासना करें । देवी के प्रभाव से आप उसके चारों प्रश्नों का सही जवाब दे सकोगे ।''

उसके बाद शंख राजा ने निर्मल ब्रह्मचर्य के पालन और तप-जप द्वारा सरस्वती देवी की आराधना-उपासना की ।

राजा की उपासना से सरस्वती देवी प्रसन्न हो गई और बोली, ``तुम्हारे हाथ के स्पर्श से एक पुतली भी कलावती के सभी प्रश्नों का जवाब दे सकेगी ।''

शंख राजा ने सरस्वती देवी को प्रणाम करके उसके दिये हुए वरदान को स्वीकार किया । उसके बाद देवी अदृश्य हो गई ।

एक शुभ दिन शंखराजा ने देवशालनगर की ओर प्रस्थान किया । क्रमशः आगे बढ़ता हुआ शंख राजा देवशालनगर की सीमा में पहुँचा ।

इधर जैसे ही विजयसेन राजा को शंख राजा के आगमन का पता चला, उसने शंख राजा के सम्मान के लिए अपने पुत्र को सामने भेजा ।

शंख और विजयसेन राजा का परस्पर मिलन हुआ । राजा ने महोत्सवपूर्वक शंख राजा का नगरप्रवेश कराया ।

बात-ही-बात में कलावती के स्वयंवर का दिन भी आ गया । इस प्रसंग पर अनेक राजा-महाराजा और राजकुमार आदि उपस्थित हुए थे ।

स्वयंवर-मंडप को खूब अच्छी तरह से सजाया गया था । शंख राजा ने भी अपने योग्य आसन ग्रहण किया ।

उस समय सोलह शणगार सजी हुई कलावती स्वयंवर मंडप में उपस्थित हुई ।

कलावती ने प्रतिहारी के मुख से सभी के सामने चार प्रश्न उपस्थित किए ।

देव कौन हैं ? गुरु कौन हैं ? तत्त्व क्या है ? और सत्त्व क्या है ? इन चारों प्रश्नों का सही उत्तर देने वाला ही कलावती के हाथों से वरमाला ग्रहण करेगा ।

स्वयंवर-मंडप में उपस्थित सभी राजाओं ने अपनी अपनी प्रज्ञा के अनुसार उन प्रश्नों के जवाब दिये, परंतु उन जवाबों से कलावती को संतोष नहीं हुआ ।

अंत में, शंख राजा ने कहा, ``स्तंभ पर रही हुई यह पुत्तलिका तुम्हारे इन प्रश्नों के जवाब देगी'' इतना कहकर शंख राजा ने पुतली का स्पर्श किया । उसी समय वह पुतली बोली, ``वीतराग से बढ़कर कोई श्रेष्ठ देव नहीं है । जो महाव्रतधारी हैं-वे ही गुरु हैं । जीव यही श्रेष्ठ तत्त्व है और इन्द्रियों का निग्रह करना, यही सत्त्व है ।

पुतली के मुख से इन जवाबों को सुनकर कलावती खुश हो गई और उसने अत्यंत ही प्रसन्नतापूर्वक शंख राजा के गले में वरमाला डाल दी ।

शंख राजा के साथ पाणिग्रहण की बात जानकर अन्य राजा ईर्ष्या से जलने लगे, परंतु कलावती के शील के प्रभाव से किसी ने विशेष विरोध नहीं किया ।

विजयसेन राजा ने विशेष उत्साह-उल्लास के साथ शंख और कलावती के विवाह निमित्त भव्य महोत्सव किया ।

2.

शंख राजा के साथ सांसारिक सुखों का अनुभव करती हुई कलावती ने दीर्घ काल प्रसार किया ।

एक दिन कलावती ने स्वप्न में अमृत से भरे हुए कुंभ को देखा । स्वप्न देखकर कलावती जागृत हो गई । कलावती ने अपने स्वप्न की बात महाराजा को कही ।

शंख राजा ने कहा, ``इस स्वप्न के फलस्वरूप तुझे श्रेष्ठ पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी ।''

कलावती के आनंद का पार न रहा । कलावती के गर्भ में किसी उत्तम आत्मा का अवतरण हुआ था । धीरे-धीरे दिन बीतने लगे, इस प्रकार गर्भकाल के आठ मास और बीस दिन व्यतीत हो गए । प्रसूति का समय नजदीक आ रहा था । पहली प्रसूति माँ के घर होती है, इस बात को ध्यान में रखकर विजयसेन राजा ने अपने मुख्य व्यक्तियों को भेजा ।

उन्होंने जाकर राजा से विनती की, ``कलावती को पीहर भेजा जाय ।''

कलावती के प्रति गाढ़ राग होने से राजा ने यह बात स्वीकार नहीं की ।

उन राजसेवकों ने देखा, कलावती नहीं आ रही है, अतः उसकी क्षेम कुशलता की पृच्छा पूर्वक कलावती को दो बाजूबंद और अन्य वस्त्र भेंट में दिये ।

राजसेवकों ने वहाँ से विदाई ली । भाई के स्नेह से कलावती ने वे बाजूबंद अपने हाथों में पहिन लिये । कलावती के हाथों में पहने बाजूबंद को देखकर खुश हुई सखियों के साथ कलावती प्रेमपूर्वक वार्तालाप करने लगी ।

कलावती ने कहा, ``अहो ! उसके दिल में मेरे प्रति कितना प्रेम है ! जिस कारण से उसने मेरे लिए ये दो बाजूबंद भेजे हैं । काफी लंबे समय के बाद उसकी ओर से मुझे यह भेंट मिली है । अहो ! मेरे ये दोनों हाथ भी कितने सुंदर लगते हैं !

कलावती की इन बातों को सुनकर सखियों ने कहा, ``चंद्र को चंद्रविकासी कमलों में कितना स्नेह होता है । उससे भी बढकर उसके दिल में तुम्हारे प्रति स्नेह है ।''

कलावती अपनी सखियों के साथ यह वार्तालाप कर ही रही थी, उसी समय शंख राजा गवाक्ष के नीचे से प्रसार हो रहा था । कलावती और उसकी सखियों के इस वार्तालाप को सुनकर राजा को लगा, ``ऐसी कलावती में भी यदि ऐसा गलत व्यवहार दिखता हो तो यह घटना सचमुच, चंद्र में से अंगारे की वृष्टि समान होगी । मुझे तो यह महासती नजर आ रही थी, परंतु यह तो कुलटा निकली । बाहर से वह सती होने का दिखावा करती है, परंतु उसके हृदय में कोई और ही बसा है ।''

पूर्व भव में किया हुआ तीव्र अशुभकर्म कलावती के उदय में आया हुआ था, इसके फलस्वरूप शंख राजा के दिल में अचानक ही तीव्र रोष भाव पैदा हो गया ।

राजा ने तत्काल दो चांडालों को बुलाकर आज्ञा करते हुए कहा, ``तुम दोनों इस कलावती को लेकर जंगल में चले जाओ और भयंकर जंगल में जाकर दोनों बाजूबंद सहित इसके दोनों हाथ काटकर मेरे पास ले आओ ।''

राजा की आज्ञा होते ही वे चांडाल कलावती को लेकर जंगल में गए, वहाँ रानी के दोनों हाथ काटने के लिए तैयार हुए ।

चांडालों ने कहा, ``किस कारण से राजा ने बाजूबंद सहित हाथ काटने के लिए आज्ञा दी है, उसका कुछ पता नहीं है । हमें तो सिर्फ राजा की आज्ञा का पालन करना है ।''

चांडालों की इन बातों को सुनकर कलावती ने कहा, **``हे चांडालो ! इसमें तुम्हारा दूषण नहीं है । इसमें मेरे पति का भी कोई दोष नहीं है । मेरे ही कर्म का दोष है ।''**

चांडालों ने कलावती के बाजूबंद सहित दोनों हाथ काट लिये । वे बाजूबंद सहित उन हाथों को शंख राजा के पास ले गए ।

इधर कलावती को प्रसूति की तीव्र वेदना हुई, थोड़े ही समय में उसने एक तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया ।

पुत्रजन्म के बाद वह कलावती अपने पुत्र को संबोधित करती हुई मनोमन बोली, ``हे वत्स ! यदि तेरा जन्म राजमहल में हुआ होता तो तेरे पिता तेरे जन्म का भव्यातिभव्य महोत्सव मनाते, परंतु तेरा जन्म इस जंगल में हुआ है, अतः सियार के शब्दों से ही तेरा जन्म महोत्सव हो रहा है ।''

चंद क्षणों में ही नदी में बाढ़ आ गई । नदी का प्रवाह तेजी से बहने लगा । पानी के तीव्र प्रवाह को देखकर एक बार तो कलावती भी घबरा गई परंतु दूसरे ही क्षण वह सावधान होकर, नमस्कार महामंत्र का स्मरण करने लगी और बोली, **``यदि मैंने मन, वचन और काया से पतिव्रता धर्म का पालन किया हो अर्थात् पति को छोड़कर अन्य किसी पुरुष की मन से भी इच्छा नहीं की हो तो मुझे मेरी कटी हुई भुजाएँ पुनः प्राप्त हों और नदी का प्रवाह भी मुझे अनुकूल हो !''**

मन, वचन और काया से निर्मल शीलधर्म के पालन के प्रभाव से कलावती को कटे हुए हाथ पुनः प्राप्त हो गए और नदी ने भी अपना प्रवाह बदल दिया ।

इस जगत् में शीलधर्म की महिमा अपरंपार है । जो स्त्री अपने पति को छोड़ अन्य किसी के साथ न तो कायिक संबंध करती है और न ही पर-पुरुष की मन से भी इच्छा करती है, ऐसी स्त्री सती-शिरोमणि कहलाती है । उस स्त्री के शीलधर्म के प्रभाव से भयंकर दावानल भी शांत हो जाता है, भयंकर जल

का प्रवाह भी अपनी दिशा बदल देता है । भयंकर आँधी व तूफान भी शांत हो जाते हैं ।

कलावती पतिव्रता नारी थी । उसने शासनदेव से प्रार्थना की, उस प्रार्थना के प्रभाव और उसके निर्मल शीलधर्म के प्रभाव से उसके दोनों हाथ पुनः आ गए और नदी ने भी जल का प्रवाह बदल दिया ।

कलावती का एक दुःख दूर हो गया, उसके आनंद का पार न रहा । वह अपने शिशु को प्रेम से नहलाने लगी ।

इसी बीच एक तापस वहाँ पर आ गया । उसने कहा, ``तुमने पुत्र को जन्म दिया है, अतः तुम्हे यहाँ अकेली रहना, उचित नहीं है ।''

कलावती ने कहा, ``इस जंगल में नीचे धरती और ऊपर आकाश को छोड़कर अन्य मेरा आधार कौन है ? देव-गुरु पर मुझे पूर्ण श्रद्धा है, उनकी कृपा से सब कुछ अच्छा होगा, ऐसा आत्मविश्वास है ।''

तापस ने कहा, ``यहाँ पास में ही तपोवन है, उस तपोवन के कुलपति खूब उदार और दयालु हैं, तुम वहाँ चलोगी तो तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जाएंगे ।''

तापस की विनती स्वीकार कर कलावती पास ही के तपोवन में आई । उसने कुलपति को नमस्कार किया । कुलपति ने कलावती को दुःख का कारण पूछा ।

महासती कलावती ने कुलपति को सारी घटना सुना दी ।

कलावती से सारी घटना का वर्णन सुनने के बाद कुलपति ने कहा, ``मैंने तुम्हारे लक्षण देखे हैं, तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है, अल्प काल में ही तुम्हारी सारी आपत्ति दूर हो जाएगी और तुम्हारा अभ्युदय होगा ।''

इस प्रकार कुलपति से आश्वासन पाई हुई कलावती, उसी आश्रम में रही !

3.

शंख राजा की आज्ञा को स्वीकार कर चांडालों ने एक ही झटके में कलावती के दोनों हाथ काट लिये थे ।

खून से लथपथ दोनों हाथ लेकर वे शंख महाराजा के पास पहुँच गए ।

एक चांडाल ने कहा, ``आपकी आज्ञा का बराबर पालन हुआ है ।'' ऐसा कहकर चांडाल ने वे दोनों हाथ महाराजा के सामने धर दिये ।

राजा ने उन दोनों हाथों में रहे बाजूबंद देखे ! राजा ने वे बाजूबंद अपने हाथ में ले लिये । जैसे ही उन बाजूबंदों पर राजा ने ``विजयसेन'' ये अक्षर पढ़े, राजा के दुःख का पार न रहा ।

आकुल-व्याकुल बने राजा ने दत्त को बुलाकर पूछा, ``क्या कल यहाँ देवशाला नगर से कोई आया था ?''

दत्त ने कहा, ``हाँ ! कल वहाँ से राजा के सेवक आए थे । देवी के लिए उसके भाई विजय ने दो बाजूबंद भेजे थे, जो देवी के पास हैं ।''

दत्त के मुख से इन बातों को सुनते ही वज्राहत की तरह राजा भूमि पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया ।

चंदन एवं ठंडे पानी का सिंचन करने पर राजा जैसे ही होश में आया, वह करुण स्वर से पुकारने लगा, ``अहो ! मूढ़ ऐसे मैंने कितना गलत कार्य कर दिया है । कुछ भी सोचे-समझे बिना जल्दबाजी में निर्णय लेकर मैंने भयंकर गलती की है ।''

राजा को विलाप करते हुए देखकर मंत्रियों ने पूछा, ``राजन् ! आप इतना खेद क्यों कर रहे हैं ?''

मंत्रियों की बात सुनकर राजा ने कहा, ``मैं अब कहाँ जाऊँ ? क्या कहूँ ! सचमुच मैंने अपने आपको भयंकर कष्ट में डाल दिया है । बिना सोचे मैंने कितना भयंकर कर्म कर दिया है ।''

``अहो ! मैंने देवी में दोष ही देखे हैं । अब मैं किसी को अपना मुँह दिखाने योग्य नहीं हूँ । मैंने परीक्षा किए बिना पत्नी का त्याग कर दिया । बस, अब चिता तैयार की जाय ! उस चिता में प्रवेशकर मैं अग्नि-स्नान करूंगा ।''

राजा की यह बात सुनकर मंत्रियों ने राजा को समझाते हुए कहा, ``हे राजन् ! एक तो किसी कर्म के उदय से देवी की मृत्यु हुई है और आप निष्कारण ही आत्महत्या करना चाहते हो ।''

``हे राजन् ! आप तो विवेकी हो ! आत्महत्या के विचार को छोड़ दो ।'' इस प्रकार नगरजनों के इस आग्रह का भी अनादर करके राजा मौत को भेटने के लिए जंगल की ओर बढ़ा ।

उसी समय अवसर को जानने वाले गज श्रेष्ठी ने राजा को विज्ञप्ति

करते हुए कहा, ``हे राजन् ! आप जिनेश्वर भगवंत की पूजा करो । जिनपूजा के प्रभाव से आपकी आपत्ति अवश्य दूर होगी !''

प्रभुभक्त राजा ने श्रेष्ठी की बात स्वीकार की ।

प्रभु-पूजा के लिए राजा ने जिनमंदिर में प्रवेश किया । उसने खूब आदरपूर्वक प्रभु की पूजा की ।

प्रभुपूजा करके राजा जिनमंदिर से बाहर आया तो मंत्री ने राजा को निवेदन करते हुए कहा, ``पास में ही अमिततेज मुनि बिराजमान हैं । उन्हें वंदन किया जाय ।''

शंख राजा ने अमिततेज मुनि को वंदन किया । धर्म-देशना देते हुए मुनिश्री ने कहा, ``पवन से प्रेरित वृक्ष के सूखे पत्ते की तरह पूर्वकर्म से प्रेरित जीव इस संसार में जहाँ-तहाँ भटकता रहता है ।''

''हमेशा सुख की ही इच्छा रखनेवाला यह जीव सुख से दूर ही रहता है ।''

''अज्ञानी जीव इस लोक और परलोक में सुख देनेवाले जिनेश्वर भगवंत की उपासना नहीं करता है ।''

''करोड़ों भवों में दुर्लभ ऐसे मानव जन्म को प्राप्तकर मोक्षसुख देने वाले धर्म की आराधना में उद्यमशील बनना चाहिए ।''

मुनि भगवंत के इन वचनों को सुनकर राजा खुश हो गया । राजा ने वहीं पर रात्रि व्यतीत की ।

रात्रि की अंतिम वेला में राजा ने एक सुंदर स्वप्न देखा । कल्पवृक्ष पर से एक अपक्व और एक फलवाली लता नीचे गिर पड़ी । वह लता थोड़ी ही देर में पुनः कल्पवृक्ष पर चढ़ गई और उसी के साथ पूर्ण फलवाली हो गई ।

राजा ने अपने इस स्वप्न की बात पूज्य गुरु भगवंत को कही । इस स्वप्न को सुनकर उसका फलादेश बताते हुए गुरु भगवंत ने कहा, **''तुम कल्पवृक्ष समान हो । तुम्हारी प्रिया उस लता के समान है । तुम्हारी पत्नी ने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया है, उसके साथ तुम्हारा शीघ्र ही मिलन होगा ।''**

इस स्वप्न-फल को सुनकर राजा के हर्ष की सीमा नहीं रही । राजा पुनः अपने नगर में आ गया, उसने कलावती की शोध के लिए चारों दिशाओं में लोगों को भेजा ।

कलावती की शोध के लिए राजा ने दत्त को भी जंगल की ओर भेजा । वन में चारों ओर भ्रमण करते हुए दत्त ने तपोवन को देखा । तपोवन में जाकर दत्त ने कलावती के संबंध में पूछताछ की ।

कुलपति ने कहा, ``कलावती से तुम्हें क्या प्रयोजन है ?'' दत्त ने कहा-``शंख राजा अपनी प्रिया के वियोग में आकुल-व्याकुल हो गया है । राजा को अपनी भूल समझ में आ गई है । अतः उसे अपनी प्रिया कलावती नहीं मिली तो वह अग्निस्नान करके अपने जीवन का अंत ला देगा ।''

कुलपति ने कहा, ``इसी वन में तापसियों के साथ कलावती रही हुई है ।''

यह जान कर दत्त कलावती की शोध में आगे बढ़ा ।

दूर से ही दत्त को आते हुए देखकर वह कलावती जोर से रुदन करने लगी ।

दत्त ने कहा, ``बहिन ! तुम रोओ मत । कर्म का फल बड़ा विचित्र है । पूर्व में बँधे हुए कर्म की सजा को सहन किये बिना छुटकारा नहीं है ।''

``हे बहिन ! तुम शीघ्र ही रथ में आरूढ़ होकर अपने दर्शन देकर राजा को खुश करो, पश्चात्ताप में तत्पर राजा अग्निप्रवेश के लिए तैयार हो गया है, बड़ी मुश्किल से उन्हें आज एक दिन के लिए रोका गया है ।

कुलपति की अनुमति प्राप्तकर कलावती महासती दत्त के साथ नगर में प्रवेश करने के लिए रथ में आरूढ़ हो गई ।

तीव्र गति से वह रथ नगर की ओर बढ़ने लगा ।

कलावती के आगमन के समाचार जानकर राजा ने उसका नगर-प्रवेश का महोत्सव कराया ।

अपने अपराध के बदले में राजा ने महारानी कलावती से माफी मांगी ।

कलावती के साथ राजा सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगा ।

राजा-रानी ने अपने पुत्र का नाम **'पुष्पकलश'** रखा ।

एक दिन कलावती ने राजा से पूछा, ``मेरे किस दोष के कारण आपने मुझे जंगल में भिजवा दिया था और मेरे दोनों हाथ कटवा दिए ।''

राजा ने कहा, ``तेरा कुछ भी दोष नहीं था परंतु पूर्वभव के पापोदय के कारण ही तेरे जीवन में यह आपत्ति आई है ।''

बाजूबंद को अपनी भुजाओं में पहिनते समय अपनी सखियों के साथ तुम बोली थी, ``अहो ! उसके दिल में मेरे प्रति कितना प्रेम है !'' ये शब्द जब मैंने तुम्हारे मुख से सुने तो मुझे तुम्हारे चरित्र के विषय में संदेह पैदा हो गया और मैंने तुम्हारे हाथ कटवा दिये ।

``तुम्हारे दोनों हाथ कटे, इसमें मैं तो निमित्त मात्र बना हूँ । वास्तव में तो तुम्हारे अशुभ कर्म का ही उदय था । उस कर्म के बारे में जानना हो तो पूज्य गुरु भगवंत के पास जाकर पूर्व भव जान लें ।''

महारानी को राजा की बात जंच गई । वे दोनों अमिततेज मुनि के पास पहुँच गए ।

कलावती के साथ शंख राजा भी गुरु भगवंत की देशना सुनने लगा । देशना के अंत में राजा ने पूछा, ``भगवंत ! कलावती ने पूर्व भव में ऐसा कौनसा पाप किया था, जिस कर्म के उदय के कारण निर्दोष होते हुए भी इसके दोनों हाथ काटे गए ?''

राजा के इस प्रश्न का समाधान देते हुए अमिततेज मुनि ने कहा, ``महाविदेह क्षेत्र में महेन्द्रपुर नाम का नगर है, उस नगर में नरविक्रम नाम का राजा राज्य करता था । उसके लीलावती नाम की मुख्य पटरानी थी । एक बार उसने एक पुत्री को जन्म दिया, जिसका नाम सुलोचना रखा गया ।

एक दिन राजा की गोद में सुलोचना बैठी हुई थी, तभी किसी ने आकर एक सुंदर पोपट राजा को भेंट दिया ।

खुश होकर राजा ने वह पोपट राजपुत्री को दे दिया ।

सुलोचना ने वह पोपट सोने के पिंजरे में डाल दिया । अनुकूल खाद्य सामग्री प्रदान कर वह उस पोपट का पालन-पोषण करने लगी ।

सुलोचना को वह पोपट अत्यंत प्रिय था । कभी वह पोपट को अपने दोनों हाथों में लेती, कभी अपने हृदय पर रखती, कभी अपने स्कंध पर रखती तो कभी उस पोपट को पिंजरे में रखकर विनोद करती थी ।

वह सुलोचना कभी भी उस पोपट को छोड़ती नहीं थी ।

एक बार सुलोचना उस पोपट को लेकर अपनी सखियों के साथ उद्यान में गई । उस उद्यान के पास में सीमंधर स्वामी का भव्य जिनालय था । वह सुलोचना सीमंधर स्वामी के दर्शन के लिए जिनालय में गई । उस पोपट ने भी सीमंधर स्वामी के दर्शन किये ।

सीमंधर स्वामी के दर्शन कर वह पोपट सोचने लगा, ``अहो ! ये भगवान तो मैंने कहीं देखे हैं ।'' इस प्रकार सोचते-सोचते उसको जाति-स्मरण ज्ञान हो गया । उस ज्ञान द्वारा उसे अपना पूर्वभव स्पष्ट दिखाई देने लगा ।

``अहो ! पूर्वभव में मैं मनुष्य था, मैंने सद्‌गति प्रदान करनेवाले चारित्रधर्म स्वीकार किया था । तीव्र क्षयोपशम के कारण मैंने सभी शास्त्र पढ़ लिये थे । ज्ञान में मुझे खूब रुचि थी, परंतु क्रिया में मुझे बिल्कुल रुचि नहीं थी । क्रिया की विराधना के कारण ही मैं मरकर पोपट बना हूँ ।''

``ज्ञान का दीप मेरे हाथ में होने पर भी चारित्र-विराधना के कारण मैं मनुष्य गति में से तिर्यंच गति में आ गया, अतः क्यों न शक्य धर्म आराधना कर अपने भविष्य को सफल बनाऊँ ? इस प्रकार विचार कर उस पोपट ने अभिग्रह किया, ``आज से मैं सीमंधर स्वामी के दर्शन के बाद ही आहार लूंगा ।''

पिंजरे में रहे पोपट को लेकर सुलोचना अपने राजमहल में आ गई ।

दूसरे दिन पोपट को हाथ में लेकर सुलोचना जब उसे भोजन सामग्री खिलाने लगी, तभी अपने नियम को यादकर सीमंधरस्वामी के दर्शन की कामना से ``नमो अरिहंताणं'' बोलकर वह आकाश में उड़ गया ।

मन, वचन और काया की एकाग्रतापूर्वक उस पोपट ने सीमंधर जिन-प्रतिमा के दर्शन किये, उसके बाद ही उसने फलाहार किया ।

पोपट के वियोग में सुलोचना दुःखी हो गई । उसका मन आकुल-व्याकुल हो गया । वह रोने लगी ।

राजा की आज्ञा होते ही कई राजसेवक उस पोपट की शोध करने इधर-उधर निकल पड़े । आखिर एक राजसेवक ने उस पोपट को पकड़ लिया और उसे राजपुत्री के आगे कर दिया ।

सुलोचना ने उस पोपट को कहा, ``माँ तुल्य मुझे छोड़कर तू कहाँ चला गया ? अब भविष्य में मैं तेरे ऊपर विश्वास कैसे रखूँ ?'' इस प्रकार कहकर सुलोचना ने उस पोपट के दोनों पंख काट दिये और उसे पिंजरे में बंद कर दिया । पंखों के अभाव में पोपट का उड़ना बंद हो गया । अपने पंख कट जाने के बाद उस पोपट ने सोचा, ``मैंने पूर्वभव में स्वाधीन ऐसी उत्तम क्रियाओं का पालन नहीं किया । इस कारण अब मुझे पराधीनता की वेदना

सहन करनी पड़ रही है । पराधीन अवस्था में बहुत कुछ सहन करने में भी कोई विशेष लाभ नहीं है ।'' इस प्रकार विचारकर उस पोपट ने आहार-पानी का त्याग कर दिया । अनशन तप के प्रभाव से वह पोपट मरकर सौधर्म देवलोक में अत्यंत तेजस्वी देव बना ।

उस पोपट की मृत्यु के बाद सुलोचना भी दुःखी-दुखी हो गई । आखिर में उसने भी अनशन व्रत स्वीकार लिया । उस अनशनव्रत के प्रभाव से वह सुलोचना मरकर सौधर्म देवलोक में उसी पोपट के जीव की देवी बनी ।

''हे राजन् ! देवलोक से च्यवकर उस पोपट का जीव ही तुम शंख नाम के राजा बने हो और सुलोचना का जीव ही देवलोक से च्यवकर यह कलावती हुई है ।''

पूर्वभव में कलावती ने पोपट के पंख काट लिये थे, उसी पापकर्म के उदय के कारण इस भव में तुमने उस कलावती के हाथ काटे हैं । जीव ने जो शुभ-अशुभ कर्म बाँधा हो, उस कर्म का फल उस जीव को अवश्य भुगतना पड़ता है ।

अपने पूर्वभव संबंधी इन बातों को सुनकर शंख और कलावती को जातिस्मरण ज्ञान हो गया । जाति-स्मरण ज्ञान के प्रभाव से उन्हें अपना पूर्व-भव प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा ।

राजा और रानी दोनों को संसार के प्रति वैराग्य भाव पैदा हुआ ।

अपने पुत्र पुष्पकलश को राजगद्दी सौंपकर शंख और कलावती ने भागवती दीक्षा अंगीकार कर ली ।

निर्मल चारित्रधर्म का पालन कर वे दोनों स्वर्ग में उत्पन्न हुए ।

देवलोक में से च्यवकर पुनः मनुष्यभव प्राप्त कर निर्मल संयम धर्म का पालन कर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त करेंगे ।

32-38. कृष्ण वासुदेव की आठ पटरानियाँ

पद्मावती, गौरी, गांधारी, लक्ष्मणा
सुसीमा, जांबवती, सत्यभामा, रुक्मिणी

इस अवसर्पिणी काल में 63 शलाका पुरुष पैदा हुए हैं जिनमें 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव, 9 बलदेव हुए हैं ।

चक्रवर्ती छह खंड के अधिपति होते हैं, जबकि वासुदेव तीन खंड के अधिपति होते हैं । सभी वासुदेव और प्रतिवासुदेव पूर्व भव में नियाणा करके आए होते हैं, इस कारण वे मरकर नरक में पैदा होते हैं ।

22 वें तीर्थंकर परमात्मा के शासन में नौवें वासुदेव के रूप में श्रीकृष्ण पैदा हुए थे, जो तीन खंड के अधिपति थे ।

चक्रवर्ती के 64000 स्त्रियाँ होती हैं तो वासुदेव के 32000 स्त्रियाँ होती हैं ।

श्रीकृष्ण वासुदेव ने नेमिनाथ प्रभु के 18000 साधुओं को वंदन करके तीन महान् लाभ प्राप्त किये थे ।

उन्होंने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया था, उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म उपार्जित किया था और चार नरक कम कर दी थी ।

श्रीकृष्ण के 32000 स्त्रियाँ थीं, परंतु उनमें पद्मावती, गौरी, गांधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जांबवती, सत्यभामा और रुक्मिणी आदि आठ मुख्य रानियाँ थीं ।

यौवन के प्रांगण में प्रविष्ट नेमिकुमार को एक दिन शिवादेवी ने कहा, ``बेटा ! विवाह के लिए अपनी सहमति प्रदान कर तू मेरे मनोरथ को पूर्ण कर ।''

नेमिकुमार ने कहा, ``माताजी ! मेरे योग्य कन्या मिलेगी, तब मैं अपनी सहमति दूंगा ।''

एक बार अपने मित्रों के साथ खेलते हुए नेमिकुमार श्रीकृष्ण वासुदेव की आयुधशाला में चले गए । कुतूहल-प्रिय मित्रों के आनंद-प्रमोद के लिए वासुदेव के सुदर्शन-चक्र को सहजता से उठा लिया और कुम्हार के चाक की तरह उसे अपनी अंगुली पर घुमा दिया...उसके बाद सारंग धनुष को भी कमल के नाल की तरह मोड़ दिया । तत्पश्चात् कौमोदिकी गदा भी लकड़ी की तरह उठा ली और अंत में पाँचजन्य शंख को भी मुँह में लगाकर जोर से फूँका...उस फूँक से इतनी जोरदार आवाज हुई कि उस भयंकर आवाज को सुनकर हाथी भी अपने बंधनस्तंभों को तोड़कर तूफान मचाते हुए इधर-उधर भागने लगे...वासुदेव के घोड़े भी बंधन तोड़कर अश्वशाला से बाहर आ गये और भागने लगे । सारे शहर में कोलाहल मच गया ।

वासुदेव के प्रत्येक रत्न हजार-हजार देवताओं से अधिष्ठित होते हैं । सामान्य व्यक्ति, उन्हें उठाना तो दूर रहा, उनके समीप भी नहीं जा सकता है...परंतु तीर्थंकर परमात्मा तो अतुलबली व विशिष्ट पुण्यशाली होते हैं, इस कारण उनके लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है । नेमिकुमार भी भावी तीर्थंकर होने से उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं था ।

पाँचजन्य शंख की ध्वनि सुनकर श्रीकृष्ण ने सोचा, ``वह कौन है, जिसने यह शंख बजाया है ? उस शंख को बजाने की ताकत किसी में नहीं है । क्या मेरा कोई दुश्मन पैदा हो गया है ?'' इस प्रकार व्याकुल चित्तवाले श्रीकृष्ण तत्काल आयुधशाला में आ गए और वहाँ नेमिकुमार को देखकर मनोमन अनेक संकल्प-विकल्प करने लगे ।

``क्या नेमिकुमार मुझसे भी अधिक बलवान हैं ?'' यह जानने के लिए श्रीकृष्ण ने कहा, ``हम अपने बल की परीक्षा करें ।'' इतना कहकर श्रीकृष्ण नेमिकुमार को अखाड़े में ले गये ।

नेमिकुमार ने कहा, ``बल की परीक्षा के लिए धूल में आलोटने की क्या जरूरत है ? एक-दूसरे की भुजा को मोड़कर भी हम अपने बल की परीक्षा कर सकते हैं ?''

श्रीकृष्ण ने अपनी सहमति दे दी । सबसे पहले श्रीकृष्ण ने अपना हाथ लंबा किया...नेमिकुमार ने उस हाथ को एक झटके में तुरंत मोड़ दिया । उसके बाद नेमिकुमार ने अपना हाथ लंबा किया । उस हाथ को मोड़ने के लिए श्रीकृष्ण ने खूब मेहनत की, परंतु श्रीकृष्ण उस हाथ को नहीं मोड़ सके । वे उस हाथ पर लटकने लगे...फिर भी उस हाथ को मोड़ न पाए ।

श्रीकृष्ण चिंतातुर हो गए । वे सोचने लगे, ``यह नेमिकुमार मेरा राज्य ले लेगा । सचमुच दुनिया में स्थूल बुद्धिवाळे श्रम करते हैं और उसका फल तो बुद्धिशाली उठा लेते हैं । समुद्र का मंथन तो शंकर ने किया, परंतु उस मंथन से प्राप्त रत्न देवता ले गए । भोजन को चबाने की मेहनत दाँत करते हैं, जबकि भोजन का स्वाद तो जीभ ही लेती है ।''

श्रीकृष्ण अपने भाई बलदेव के साथ विचार-विमर्श करने लगे । **``श्री नेमिकुमार तो मुझसे भी अधिक बलवान हैं, वे मुझे हराकर मेरा राज्य प्राप्त कर लेंगे ।''**

उसी समय आकाश में देववाणी हुई, ``हे कृष्ण ! पूर्व में नमिनाथ प्रभु ने कहा है कि बाईसवें नेमिनाथ प्रभु कुमार अवस्था में ही दीक्षा लेनेवाले हैं ।''

इस आकाश-वाणी को सुनकर श्रीकृष्ण निश्चिंत हो गए...फिर भी सत्य के निश्चय के लिए श्रीकृष्ण, नेमिकुमार को अपनी रानियों के साथ जल-क्रीड़ा हेतु सरोवर में ले गए ।

श्री नेमिकुमार तालाब में स्नान कर बाहर आए, तब श्रीकृष्ण की अन्य स्त्रियाँ सुवर्ण की पिचकारी में केसर मिश्रित पानी नेमिकुमार के ऊपर फेंकने लगीं ।

कोई रानी फूलों की गेंद बनाकर प्रभु की छाती पर फेंकने लगी । कुछ स्त्रियाँ अपने कटाक्ष-बाणों से नेमिकुमार के मन को बींधने का प्रयास करने लगीं । काम-कला में कुशल ऐसी कुछ स्त्रियाँ हँसी-मजाक के शब्द बोलने लगीं ।

उसी समय आकाश-वाणी हुई, ``हे मुग्धाओ ! जन्मसमय इन्द्रों ने एक योजन लंबे नलीवाले बड़े-बड़े कलशों से जिनको मेरु पर्वत पर स्नान कराया था, फिर भी वे लेश भी व्याकुल नहीं हुए थे तो क्या तुम्हारी इन पिचकारियों के जल से व्याकुल हो जाएंगे ?''

रुक्मिणी बोली, ``हे नेमिकुमार ! लग्न करे तो पत्नी का भी जीवन-निर्वाह करना पड़े । बस, इसी भय से आप विवाह करने से घबराते हो, जरा देखो, आपके भाई तो 32,000 स्त्रियों का निर्वाह कर रहे हैं । आप इतने कायर क्यों बनते हो ?''

सत्यभामा ने कहा, ``ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों ने भी विवाह किया था । विषय-सुख और राज्य-सुख भोगा था । उनके भी अनेक पुत्र हुए । फिर भी वे अंत में मोक्ष गए । आप तो कोई नए ही मोक्षमार्गी बने हो । हे देवर ! आप खूब विचार करो । गृहस्थपने को स्वीकार कर अपने बंधुजनों को शांत करो ।''

जांबवती बोली, ``हे कुमार ! आपके पहले हरिवंश कुल में भूषण समान श्री मुनिसुव्रतस्वामी पैदा हुए हैं, उन्होंने भी गृहस्थ जीवन को स्वीकार कर पुत्रोत्पत्ति के बाद दीक्षा अंगीकार की थी और अंत में वे मोक्ष गए थे ।''

पद्मावती ने कहा, ``हे कुमार ! इस संसार में पत्नी बिना मनुष्य की शोभा नहीं है । अकेले पुरुष का कोई विश्वास भी नहीं करता है । पत्नी रहित अकेला पुरुष तो विट कहलाता है ।''

तभी **गांधारी** बोली, ``घर पर आए मेहमानों की भक्ति पत्नी ही करती है । संघ निकालना, उत्सव करना, विवाह का महोत्सव करना आदि अच्छे कार्य पत्नी के बिना शोभते नहीं हैं ।''

गौरी ने कहा, ``अज्ञानी ऐसे पक्षी भी दिन में जहाँ-तहाँ भटक कर रात्रि में अपनी पत्नी के साथ घोसले में रहते हैं, क्या देवरजी ! आप में उन पक्षी जितनी भी समझ नहीं है ?''

लक्ष्मणा बोली, ``स्नान आदि सर्व अंग की शोभा में विचक्षण, प्रीतिरस में सुंदर, विश्वास-पात्र और दुःख में सहायता करनेवाली पत्नी के बिना कौन है ?''

अंत में **सुसीमा** ने कहा, ``स्त्री के बिना घर आए मेहमानों की तथा मुनियों की सेवा-भक्ति कौन करेगा ? अकेला पुरुष शोभा भी नहीं देता है ।''

भाभियों के द्वारा इस प्रकार युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा समझाने पर भी नेमिकुमार तो मौन ही रहे । वे थोड़े से मुस्कराये । उनकी मुस्कराहट को **''न निषिद्धं अनुमतं''** जिसका निषेध न हो उसका स्वीकार ही माना जाता है । इस प्रकार निषेध न होने पर उसे स्वीकृति समझकर भाभियों ने घोषणा कर दी कि नेमिकुमार लग्न के लिए तैयार हो गए हैं ।

लग्न के लिए नेमिकुमार की सहमति को जानकर समुद्रविजय ने श्रीकृष्ण को कहा, ''नेमिकुमार के योग्य कन्या की शोध की जाय ।''

नेमिकुमार रूपवान और गुणवान हैं तो उनके योग्य कन्या भी वैसी ही चाहिए । इस प्रकार विचार कर नेमिकुमार के योग्य कन्या की सभी शोध करने लगे ।

नेमि के योग्य कन्या की चिंता में डूबे कृष्ण को देखकर सत्यभामा ने कहा, ''सद्गुणों से सुशोभित, कमल के समान नेत्रोंवाली मेरी बहिन राजीमती नेमिकुमार के लिए एकदम योग्य है, अतः उसके लिए योग्य प्रयत्न किया जाय तो अच्छा रहेगा ।''

सत्यभामा की इस बात को सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा, ''सचमुच योग्य सलाह देकर तूने मुझे चिंतामुक्त कर दिया है ।'' इतना कहकर श्रीकृष्ण उग्रसेन राजा से मिलने के लिए रवाना हो गए ।

बिना किसी पूर्व समाचार के श्रीकृष्ण के आगमन को जानकर उग्रसेन राजा के आश्चर्य का पार न रहा ।

नेमिकुमार का राजीमती के साथ संबंध निश्चित हुआ, परंतु पशुओं की चीत्कार सुनकर और अपने भोगावली कर्मों को क्षीण जानकर नेमि कुमार ने दीक्षा ले ली ।

एक बार नेमिनाथ प्रभु द्वारका पधारे । नेमिनाथ प्रभु की देशना सुनने के लिए श्रीकृष्ण वासुदेव भी अपने अंत:पुर आदि परिवार के साथ गये ।

प्रभु ने वैराग्यमय धर्मदेशना दी । देशना के अंत में श्रीकृष्ण ने प्रभु से पूछा- प्रभो ! मेरी जो आठ अग्र महिषियाँ हैं, वे सभी सती हैं या असती ?

प्रभु ने कहा, ''तुम्हारी आठों स्त्रियाँ सती हैं ।''

प्रभु के मुख से इस बात को सुनकर श्रीकृष्ण अतिप्रसन्न हुए ।

उसके बाद उन्होंने पूछा, ``हे प्रभो ! वर्ष दरम्यान सर्वश्रेष्ठ तिथि कौनसी है ?''

प्रभु ने कहा, ``मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी !'' उसके बाद प्रभु ने उस दिन की महिमा का वर्णन किया ।

श्रीकृष्ण ने अपनी पटरानियों के साथ उस दिन की विशेष आराधना की ।

श्रीकृष्ण की उन पत्नियों को शील से विचलित करने के लिए देवों ने भी भरसक प्रयत्न किये परंतु देव-परीक्षा में भी वे सफल रहीं ।

सत्यभामा आदि सभी रानियाँ त्रिकाल पूजा, उभयकाल प्रतिक्रमण आदि करती थीं, अंत में उन सभी ने नेमिनाथ प्रभु के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा अंगीकार करने के बाद निरंतर छट्ठ-अट्ठम आदि तप की आराधना करने लगीं । अंत में, शत्रुंजय तीर्थ पर तीव्र तप करते हुए सभी ने घाति कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान प्राप्त किया और अंत में सभी कर्मों का क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न, पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 236 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	35.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	36.	कर्मग्रंथ (भाग-1)	160/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	37.	दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	55/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	38.	गणधर-संवाद	80/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	39.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
6.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-	40.	नवपद आराधना	80/-
7.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	41.	संस्मरण	50/-
8.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	42.	भव आलोचना	10/-
9.	विविध-तपमाला	100/-	43.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
10.	विवेकी बनो	90/-	44.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
11.	प्रवचन-वर्षा	60/-	45.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
12.	आओ श्रावक बनें !	25/-	46.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
13.	व्यसन-मुक्ति	100/-	47.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
14.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	48.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
15.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9)	300/-	49.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
16.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40)	275/-	50.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
17.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	51.	नमस्कार मीमांसा	150/-
18.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	52.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-
19.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	53.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
20.	समाधि मृत्यु	80/-	54.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
21.	Pearls of Preaching	60/-	55.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
22.	New Message for a New Day	600/-	56.	वैराग्य-वाणी	140/-
23.	Celibacy	70/-	57.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	160/-
24.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	58.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
25.	अमृत रस का प्याला	300/-	59.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
26.	ध्यान साधना	40/-	60.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
27.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	61.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
28.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-	62.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
29.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	63.	जीवन झांकी	अमूल्य
30.	प्रेरक-प्रवचन	80/-	64.	मन के जीते जीत है	80/-
31.	जीव विचार विवेचन	100/-	65.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-1	300/-
32.	नवतत्त्व विवेचन	110/-	65.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-2	300/-
33.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	67.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-1	280/-
34.	लघु संग्रहणी	140/-	68.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-2	300/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन,
Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299